प्राक्कथन

श्री लालभाई दलपतभाई व्याख्यानमाला का शुभारम्भ सर्वधर्मसमन्वय के विषय में ता ३१-३-६६ के दिन व्याख्यान देकर पूज्य श्री काका कालेलकर ने किया था। तदनन्तर व्याख्यान माला मे 'प्राकृत जैन कथा साहित्य' इस विषय को लेकर डा० जगदीशचन्द्र जैन के जो तीन व्याख्यान ता ७-९-७० से ता ९-९-७० को हुए वे यहाँ मुद्रित किये गये है।

डा० जगदीशचन्द्र जैन को युनिवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन की ओर से इसी विषय मे सशोधन करने के लिए निवृत्त प्राध्यापकों को दिया जानेवाला पुरस्कार मिला था और वे इसी विषय में रत थे। अतएव मैने यही विषय को लेकर उनको व्याख्यान देने का आमन्त्रण दिया। वे इन्डोलोजी के प्राध्यापक होकर कील युनिवर्सिटी (जर्मनी) में जाने की तैयारी कर रहे थे। फिर भी उन्होंने मेरे आमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार करके ये व्याख्यान लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर में दिये एतदर्थ मै उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

प्राकृत जैन कथा साहित्य के विषय में डा० विन्टरनित्स, डा० हर्टल आदि ने जो अभिप्राय दिया है वह यथार्थ है इसकी प्रतीति प्रस्तुत पुस्तक से हो जायगी। इसमें भी समग्रभाव से कथा साहित्य का परिचय सभव नही था, यहाँ तो उसमे से कुछ नमूने दिये हैं—ये यदि विद्वानों का इस विषय में विशेष आकर्षण कर सकेगे तो व्याख्याताका और हमारा यह प्रयत्न हम सफल समझेंगे।

व्याख्याताने विशेषरूपसे यहाँ वसुदेवहिण्डी और बृहत्कथासग्रह इन दोनों की कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। विद्वानों की यह तो सम्भावना थी कि वसुदेवहिण्डी की कई कथाओ का मूल बृहत्कथासग्रह मे होना चाहिए। उस सभावना की पुष्टि विशेष रूपसे यहाँ की गई है। विद्वानों का ध्यान मै इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ।

ला द विद्यामदिर
अहमदाबाद-९
२६-१-७१

निवेदक
दलसुख मालवणिया
अध्यक्ष

विषयसूची

•••••••

प्राकृत जैन कथा साहित्य

१

प्राकृत की लौकिक कथाएँ

१. कथाओं का महत्त्व

जीवन में कथा-कहानी का महत्त्व

प्राचीन काल से ही कथा-साहित्य का जीवन में वहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। जब मानव ने लेखन कला नहीं सीखी थी, तभी से यह कथा-कहानियो द्वारा अपने साथियो का मनोरजन एव ज्ञानवर्धन करता आया है। दादी और नानी अपने पोते-पोतियो और नाती-नतनियो को रात्रि में सोते समय कुतूहल-वर्धक कहानियाँ सुनाकर उनका मनोरजन करतीं। इन कहानियो की रोचकता का इस बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि वालक दिन में भी कहानी सुनने के लिए मचलते रहते। उस समय उनकी नानी यह कहकर उन्हे चुप करती कि दिन में कहानी सुनने से मामा रास्ता भूल जायेगा। भला कोई वालक चाहेगा कि उसका मामा मार्गभ्रष्ट हो जाये ?

मनोरंजन की प्रधानता

प्राचीन काल में ऐसे अनेक पेशेवर लोग थे जो विविध खेल—तमाशो द्वारा सर्व-साधारण का मनोरजन किया करते थे। नट, नर्तक, रस्सी पर खेल दिखाने वाले, वाजीगर, मल्ल, मुष्ठि युद्ध करने वाले, विदूषक, भांड, कथकें (कथावाचक), रासगायक, मागध (स्तुतिपाठक), ज्योतिषी, वीणावादक आदि ऐसे कितने ही लोग वडे-वडे नगरो के चैत्यो और देवायतनो के समीप अड्डा जमाये रहते थे। कथको का काम था कि जब राजा दिनभर के काम से निवटकर रात्रि के समय अपने शयनीय पर आरूढ हो तो वे राजा के हाथ-पैर का सवाहन करते हुए उसे कहानियाँ सुनायें, और कहानी सुनता-सुनता वह आराम से निद्रा देवी की गोद में विश्राम करने लगे।

राजाओ की रानियाँ भी राजा को कहानियाँ सुनाकर आकृष्ट किया करती थीं। किसी राजा ने चित्रकार की कन्या कनकमजरी से विवाह कर लिया। उसके अन्त:पुर में और भी अनेक रानियाँ थीं। राजा को कहानी सुनने का शौक था।[2]

---

१ निशीथसूत्र (१३ ५७) में साधु के लिए कायिक की प्रशसा करने का निषेध है। वह आहार आदि, यश तथा अपनी पूजा-प्रतिष्ठा के निमित्त धर्मकथा कहता था (१३-४३५३)। औपपातिक सूत्र मे विदूषक, रासगायक और मागध आदि के साथ कथक का उल्लेख है। कथासरित्सागर (२ २ २) भी देखिए।

२ रमणीय नगर का कथाप्रिय राजा प्रतिदिन पुरवासियों को कथा कहने के लिये वुलाया करता था। हेमचन्द्र, परिशिष्ट पर्व (३ १८ १८६)

अतएव जो रानी कहानी कहने में कुशल होती, उसी के पास वह अपनी रात्रि व्यतीत करता। कनकमंजरी ने सोचा कि इस तरह तो बहुत दिनो बाद उसकी बारी आयेगी।

एक दिन राजा कनकमजरी के पास आया तो उसने अपनी दासी को सिखा दिया कि वह उससे कहानी सुनाने का अनुरोध करे। कनकमजरी ने कहानी सुनाना आरंभ किया।

कहानी सुनाते-सुनाते जब काफी रात बीत जाती और कहानी चरम सीमा पर पहुँचती तो रानी नींद का बहाना बना, अगली रात को कहानी पूरी करने के लिए कहती। इस प्रकार कनकमंजरी राजा को छह महीने तक कहानियाँ सुना-सुनाकर उसे अपने ही पास रक्खे रही।[1]

कौतूहल की लीलावई कहा में प्रासाद की अट्टालिका पर सुख से बैठी हुई कवि की पत्नी, रात्रि के समय, ज्योत्स्ना से पूरित अन्तःपुर की गृहदीर्घिका में गधोत्कट कुमुदो के रसपान की लोलुपता से गुजार करते हुए भ्रमरो का शब्द सुन, अपने प्रियतम से कोई सुन्दर कथा कहने का अनुरोध करती है।[2]

कथा-कहानियो के साथ शुक—सारिका के नाम भी प्राचीन काल से जुडे चले आते है।[3]

१ आवश्यकचूर्णी २, पृ० ५७-६०

२ कौतूहल, लीलावई, २४

३ शुकसप्तति मे शुक द्वारा कथित ७० कहानियों का सग्रह है। हरिदत्त सेठ का मदन विनोद पुत्र कुमार्गगामी था और वह पिता की सीख नहीं मानता था। अपने मित्र को दुखी देख त्रिविक्रम नामक ब्राह्मण, नीतिशास्त्र मे निपुण शुक और सारिका लेकर उसके पास पहुँचा और सपत्नीक शुक को पुत्र की भाँति पालने को कहा। शुक के उपदेश से उसका पुत्र अपने पिता का आज्ञाकारी बन गया। तत्पश्चात् वह धनार्जन के लिए देशांतर को रवाना हुआ। उसकी अनुपस्थिति में उसकी पत्नी प्रभावती परपुरुष की अभिलाषवती हुई। ज्योंही वह परपुरुष के साथ रमण करने चली, सारिका ने उसे रोक दिया। प्रभावती ने उसका गला मरोड़कर उसे मार देना चाहा, लेकिन वह न मरी। शुक सारिका से अधिक चतुर था। उसने प्रभावती को ७० कहानियाँ सुनाकर उसके शील की रक्षा की। कादबरी में कहानी कहने वाला शुक है। तथा देखिये जातक (न १९८)।

पचाख्यानवार्तिक (जे हर्टल, लाइप्जिग, १९२२) में २६ वीं कथा मे काश्मीर के नवहस राजाकी कथा आती है। उसने शुक को देशविदेश में भ्रमण करने भेजा। भ्रमण करता हुआ वह स्त्रीराज्य में पहुँचा। रानी ने उसे चार समस्याये दीं और साथ मे एक पत्र। मन्त्रियों को एकत्र किया गया। अन्त मे भारुड श्रावक को उसके पिता ने समस्या का अर्थ बताया कि पोतनपुर में तिलकमजरी नाम की वणिक पुत्री राजा से प्रेम करती है।

शकुन-शकुनी संवाद

किसी शकुन और शकुनी ने जमदग्नि की दाढी में घोसला बना लिया।

एक वार शकुन अपनी शकुनी से कहने लगा—भद्रे! तुम यहीं रहना, मै हिमालय पर्वत पर अपने माता-पिता से मिलकर जल्दी ही आ जाऊँगा।

शकुनी—प्राणनाथ! आप न जायें। आपको अकेले समझकर कहीं कोई तकलीफ न देने लगे!

शकुन—तू डर मत! यदि कोई मेरा पराभव करेगा तो मै उसका प्रतिकार करने में समर्थ हूँ!

शकुनी—क्या भरोसा? कहीं आप मुझे भूलकर किसी दूसरी शकुनी से प्रेम न करने लगे! इससे मुझे कितना कष्ट होगा!

शकुन—तुझे मै अपने प्राणो से भी अधिक चाहता हूँ, तेरे बिना मै थोडे समय के लिए भी अन्यत्र नहीं रह सकता।

शकुनी—विश्वास नहीं होता कि आप लौट कर आ जायेगे!

शकुन—तू जिसकी कहे, उसकी शपथ खाने को तैयार हूँ!

शकुनी—यदि ऐसी बात है तो शपथ खाइए कि यदि आप वापिस न आये तो इस ऋषि को जो पाप लगा है, वह आपको लगे।

शकुन—और किसी की भी शपथ खाने को मै तैयार हूँ, लेकिन इस ऋषि के पाप से लिप्त होना मै नहीं चाहता।

पक्षियो का यह वार्तालाप सुनकर जमदग्नि ने सोचा कि क्या बात है जो ये पक्षी मेरे पाप को इतना बडा बता रहे है।

जमदग्नि ने दोनो को पकड़कर पूछा—अरे पक्षियो! देखते नहीं, कितने हजारो वर्षों से मै कुमार ब्रह्मचारी रह कर तपश्चर्या कर रहा हूँ? मैने कौनसा पाप किया है जो तुम मेरी शपथ खाने से इन्कार करते हो?

शकुन ने उत्तर दिया—महर्षि! निस्सतान होने के कारण आप नदी जल के वेग से उखडे हुए निरालंब वृक्ष की भाति, कुगति को प्राप्त करेगे। आपका नाम तक कोई न लेगा। क्या यह कुछ कम पाप है? क्या आप अन्य ऋषियो के पुत्रो को नहीं देखते?

यह सुनकर ऋषि अरण्यवास छोडकर दारसग्रह के लिए चल दिया।[1]

शुक की एक दूसरी कहानी देखिए—

१ वसुदेवहिडी, पृ० २३६

पंख तोड़ने पर कहानी सुनानेवाला शुक

एक बार किसी भील ने जगल में से एक शुक को पकडा। उसका एक पैर तोड और उसकी एक आंख फोड उसने शुक को बाजार में छोड़ दिया। शुक आख्यान और कथा-कहानियाँ सुनाने में कुशल था। संयोगवश वह श्रावक-पुत्र जिनदास की स्त्री के हाथ पड गया। जिनदास की स्त्री ने उसे मार डालने की धमकी दी। उसने शुक के पंख उखाडना शुरू किया।

शुक ने सोचा कि इस तरह मरने से क्या लाभ। अतएव ज्योंही जिनदास की स्त्री उसका पख उखाडती, वह उसे कहानी सुनाता। उसने उसे नाइन, वणिक्कन्या, कोलिन, कुलपुत्र की कन्या आदि की ५०० कहानियाँ सुनाई। रात्रि व्यतीत हो जाने पर जब शुक के एक भी पंख बाकी न बचा तो जिनदास की स्त्री ने उसे घूरे पर फेंक दिया। वहाँ से उसे बाज उठा ले गया और फिर वह दासीपुत्र के हाथ में आ गया।[1]

कुतूहल एवं जिज्ञासा

कहानियों में कुतूहल एव जिज्ञासा पैदा करने की क्षमता का होना आवश्यक है। यदि कहानी सुनने से कुतूहल और जिज्ञासा का भाव जागृत न हो तो वह कहानी नीरस हो जाने के कारण मनोभावों को उद्वेलित करने में अक्षम रहती है।

किसी राजा को कहानी सुनने का शौक था। उसने दूर-दूर तक डोंडी पिटवा दी कि जो कोई उसे कभी समाप्त न होने वाली कहानी सुनायेगा, उसे वह अपना आधा राज्य दे देगा। डोडी सुनकर दूर-दूर के लोग आये। किसी की कहानी एक दिन चली, किसी की दो दिन, किसी की तीन दिन। एक कहानी सुनानेवाला तीस दिन तक कहानी कहता रहा।

राजा की आज्ञा थी कि जिस किसी की कहानी समाप्त हो जायगी, उसे मृत्युदंड भोगना पड़ेगा। इस प्रकार कितने ही लोगों को मृत्युदण्ड दिये जाने के बाद एक कथक ने राज दरबार में अपना नाम भेजा। उसने कहानी शुरू की—

किसी गाव में कोई किसान रहता था। भाग्य से अच्छी वर्षा हुई और उसकी खेती खूब फूली-फली। फसल पक जाने पर उसने उसे काटा और एक बहुत बडे खलिहान में भर दिया। खलिहान में अनाज भरकर वह चैन से रहने लगा।

१ आवश्यकचूर्णि, पृ० ५२२-२६

लेकिन कुछ ही दिनो बाद एक टिड्डीदल खलिहान पर टूट पडा। हवा आने के लिए खलिहान की मोरी में से होकर एक टिड्डी प्रवेश करती और फुर्र से उड जाती।

राजा को लक्ष्य करके कथक ने कहा—महाराज! सुनिए, एक टिड्डी उडी फुर्र, दूसरी टिड्डी उडी फुर्र, तीसरी टिड्डी उडी फुर्र, चौथी टिड्डी उडी फुर्र पाचवीं टिड्डी उडी फुर्र।

राजा ने पूछा—फिर क्या हुआ?

"महाराज, छठी टिड्डी उडी फुर्र, सातवीं टिड्डी उडी फुर्र, आठवीं टिड्डी उडी फुर्र।"

"उसके बाद?"

"नौवीं टिड्डी उड़ी फुर्र,, दसवीं टिड्डी उडी फुर्र।" सौवीं टिड्डी उडी फुर्र।

इस प्रकार राजा ने जब देखा कि कथक टिड्डियो को उडाता ही चला जाता है, रुकने का नाम नहीं लेता, तो वह हार मानकर उसे आधा राज्य देने के लिए मजबूर हो गया।

तात्पर्य यह है कि कहानी में कुतूहल और जिज्ञासा की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए, तभी उसमें रोचकता आ सकती है।

२. जैन कथाकारों का उद्देश्य

जनपद विहार, जनभाषा, लौकिक कथा साहित्य

प्राचीन जैन ग्रन्थो में उल्लेख है कि जनपद विहार करने से जैन साधुओ की दर्शन विशुद्धि होती है, तथा महान् आचार्य आदि की संगति प्राप्त कर वे अपने को धर्म में दृढ रख सकते है। जनपद विहार करते समय उन्हे मगध, मालवा, महाराष्ट्र, लाट, कर्णाटक, द्रविड, गौड और विदर्भ आदि की देशी भाषाओ से सुपरिचित होना चाहिए जिससे कि वे सर्वसाधारण को उनकी भाषाओ में उपदेश दे सके।[1] भगवान् महावीर ने भी स्त्री, बाल, वृद्ध तथा अक्षर ज्ञान से शून्य सर्व-सामान्य जनता को अपने निर्ग्रन्थ प्रवचन का लोकभाषा अर्धमागधी में ही उपदेश दिया था।[2]

१ बृहत्कल्पभाष्य, जनपदप्रकरण (१२२९-३०, १२३६)

२ अम्ह इत्थिबालवुड्ढअक्खरअयाणमाणाण अणुकपणत्थ
सव्वसत्तसमदरसीहि अद्धमागहाए भासाते सुत्तं उद्दिट्ठ

— आचारागचूर्णी, पृ० २५५

आगे चलकर जैन आचार्यों ने इसी परम्परा का अनुकरण करते हुए साहित्य का सर्जन किया। जन-कल्याण के लिए उन्होने विविध कथाओ और आख्यानो का आश्रय लिया और प्राकृत में विपुल कथा-साहित्य का निर्माण कर जैन साहित्य के भण्डार को समृद्ध वनाया। वैदिक साहित्य में बहुत करके देवी-देवताओ की अलौकिक कथा कहानियो की ही प्रधानता थी जिनसे सामान्यजन चमत्कृत तो अवश्य होता, किन्तु पात्रो के साथ वह आत्मीयता स्थापित नहीं कर पाता था। जैन विद्वानो ने इस दृष्टिकोण में परिवर्तन किया।

धर्मकथानुयोग की मुख्यता

दृष्टिवाद के पांच विभागो में अनुयोग (दिगम्बर मान्यता के अनुसार प्रथमानुयोग) एक मुख्य विभाग है। इसके प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग -इन चार प्रकारो में प्रथमानुयोग (अथवा धर्मकथानुयोग) को सवसे प्रमुख वताया गया है। प्रथमानुयोग अथवा धर्मकथानुयोग में सदाचारी, धीर एवं वीर पुरुषो का जीवन-चरित रहता है, अतएव जैन कथा-साहित्य की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण है। जैन परम्परा में जिस विपयवस्तु का समावेश धर्मकथानुयोग में होता है, वौद्ध परम्परा में उसका समावेश सुत्तन्त अथवा सुत्तपिटक (दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अंगुत्तरनिकाय और खुद्दकनिकाय) में किया जाता है।

वौद्धसूत्रो की एक भविष्यवाणी में वौद्ध धर्म पर आने वाले खतरो की ओर संकेत किया गया है। खतरा यह था कि वौद्ध भिक्षु तथागत के अर्थ-गम्भीर, लोकोत्तर तथा शून्यता का प्ररूपण करने वाले उपदेश की अवहेलना कर तथागत के शिष्यो और कवियो के काव्यमय और सुन्दर वाक्य–विन्यास से अलंकृत लौकिक उपदेशो की ओर आकृष्ट हो रहे थे।[1]

इससे भी करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग की तुलना में धर्मकथानुयोग की लोकप्रियता लक्षित होती है। वैसे अध्यात्मविद्या, तत्त्वज्ञान, प्रमाणशास्त्र, योगविद्या, आयुर्वेद, ज्योतिप, गणित, मन्त्रविद्या आदि कितने ही महत्त्वपूर्ण उपयोगी शास्त्र हे, लेकिन जैन विद्वानो ने कथा-साहित्य के माध्यम से ही इनका प्ररूपण करना हितकर समझा। अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, संगीत, स्वप्न-विचार, रत्नपरीक्षा, मणिशास्त्र, खन्यविद्या और पाकशास्त्र आदि लौकिक विपयो,

तथा शासनव्यवस्था के अन्तर्गत अपराध और दण्ड, सैन्यव्यवस्था, राजकरव्यवस्था, आर्थिकव्यवस्था के अन्तर्गत खेती-बारी, वनिज-व्यापार, उद्योग-धन्धे, सामाजिकव्यवस्था के अन्तर्गत जाति-पाति, स्त्रियो का स्थान, अध्ययन-अध्यापन, कला और विज्ञान, रीति-रिवाज, तथा धार्मिकव्यवस्था के अन्तर्गत श्रमण सम्प्रदाय, लौकिक देवी-देवता आदि की उपयोगी चर्चा भी प्राकृत जैन कथाग्रन्थो में की गयी है।

कथाओं के प्रकार

कथा के दो प्रकार बताये है—चरित (जिसमें महान् पुरुषो के यथार्थ चरितो का वर्णन हो) और कल्पित (जिसमें कल्पना—प्रधान कथाएँ हो)। स्त्री और पुरुष के भेद से दोनो के दो भेद है। धर्म, अर्थ और काम सम्बधी कार्यो से सम्बद्ध दृष्ट, श्रुत और अनुभूत वस्तु का कथन चरित-कथा है। इसके विपरीत, कुशल पुरुषो द्वारा जिसका पूर्वकाल में उपदेश किया गया हो, उसकी अपनी बुद्धि से योजना कर कथन करना कल्पित-कथा है। चरित और कल्पित आख्यान अद्‌भुत, शृङ्गार और हास्यरसप्रधान होते है।[1]

अन्यत्र अर्थ, धर्म और काम की अपेक्षा पुरुषो के तीन प्रकार कहे गये है। अर्थ की अपेक्षा उत्तम पुरुष अपने पिता और पितामह द्वारा अर्जित धन का उपभोग करता हुआ उसमें वृद्धि करता है, मध्यम पुरुष उसकी हानि करता है और अधम पुरुष उसे खा—पीकर ठिकाने लगा देता है। धर्म की अपेक्षा, स्वयबुद्ध पुरुष को उत्तम और बुद्धो द्वारा बोधित पुरुष को मध्यम कहा गया है। काम की अपेक्षा दूसरे को चाहता है और दूसरा भी उसे चाहता है, उसे उत्तम, जिसे अन्य कोई चाहता है लेकिन चाहने वाले को वह नहीं चाहता उसे मध्यम, तथा जो अन्य किसी को चाहता है लेकिन अन्य उसे नहीं चाहता, उसे अधम पुरुष कहा गया है।[2]

---

१ वसुदेवहिण्डी, पृ० २०८–९

२ वही, पृ० १०१। तुलनीय, शुकसप्तति (५७ वीं कथा) की कथा से। यहाँ उत्तम, मध्यम और अधम के निम्न लक्षण बताये गये हैं—

उत्तम—रक्ता यो भामिनीं देवि ! सक्ता कामयते सदा।
तथापि काम्यतेऽत्यर्थमुत्तम सोऽभिधीयते ॥२६५॥

मध्यम—कामिनीभि स्मरार्ताभि सतत काम्यते हि य।
न ता कामयते नम्रो मध्यमो नायक. स्मृत ॥२६४॥

अधम—हतो मन्युसहस्रैर्य सततो मदनाग्निना।
रक्तश्च यो विरक्ताया सोऽधम परिकीर्तित ॥२६३॥

दशवैकालिक निर्युक्ति में अर्थ, काम, धर्म और मिश्रित कथाओ के भेद से कथा के चार भेद वताये है ।[1] हरिभद्रसूरि ने इस भेद को मान्य किया है ।[2] किन्तु कुवलयमाला के कर्त्ता दाक्षिण्यचिह्न उद्योतनसूरि ने अर्थ और कामकथा के पूर्व धर्मकथा का उल्लेख कर धर्मकथा को प्रमुखता दी है । इसी रचना में अन्यत्र कथा के पाच प्रकार वताये गए है—सकलकथा, खण्डकथा उल्लापकथा, परिहासकथा तथा वरकथा ।[3] कुवलयमाला को सकीर्ण कथा कहा गया है क्योकि इसमें समस्त कथाओ के लक्षण विद्यमान है[4] । हरिभद्रसूरि ने आचार्य परम्परागत दिव्य, दिव्य-मानुष्य कथाओ का उल्लेख किया है ।[5] कौतूहल की लीलावई—कहा में भी कथाओ के इन प्रकारो का उल्लेख है जिनकी रचना महाकवियो ने सस्कृत, प्राकृत तथा सकीर्ण (सस्कृत-प्राकृत) भाषाओ में की है ।[6] यहाँ व्याकरण (शव्दशास्त्र)

१. निर्युक्ति गाथा ३ १८८, हारिभद्रीयवृत्ति, पृ० १०६ ।

२ समराइच्चकहा, भूमिका, पृ० ३, पण्डित भगवानदास सस्कृत—छायानुवाद सहित, १९३८ ।

३ ७,८, पृ० ४ । हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन (८ ७–८ पृ० ४६२–६५) में आख्यायिका, कथा, आख्यान, निदर्शन, प्रवह्लिका, मन्थल्लिका, मणिकुल्या, परिकथा, खण्डकथा, सकलकथा, उपकथा और बृहत्कथा— ये कथा के भेद वताये हैं । साहित्यदर्पण (६ ३३४–३५) में निम्न-लिखित दस भेद पाये जाते हैं—आख्यायिका, कथा, कथानिका, खण्डकथा, परिकथा, सकल-कथा, आख्यान, उपाख्यान, चित्रकथा और उपकथा । समराइच्च कहा को सकलकथा कहा गया है । आख्यायिका ऐतिहासिक अथवा परम्परागत होती है जबकि कथा में कल्पना का प्राधान्य पाया जाता है । शृङ्गार प्रकाश के कर्ता भोजराज ने वाण की कादम्बरी और कौतूहल की लीलावई को श्रेष्ठ कथाएँ कहा है । अन्य प्राकृत काव्यो में शूद्रककथा इन्दुमती (खण्डकथा), सेतुवन्ध गोरोचना, अनगवती (मन्थुल्ली), चेटक (प्रवह्लिका), मारीचवध, रावण-विजय, अभिमन्यन, भीमकाव्य, हरिविजय का उल्लेख किया है । डाक्टर वी राघवन, भोजराज-शृङ्गारप्रकाश, पृ० ८१८, मद्रास, १९६३, काव्यानुशासन, ८ ८, पृ० ४६३–६५ ।

४ कहीं कुतूहल से, कहीं परवचन से प्रेरित होने के कारण, कहीं सस्कृत में, कहीं अप-भ्रश में, कहीं द्राविड और पैशाची भाषा मे रचित, कथा के सर्वगुणों से सपन्न, शृङ्गार रस से मनोहर, सुरचित अग से युक्त, सर्व कलागम से सुगम कथा सकीर्णकथा है—

कोऊहलेण कत्थइ पर—वयण—वसेण सक्कय—णिवद्धा ।
किंचि अवब्भंस—कया दाविय—पेसाय—भासिल्ला ॥

सव्व—कहा—गुण—जुत्ता सिंगार—मणोहरा सुरइयगी ।
सव्वकलागम—सुहया सकिण्ण—कहत्ति णायव्वा ॥- कुवलयमाला ७, पृ० ४

५ समराइच्चकहा, पृ० ३

६. गाथा, ३५–३६ ।

को महत्त्व न देते हुए उसी कथा को श्रेष्ठ कहा है कि जिससे सरलता पूर्वक स्पष्ट अर्थ का ज्ञान हो सके[1]

विकथाओं का त्याग

जान पडता है कि कालान्तर में शनै शनै धर्मकथा की ओर से विमुख होकर जैन श्रमण (बौद्ध भी) अशोभन कथाओ की ओर आकर्षित होने लगे जिससे आचार्यों को विकथाओं[2] स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा–से दूर रहने का आदेश देना पडा ।[3] बौद्धसूत्रो में कहा है कि बौद्ध भिक्षु उच्च शब्द करते हुए, महाशब्द करते हुए, खटखट शब्द करते हुए राजकथा, चोरकथा जनपदकथा, स्त्रीकथा आदि अनेक प्रकार की निरर्थक कथाओ में सलग्न रहते थे, जब कि गौतम बुद्ध ने इन कथाओं का निषेध कर, दान, शील और भोगोपभोग त्याग संबधी कथाएँ कहने और श्रवण करने का उपदेश दिया ।[4]

दशवैकालिक निर्युक्ति (२०७) में स्त्री, भक्त, राज, चोर, जनपद, नट, नर्तक जल्ल (रस्सी पर खेल दिखाने वाले बाजीगर), और मुष्टिक (मल्ल) विकथाओ का उल्लेख है ।[5] यहाँ जैन साधुको को आदेश है कि उन्हे शृङ्गार रस से उद्दीप्त, मोह से फूत्कृत, जाज्वल्यमान मोहोत्पादक कथा न कहनी चाहिए । तो फिर कौनसी

१ भणिय च पिययमाए पिययम किं तेण सद्दसत्थेण ।
जेण सुहासिय-मग्गो भग्गो अम्हारिस जणस्स ॥
उवलब्भइ जेण फुड अत्थो अकयत्थिएण हियएण ।
सो चेय परो सद्दो णिच्चो किं लक्खणेणम्ह ॥ ३९–४०।

२ विकथा का लक्षण–
जो सजओ पमत्तो रागद्दोसवसगओ परिकहेइ ।
सा उ विकहा पवयणे पण्णत्ता धीरपुरिसेहिं ॥–दशवैकालिकनिर्युक्ति (३ २११, पृ० ११३अ)
– जो कोई सयत मुनि प्रमत्त भाव से रागद्वेष के अधीन हुआ कथा कहता है, उसे प्रवचन में धीर पुरुषों ने विकथा कहा है ।

३ स्थानाग सूत्र में चार विकथाओं का और समवायाग (२९) मे विकथानुयोग का उल्लेख है । तथा देखिए, निशीथ भाष्य (पीठिका, ११८–३०) ।

४ देखिए विनयपिटक, महावग्ग ५ ७ १५, नालन्दा देवनागरी पालि ग्रन्थमाला, १९५६ तथा दीघनिकाय, सामञ्ञफलसुत्त (१–२), पृ० २५, पोट्ठपादसुत्त (१–९), पृ० ६७, महापदानसुत्त (२–१), पृ० १०७, उदुम्बरिकसीहनाद (३–२), पृ० २२६, राहुल साकृत्यायन, हिन्दी अनुवाद, १९३५ ।

५ वट्टकेर के मूलाचार (वाक्यशुद्धि–निरूपण) में स्त्री, अर्थ, भक्त, खेट, कर्वट, राज, चोर, जनपद, नगर और आकर कथाओं के नाम आते हैं । देवेंद्रसूरिकृत सुदसणा-चरिय (प्रथम उद्देश) में राज, स्त्री, भक्त और जनपद कथाओं के त्याग का उपदेश है ।

कथा वे कहे। वैराग्य से पूर्ण तप और नियम संबंधी कथाएँ, जिन्हे श्रवण कर संवेग निर्वेद भाव की वृद्धि हो। अर्थबहुल कथा का इस प्रकार कथन करना चाहिए जिससे कि कथा के बहुत लम्बी हो जाने से श्रोता को वह भारी न पडे अति प्रपच वाली कथा से कथा का प्रयोजन ही नष्ट हो जाता है, अतएव क्षेत्र, काल, पुरुष तथा अपनी सामर्थ्य को समझ–बूझकर निर्दोष कथा कहना ही उचित है।[1]

३. शृङ्गारप्रधान कामसंबंधी कथाएँ

कहा जा चुका है कि कथा को रोचक बनाने के लिए उसमे मनोरंजन, कुतूहल एव जिज्ञासा का भाव आवश्यक है। लेकिन कथा को सरस बनाने के लिए उसमे प्रेम तत्त्व भी चाहिए। प्रेम में रूप–सौन्दर्य को आत्मसात् करने के लिए अपनी वैयक्तिकता के बाहर जाकर हमें उस व्यक्ति, विचार अथवा क्रिया–कलाप के साथ तादात्म्य स्थापित करना होता है। जब हम किसी सुन्दर नायिका को बार–बार देखते है तो उससे हमारे मन में उसके प्रति प्रेमभाव उत्पन्न होता है। प्रेम से रति, रति से विश्रम्भ और विश्रम्भ से प्रणय की उत्पत्ति होती है।[2] रति

---

१ सिंगाररसुत्तइया मोहकुवियफुफुगा हसहसिति ।
ज सुणमाणस्स कह समणेण ण सा कहेयव्वा ॥
समणेण कहेयव्वा तवनियमकहा विरागसजुत्ता ।
जं सोऊण मणुस्सो वच्चइ सवेगनिव्वेय ॥
अत्थमहंतीवि कहा अपरिक्लिेसबहुला कहेयव्वा ।
हदि महया चडगरतणेण अत्थ कहा हणइ ॥
खेत्तं काल पुरिस सामत्थ चप्पणो वियाणेत्ता ।
समणेण उ अणवज्जा पगयमि कहा कहेयव्वा ॥ २१२–१५

यहा कथा के मूलकर्ता और आख्याता की अपेक्षा, कथाओं को अकथा, कथा और विकथा–इन तीन भागों मे विभक्त किया है। कथा का लक्षण है

तवसजमगुणधारी ज चरणत्था कहिंति सब्भाव ।
सव्वजगजीवहिय सा कहा देसिया समये ॥२१०॥

— जिसे तप और सयम के धारक सद्भावपूर्वक कहते हैं, ससार के समस्त जीवों का हित करने वाली वह कथा सत्कथा है।

२ सइ दसणाउ पेम्म पेमाउ रई रईए विस्सभो ।
विस्सभाओ पणओ पर्चावह वड्ढए पेम्म ॥

– बृहत्कल्पभाष्य (१ २२६८–६९), दशवैकालिकचूर्णी ३, पृ० १०६, गाथा सप्तशती (७ ७५) मे प्रेम का निम्नलिखित मार्ग बताया है–

अत्थक्करूसण खणपसिज्जण अलिअवअणणिब्बधो ।
उम्मच्छरसन्तावो पुत्तअ ! पअवी सिणेहस्स ॥

– अचानक रूठ जाना, क्षणभर मे प्रसन्न हो जाना, झूठ बोलकर किसी बात का आग्रह करना और ईर्ष्या के कारण सतप्त रहना–यह प्रेम का मार्ग है।

शृङ्गार रस का स्थायी भाव है। शृङ्गार रसो का राजा है और इसी रस को पूर्ण रस माना गया है, वाकी इसकी सपूर्णता की मध्यवर्ती स्थितियाँ वतायी गयी है।

प्राचीन ग्रन्थो में रूप सौन्दर्य, अवस्था, वेशभूषा, दाक्षिण्य, कलाओ की शिक्षा तथा दृष्ट (देखे हुए), श्रुत (सुने हुए) और अनुभूत (अनुभव किये हुए) का परिचय प्रकट करने को काम कथा कहा है।[1] हरिभद्रसूरि ने इसी का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि जिसमे काम उपादान रूप में हो तथा वीच-वीच मे दूती व्यापार, रमणभाव, अनगलेख, ललित कला और अनुरागपुलकित आदि का वर्णन किया गया हो, उसे कामकथा कहते है।[2]

अगड़दत्त का कामोपाख्यान

अगडदत्त उज्जैनी के अमोघरथ नाम के सारथी का पुत्र था। पिता का देहान्त हो जाने पर वह कौशाम्वी पहुँचा और अपने पिता के परम मित्र दृढप्रहारी नामक आचार्य के पास रहकर शस्त्रविद्या सीखने लगा। यहाँ आचार्य के पडोस मे रहने वाली सामदत्ता नाम की सुन्दर युवती से उसका परिचय हो गया। वह प्रतिदिन विद्या सीखने में सलग्न अगडदत्त पर फल, पत्र और पुष्पमाला फेककर उसका ध्यान आकृष्ट किया करती। एक दिन वह युवती उसी वृक्षवाटिका में आ पहुँची जहाँ अगडदत्त विद्याभ्यास कर रहा था। रक्त अशोक वृक्ष की शाखा को वायें हाथ से पकडे, अपने सहज उठाये हुए एक पैर को वृक्ष के स्कन्ध पर रखे हुए उस युवती पर अगड़दत्त की नजर पडी। वह कैसी थी ? नवशिरीष के सुन्दर पुष्पके समान, सुवर्ण के कूर्म जैसे चरणो वाली, अत्यन्त विलास के कारण चकित करने वाले कदलीस्तम्भ के समान उरुयुगल वाली, महानदी के तट के स्पर्श के समान सुकुमार जंघा वाली, हंसपक्ति के समान शब्द करती हुई कटिमेखला वाली, ईषत् रोम पंक्ति वाली, कामरति मे वृद्धि करनेवाले, उरुतट की शोभा बढाने वाले सघर्ष के कारण वृद्धि को प्राप्त सज्जन जनो की मित्रता की भाँति बढने वाले तथा परस्पर अन्तर रहित पयोधरो वाली, प्रशस्त लक्षणो से युक्त और

१ रूव वओ य वेसो दक्खत्तं सिक्खिय च विसएसु।
दिट्ठ सुयमणुभूय च सथवो चेव कामकहा
— दशवैकालिक निर्युक्ति ३. १९२, पृ० १०९

२ जा उण कामोवायाण विसया वित्त-वपु-व्वय-कला-दक्खिण्णपरिगया, अणुराअ पुलइअ-पडिवत्तिजोअसारा, दूईवावाररमियभावाणुवतणाइ पयत्थसगया सा कामकहत्ति भण्णइ।
— समराइच्चकहा, पृ० ३

रोमयुक्त बाहुलता वाली, रक्त हथेली से युक्त, कोमल, अतिरेखा से अवहुल क्रमागत सुजात उङ्गलियो तथा रक्त-ताम्र नखो से युक्त अग्रहस्त वाली, वहुत अधिक प्रलम्बमान नहीं ऐसे रक्त ओठ वाली, सुजात, शुद्र और सुन्दर दन्तपक्ति वाली; रक्तकमल के पत्र की भाँति जिह्वा वाली, उत्तम और उन्नत नासिका वाली, अंजुलिप्रमाण, तिर्यक्, विस्तृत, नील कमल के पत्र की भाँति नयनो वाली, सगत भृकुटियो वाली, पचमी के चन्द्र के समान ललाटपट्ट वाली तथा काजल और भ्रमरावलि के समान मृदु, विशद, और सुगन्धि फैलाने वाले, सर्व कुसुमो से सुवासित केशपाश वाली।[1]

अपना परिचय देने के उपरात सामदत्ता ने निवेदन किया कि जबसे उसने अगड़दत्त को देखा है तभी से वह काम-बाण से घायल हो गयी है, और काम से पीडित हो उसकी शरण आई है।[2]

अगडदत्त ने उत्तर दिया—सुन्दरी ! मै यहाँ विद्याध्ययन करने आया हूँ, विनय का उल्लघन करना मेरे लिए उचित नहीं।

सामदत्ता—भर्तृदारक ! आप जानते है, कामी कौन होता है? कुलशील में कोई कलक उपस्थित न करने वाला व्यक्ति कामी नहीं कहा जाता।[3]

धर्मकथाओंमें शृङ्गार

इस तरह के अन्य कितने ही प्रेमाख्यान प्राचीन जैन कथाग्रथो में उल्लिखित है जिससे पता लगता है कि जैन ग्रंथकारो ने धर्म-कथाओ में शृङ्गारयुक्त प्रेमाख्यानो का समावेश कर उन्हे अपने पाठको और श्रोताओं के लिए रुचिकर बनाने की चेष्टा की। वसुदेवहिंडीकार ने लिखा है—नहुष, नल, धुंधुमार, निहस, पुरुरव, माँधाता, राम रावण, जनमेजय, राम, कौरव, पंडुसुत, नरवाहनदत्त आदि लौकिक कामकथाएँ सुनकर लोग एकान्त मे काम-कथाओ का रस लेते है। इससे सुगति को ले जाने

१. वही, पृ० ३५-३७। नेमिचन्द्र आचार्य की उत्तराध्ययन की वृत्ति में सामदता की जगह कनकमजरी का नाम है, वह विवाहित थी। उल्लेखनीय है कि वसुदेवहिंडी में अन्यत्र भी नायिकाओं का वर्णन इसी प्रकार की साहित्यिक समासात पदावली में किया गया है। देखिये गंधर्वदत्ता (पृ० १३२), वधुमती (२८०) केतुमती (३४९), प्रभावती (३५१) आदि के वर्णन।

२. इस प्रसंग पर नेमिचन्द्रीय उत्तराध्ययन वृत्ति (पृ० ८४-अ) में काम की दस अवस्थाओं का वर्णन है। इसके पूर्व बृहत्कल्पभाष्य (२२५८-६१) में दस कामवेगों का वर्णन है।

३. वसुदेवहिण्डी, पृ० ३८

वाले धर्म श्रवण करने की इच्छा भी उनमें नहीं रहती—ऐसे ही जैसे कि ज्वरपित्त से जिसका मुँह कड़ुआ हो गया है, उसे गुड-शक्कर खाण्ड अथवा बूरा भी कड़ुआ लगने लगता है।.. .अतएव जैसे कोई वैद्य अमृतस्वरूप औषध-पान से पराङ्मुख रोगी मनोभिलषित औषधपान के बहाने अपनी औषधि पिला देता है, उसी प्रकार कामकथा में रत हृदय वाले लोगो का मनोरंजन करने के लिए, मै शृङ्गारकथा के बहाने अपनी धर्मकथा उन्हे सुनाता हूँ।'[1]

कुवलयमाला के कर्त्ता उद्योतनसूरि ने भी अपनी धर्मकथा को कामशास्त्र से सम्बद्ध बताते हुए कहा है कि पाठक इसे अर्थविहीन न समझें, क्योकि धर्म की प्राप्ति में यह कारण है।[2] सुविज्ञ श्रोताओ एवं पाठको से अपनी कथा को कान देकर श्रवण करने का अनुरोध करते हुए, नवागत वधू से उसकी तुलना करते हुए ग्रंथकार ने कहा है—

"वह अलकार सहित है, सुभग है, ललित पदावलि से युक्त है मृदु और मंजुल सलाप वाली है, सहृदय जनो को आनन्द प्रदान करने वाली है—इस प्रकार नववधू के समान वह शोभित होती है।"[3]

प्रेमक्रीडाएँ

कितनी ही वार वसत क्रीडाओ अथवा मदन-महोत्सवो आदि के अवसरो पर नववेश धारण किये हुए युवक और युवतियो का परस्पर मिलन होता और मदनशर से घायल हो वे अपनी सुध-बुध खो बैठते है। युवक कामज्वर से पीडित रहने लगता, युवती की भी यही दशा होती। कर्पूर, चन्दन और जलसिंचित तालवृन्त आदि से उपचार किया जाता। प्रेम-पत्रो का आदान प्रदान शुरू हो जाता। कभी कोई युवती किसी राजा आदि के गुणो की प्रशसा सुन, अथवा उसका चित्र देख उस पर मुग्ध हो जाती। सदेशवाहक का काम शुक से लिया जाता। शुक के पेट में से एक सुन्दर हार और कस्तूरी से लिखा हुआ प्रेमपत्र निकलता। पत्र पढकर

१. वसुदेवहिंडी भाग २ मुनि पुण्यविजयजी की सशोधितहस्तलिखित प्रति पृ ३

२ अम्हे वि एरिसा चउव्विहा धम्मकहा समाढत्ता। तेण किंचि कामसत्थसवद्ध पि भणिहिइ त च मा णिरत्थयं ति गणेज्जा। किंतु धम्मपडिवत्तिकारण ।

—कुवलयमाला ९, पृ० ५

३ सालंकारा सुहया ललियपया मउय-मजु-सलवा।
सहियाण देइ हरिस उव्वूढा णववहू चेव ॥

—वही, ८, पृ०४

राजा व्याकुल हो जाता और अपनी प्रेमिका की खोज में निकल पडता ।[1] पुरुषो का भी यही हाल था । किसी रूपवती युवती के रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा से आकृष्ट हुआ राजा रत्नशेखर जोगिनी का रूप धारण कर उससे मिलने के लिए प्रस्थान करता है । कामदेव के मदिर मे प्रेमी और प्रेमिका का मिलन होता है ।[2] कभी सर्पदंश अथवा उन्मत्त हस्ती के आक्रमण से किसी युवती की रक्षा करने के उपलक्ष्य मे युवती के माता-पिता युवक के बल-पौरुष से प्रभावित हो, अपनी कन्या उसे दे देते । सार्वजनिक नृत्य के अवसर पर सुन्दर नर्तकी के कटाक्षबाण से घायल हुआ कोई छैल–छबीला नर्तकी को प्राप्त करने का प्रयत्न करता, अथवा वीणावादन आदि प्रतियोगिताओ में विजयी होकर युवती के पाणिग्रहण का भागी होता । गणिका की कन्याओ से विवाह करना भी नीतिविरुद्ध न समझा जाता ।[3]

वसुदेवहिडी में अनेक प्रसग ऐसे आते है जबकि किसी सुन्दर स्त्री के रूप–लावण्य से आकृष्ट हो कोई युवक उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है अथवा किसी साधु-मुनि या नैमित्तिक की भविष्यवाणी के अनुसार दोनो का परिणय हो जाता है ।

कनकरथ राजा की रानी चन्द्राभा द्वारा पद प्रक्षालन के समय उसके कोमल करस्पर्श से काम पीडित हुआ मधु, चन्द्राभा को प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा । कनकरथ के साथ उसने मेल जोल बढाया जिससे कनकरथ अपनी रानी के साथ मधु के घर आने जाने लगा । एक दिन मौका पाकर मधु ने चन्द्राभा के आभूषण तैयार कराने के बहाने उसे घर में रोक कनकरथ को विदा कर दिया ।[4]

विद्याधरो में तो एक दूसरे की भार्या का अपहरण करने की मानो होड लगी रहती थी। विद्याधरो के स्वामी मानसवेग ने कृष्ण के पिता वसुदेव को इसलिए बांध लिया कि उसने उसकी बहन से स्वेच्छानुसार विवाह कर लिया था । और मानसवेग ने वसुदेव की भार्या का अपहरण कर लिया ।[5] इसी प्रकार विद्याधरराज

१ देखिए पद्मचन्द्रसूरि के अज्ञातनामा शिष्यकृत प्राकृतकथासग्रह में उल्लिखित सुन्दरीदेवी का आख्यान, जगदीशचन्द्र जैन प्राकृत साहित्य का इतिहास पृ० ४७३ ।

२ जिनहर्षगणिकृत रयणसेहरीकहा । मिलाइए, मलिक मुहम्मद जायसी की पद्मावत की कथा के साथ। प्राकृत साहित्य का इतिहास पृ० ४८३–८५

३ वसुदेवहिण्डी पृ० १०:

४ वही पृ०९०

५ वही, पृ० ३०८

अमितगति की भूमिगोचरी प्रिया सुकुमालिका को धूमसिह विद्याधर हरकर ले गया था।[1]

गांधर्व विवाह की मान्यता

गाधर्व विवाह में एक-दूसरे की पसन्दगी मुख्य रहती थी। कन्या के माता-पिता की अनुमति के विना, विना किसी धार्मिक क्रियाकाण्ड और कुल-गोत्र के निश्चय के ये विवाह हो जाते और इन विवाहो में किसी को आपत्ति न होती थी।[2] वसुदेवहिडी के नायक वसुदेव ने १०० वर्ष तक परिभ्रमण कर अनेक विद्याधरो और राजकन्याओ से विवाह किये। इन्हीं विवाहो को लेकर सघदासगणि वाचक ने वसुदेवहिंडी के प्रथम खण्ड मे २९ और धर्मदासगणि ने मध्यम खण्ड (अप्रकाशित) के ७१ लम्बको मे वसुदेव के परिभ्रमण की कथा लिखी है।

तीसरे लम्बक में, कथानायक वसुदेव ने जब श्रेष्ठी चारुदत्त की कन्या को वीणावादन में जीत लिया तो चारुदत्त कहने लगा—"आपने अपने दिव्य पुरुषार्थ द्वारा गन्धर्वदत्ता को प्राप्त किया है, अब आप निर्विघ्न रूप से इसका पाणिग्रहण करें। लोकश्रुति है—ब्राह्मण के ब्राह्मणी, क्षत्रियाणी, वैश्या और शूद्राणी—ये चार भार्याएँ हो सकती हैं[3]। यह आपके अनुरूप है, अतएव आप इसे ग्रहण करे। कुल-गोत्र जानकर आप क्या कीजिएगा? अतएव या तो आप अग्नि मे होम करे या मेरी पुत्री को करने दे"[4]

२७ वे लबक में रिष्टपुर के राजा रुधिर की कन्या रोहिणी के स्वयवर के अवसर पर उत्तम वस्त्रालंकारो से विभूषित राजा लोग स्वयवर मडप के मच पर आसीन थे। कथानायक वसुदेव भी पणव (ढोलक) बजाने वालो के साथ पणव हाथ में लिये बैठे थे। कचुकी और महत्तरो से घिरी हुई रोहिणी ने मण्डप में

१ वही, पृ० १४०। द्वारका की राजकुमारी कमलामेला का विवाह राजा उग्रसेन के नाती धनदेव के साथ होना निश्चित हो गया था। विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं। इस समय शंब ने विद्याधर का वेश धारण कर कमलामेला का अपहरण कर लिया और अपने मित्र बलदेव के पौत्र सागरचन्द्र के साथ उसका विवाह करा दिया। देखिए, बृहत्कल्पभाष्य १७२ और वृत्ति, पीठिका, पृ० ५६-५७, दो हजार बरस पुरानी कहानियाँ (प्रथम संस्करण), पृ०१७३।

२ आर. सी टैम्पल के अनुसार, गाधर्व विवाह की प्रतिष्ठा इस बात की ओर लक्ष्य करती है कि भारत के क्षत्रिय राजा विदेशों में पहुँच गये थे। द ओशन ऑफ स्टोरी का आमुख

३ बुधस्वामी के बृहत्कथाश्लोकसग्रह (१७, १७५, पृ० २१६) मे इस प्रसंग पर अपने कथन के प्रमाण में मनु का निम्न श्लोक उद्धृत किया है—

अग्रजोऽवरजा भार्यां स्वीकुर्वन् न प्रदुष्यति।

४. वसुदेवहिडी, पृ० १३२

प्रवेश किया। जरासंध, कंस, पाण्डु, दमघोप, द्रुपद, सजय आदि उत्तम कुल, शील, ज्ञान और रूप से सम्पन्न अनेक राजाओ का रोहिणी की लेखिका ने परिचय कराया। लेकिन रोहिणी को कोई भी आकृष्ट न कर सका। अन्त में वसुदेव के पणव का मधुर शब्द सुनकर वह प्रभावित हुई और वसुदेव के गले में उसने वरमाला डाल दी। यह देखकर स्वयंवरमडप में उपस्थित राजागण क्षुब्ध हो उठे। कुछ लोग कहने लगे कि उसने तो एक बाजा बजाने वाले को वर लिया है!

दंतवक्र ने कन्या के पिता को ताना मारते हुए कहा—"यदि तेरा अपने कुल पर अधिकार नहीं, तो तू उत्तम वंशोत्पन्न राजाओं को एकत्र क्यो करता-फिरता है?"

रुधिर ने उत्तर दिया—मै क्या कर सकता हूँ। स्वयवर का मतलब ही है कि कन्या अपनी पसन्दगी का वर चुने।

दतवक्र - ठीक है कि तुमने अपनी कन्या स्वयंवर में दी है, किन्तु मर्यादा का उल्लंघन करना उचित नहीं है। इस वरण किये हुए पुरुष को त्याग कर, हम क्षत्रियो में से किसी को यह क्यो नही वर लेती?

यह सुनकर वसुदेव से बिना बोले न रहा गया। उसने कहा—क्या गायन-वादन आदि कलाओं की शिक्षा क्षत्रियो के लिए निषिद्ध है जो तू मेरे हाथ में पणव देखकर मुझे अक्षत्रिय कहता है? याद रख, अब तो बाहुबल ही मेरे कुल का निश्चय करेगा। आओ, युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।[1]

इस प्रकार स्वयवर में कन्या के लिए युद्ध हो जाना साधारण-सी बात थी, बल्कि युद्ध होना आवश्यक माना जाता था। नहीं तो क्षत्रिय राजाओ को अपने पौरुष के प्रदर्शन का और कौनसा अवसर था।

श्रावस्ती नगरी के राजा एणीपुत्र ने अपनी कन्या प्रियगुसुन्दरी के स्वयम्वर की घोषणा की। किन्तु स्वयम्वर में कोई राजा उसे पसन्द नहीं आया। वह मडप से ऐसे ही लौट गयी जैसे कि समुद्र की लहरो से प्रतिहत नदी लौट जाती है। यह देखकर राजा क्षुब्ध हो उठे। वे कहने लगे—इतने क्षत्रियो में-से क्या उसे एक भी पसन्द नहीं पडा?

एणीपुत्र को लक्ष्य करके उन्होने कहा कि उसने नाहक ही इतने राजाओ को बुलाकर उनका अपमान किया।

१. वसुदेवहिंडी, पृ० ३६४

एणीपुत्र ने उत्तर दिया—कन्या को स्वयम्वर में देने के पश्चात् उस पर पिता का अधिकार नहीं रह जाता। तुम लोगो का कौनसा अपमान हो गया ?

राजाओ ने रुष्ट होकर कहा—ये सब झूठ है। हमेशा पराक्रम की जय होती है। यदि हम बल का प्रयोग करे तो देखते है, यह हमें कैसे वरण नहीं करती ?

तत्पश्चात् दोनो दलो में युद्ध ठन गया।[1]

कामक्रीडा का वर्णन

कहा जा चुका है कि धर्मकथाओ मे शृङ्गार रस का पुट देकर जैन आचार्यों ने अपने कथा-साहित्य को अधिक-से-अधिक रोचक बनाने का प्रयत्न किया। कथानायक को देश-देशान्तरो मे परिभ्रमण करा, अनेक सुन्दरियो के साथ उसका विवाह कराया गया। विवाह के पश्चात् कामक्रीडा के साधनो को जुटाया गया। नायक और अपनी नायिका को उन्होने गर्भगृह में प्रवेश कराया जहाँ सभोगसुख का आस्वादन करते हुए, रतिजन्य खेद से श्रात दोनो सुख की निद्रा का आलौकिक आनन्द लेने लगे। गर्भगृह में पहुँच, नायक वहाँ बिछे हुए सुन्दर कोमल शयनीय पर विश्राम करता और परिचारिका उसके पैरो का अपने कोमल हस्तो और वक्षस्थल का अपने सुकुमार उरोजो द्वारा सवाहन कर उसकी श्राति दूर करती। जैसे हस्तिनी हस्ती को रतिसुख का आनन्द देती है, वैसे ही परिचारिका नायक को आनन्द प्रदान करती।[2]

जैन रामायण के अनुसार, राजा दशरथ की पत्नी कैकेयी शयनोपचार (सयणोवयार)[3]—कामक्रीडा में विचक्षण थी, इसलिए राजा ने उससे वर मांगने का अनुरोध किया था।[4]

१. वही, पृ० २६५–६६

२ वही, पृ० १०२। बुधस्वामीकृत बृहत्कथाश्लोकसग्रह (१० १३९–१५३, पृ० १२३–२४) में इस प्रसग पर रतिजन्यसक्षोभ दूर करने के लिए स्तनोत्पीडित नामक सवाहन श्रेष्ठ बताया गया है। परिचारिका श्रेष्ठ स्तनों वाले अपने वक्ष के द्वारा नायक के वक्ष का सवाहन करती है। वसुदेवहिंडी और बृहत्कथाश्लोकसग्रह दोनों ही रचनाएँ गुणाढ्य की बड्डकहा (आजकल अनुपलब्ध) से प्रभावित जान पड़ती हैं। इस सबन्ध में आगे चलकर चर्चा की जायगी।

३ इसे पवियारसुख (प्रविचारसुख=सभोगसुख) भी कहा गया है। वसुदेवहिण्डी, पृ० १३३

४ वसुदेवहिंडी, पृ० २४१

काम पुरुपार्थ की मुख्यता

हरिभद्रसूरि ने काम की मुख्यता प्रतिपादन करते हुए उसके अभाव में धर्म और अर्थ की सिद्धि का निपेध किया है। समराइच्चकहा में समरादित्य अशोक, कामांकुर और ललितांग[1] नामक मित्रो के साथ कामशास्त्र की चर्चा करता है, उद्यानो मे रमण करता है, हिंडोलो में झूलता है, कुसुमो की शैया रचता है और विपमवाण (कामदेव) की स्तुति करता है। चारो मित्र कामशास्त्र की चर्चा करते हुए काम को सपूर्ण रूप से त्रिवर्ग का साधन मानते है। कामशास्त्रोक्त प्रयोग जानने वाला पुरुप ही अपनी स्त्री के चित्त का सम्यक् प्रकार से आराधन कर सकता है, और पुत्रोत्पत्ति होने से वह विशुद्ध दान आदि क्रिया के कारण महान् धर्म की उपलब्धि का भागी होता है। यदि स्त्री के चित्त का आराधन न किया जाये तो उसका सरक्षण नहीं हो सकता। तथा, स्त्री का सरक्षण न होने से शुद्ध सतति (पुत्र) के अभाव में, नरकगमन के कारण विशुद्ध दान आदि क्रिया सपन्न नहीं हो सकती। इससे महान् अधर्म का भागी होना पडता है। काम के अभाव मे धर्म और अर्थ की प्राप्ति नहीं होती और ऐसा न होने से पुरुपार्थता ही निष्फल है।[2]

प्रेमपत्र-व्यवहार

साधु-साध्वियो के सम्पर्क न होने के सम्बन्ध में जैन आचार-ग्रन्थो में कठोर नियमो का विधान है, फिर भी उनके बीच पत्राचार को रोकना असभव हो जाता था।

कामोद्दीपक वर्षा ऋतु का आगमन देखकर किसी साधु का मन विचलित हो जाता है और वह प्रेमपत्र द्वारा अपने मन की दशा अभिव्यक्त करता है—

यह समय मयूरो को आनन्द देने वाला है, मेघ आकाश में छाये हुए हैं। हे मित, मधुर मजुभाषिणी! जो अपनी प्रिया के साथ है, वे कितने वडभागी है।

पत्र का उत्तर देखिए—

१ वसुदेवहिंडी (पृ० ९–१०) में गर्भवास के दुख के उदाहरण स्वरूप ललिताग का आख्यान आता है। कुमारपालप्रतिवोध (प्रस्ताव ३) में शीलवती कथा के अतर्गत अशोक, ललिताग और कामाकुर के नाम आते हैं। परिशिष्ट पर्व (३ १९ २१५ ७५) भी देखिए।

२ अध्याय ९, पृ० ८६७–६६

"रात्रि में चांदनी छिटकी हुई है, वामा का मार्ग निरुद्ध है, मदन दुर्धर्ष है, शरदऋतु कितनी सुहावनी लग रही है, फिर भी समागम का कोई उपाय नहीं[1] !"

साधु-साध्वी का प्रेमपूर्ण संवाद

साधु—तुम आज भिक्षा के लिए नहीं गयी ?

साध्वी—आर्य ! मेरा उपवास है।

"क्यो ?

मोह का इलाज कर रही हूं। लेकिन तुम्हारा क्या हाल है ?

मै भी उसी का इलाज कर रहा हूँ।

(तत्पश्चात् दोनो मे प्रव्रज्या के सबन्ध में बातचीत होने लगती है)

साधु—तुमने क्यो प्रव्रज्या ग्रहण की ?

साध्वी—पति के मर जाने से।

"मैंने पत्नी के मर जाने से।"

(साधु उसे स्नेह-भरी दृष्टि से देखता है)

"क्या देख रहे हो ?"

साधु—दोनो की तुलना कर रहा हूँ। हँसने, बोलने और सौन्दर्य में तुम मेरी भार्या से बिल्कुल मिलती जुलती हो। तुम्हारा दर्शन मेरे मन में मोह पैदा करता है।

साध्वी—मेरा भी यही हाल है।

साधु—वह मेरी गोदी में सिर रखकर मर गयी। यदि वह मेरी अनुपस्थिति में मरती तो कदाचित् देवताओ को भी उसके मरने का विश्वास न होता। तुम वह कैसे हो सकती हो ?[2]

सिंहकुमार और कुसुमावली की प्रेम-कथा

राजकुमार सिंह अपने मित्रो से परिवेष्टित हो वसतक्रीडा के लिए क्रीडासुन्दर उद्यान मे पहुँचता है। राजकुमारी कुसुमावली भी अपनी सखियो के साथ वहाँ आई हुई है। दोनो की आँखे चार होती है। कुसुमावली की सखी कुमार का

---

१ काले सिही-णदिकरे, मेहनिरुद्धम्मि अबरतलम्मि।
मित-मधुर-मञ्जुभासिणि, ते धन्ना जे पियासहिया॥
कोमुतिणिसा य पवरा, वारियवामा य दुद्धरो मयणो।
रेहति य सरयगुणा, तीसे य समागमो णत्थि॥
—निशीथभाष्य ६, २२६३-४

२ निशीथविशेषचूर्णी, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ २४३

स्वागत करती है । माधवी पुष्पो की मालाके साथ सोने की तश्तरी में उसे पान देती है ।

मन में कुमार का स्मरण करती हुई कुसुमावली घर लौटती है । दीर्घ निश्वास छोड़ती हुई वह शैया पर आरूढ़ होती है । कुछ भी उसे अच्छा नहीं लगता । चित्रकर्म और अगराग उसने त्याग दिये है, तथा आहार और अपने भवन तक में उसकी रुचि नहीं रह गयी है । शुक-सारिका को पढाना गृहकलहस के साथ क्रीड़ा करना, गृहदीर्घिका में स्नान करना, वीणा वजाना और पत्रच्छेद्य को उसने तिलांजली दे दी है ।

अपनी प्रिय सखी मदनलेखा के साथ उसने वाल-कदलीगृह में प्रवेश किया वहाँ सुदर सेज तैयार की गयी । मदनलेखा सुन्दर कथालापो से उसका मनोरजन करती हुई तालवृन्त से पवन करती खडी रही । राजकुमारी अपनी प्रिय सखी से मन की वात न छिपा सकी ।

कुसुमावली ने राजहंस के वियोग में उसके दर्शन के लिए उत्सुक एक राजहसिनी चित्रित की । उसपर द्विपदीखण्ड[1] लिखा । मदनलेखा राजहंसनी और प्रियंगुमजरी के कर्णावतस ले और नागलता के पत्रयुक्त वहुमूल्य तांवूल लगाकर राजकुमार के समीप गयी ।

राजकुमार ने मदनलेखा का स्वागत किया । प्रियगुमंजरी को कान मे धारण किया, तांवूल को ग्रहण किया और प्रसन्नता पूर्वक राजहसनी को हाथ में ले, उत्सुकता से द्विपदीखण्ड को पढने लगा ।

कुसुमावली के कौशल से उसे आनन्द हुआ । पत्रच्छेद्य—कर्तरी से नागलता के पत्र को काट, उसने राजहसिनी की अवस्था के अनुरूप राजहस चित्रित कर उसपर निम्नलिखित गाथा लिखी—

"मृत्यु के वाद भी अपनी प्रिया के साथ उसका मिलन नहीं होगा, यह विचार कर यह राजहस अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करता हुआ, किसी तरह अपने प्राणो को धारण कर रहा है !"

वहुमूल्य वस्त्राभूपणो से सज्जित हो कुसुमावली ने विवाहमंडप में प्रवेश किया और वडी धूमधाम के साथ दोनों का विवाह हो गया[2] ।

१ इसमें चार पक्तियाँ होती हैं, प्रत्येक में २८ मात्रायें, ६, ४+५ और गुरु होता है, प्रथम और अतिम पाच चतुर्मात्राओं में या तो जगण होता है और या सभी वर्ण ह्रस्व होते हैं

२. समराइच्चकहा २, पृ० ७८–१०१

कुवलयचन्द्र और कुवलयमाला की प्रेमकथा

त्रैलोक्यसुन्दरी राजकुमारी कुवलयमाला के रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर कुवलयचन्द्र मदनशर से पीड़ित हो उसे प्राप्त करने का उपाय सोचता है । असख्य पर्वतो, प्रभूत देशो, नदियो एवं महानदियो और अटवियो को लांघ तथा अनेक दुखो को परिवहन कर वह विजयानगरी में प्रवेश करता है । उसके मन में आता है कि क्या स्त्रीवेश धारण कर राजा के कन्या-अन्त'पुर में प्रविष्ट हो त्रैलोक्यसुन्दरी के मुखचन्द्र का अवलोकन करे । फिर सोचता है, ऐसा करना ठीक नहीं क्योकि यह सत्पुरुष के लिए शोभास्पद नहीं, और राजविरुद्ध भी यह है । यदि किसी की भुजाओ में बल है तो स्त्रीवेश वह क्यो धारण करे ? तो फिर क्या किया जाये ? मायामय बुद्धि से, किसी सखी द्वारा सकेत प्राप्त कर, अश्व पर आरूढ हो, रात्रि के समय उसका अपहरण क्यो न कर लिया जाये ? लेकिन यह उचित नहीं । लोग कहेगे कि सुन्दरी का अपहरण कर वह कहाँ चला ? चोर समझकर वे मेरी निंदा करेंगे और यह बडा कलङ्क कहा जायेगा । तो क्या लज्जा को त्याग, उसे आज ही प्राप्त करने के लिए राजाओ के सम्मुख जा कर गिडगिडाऊ ? यह भी ठीक नहीं । ऐसा करने से मदन-बाण से घायल हुआ मै निर्लज्ज समझा जाऊगा । तो फिर एक ही उपाय है कि अपनी विषम कृपाण द्वारा योद्धाओ को परास्त कर और दृप्त हस्ती के कुभस्थल का विदारण कर, जयश्री की भाँति उसे मै बलपूर्वक उठा लाऊ ।

कुवलयमाला राजकुमार की परीक्षा के लिए कर्णाभूषण के अन्दर पत्रच्छेद्य द्वारा बनायी हुई राजहंसिनी पर द्विपदीखण्ड लिखकर अपनी दूती के हाथ उसके पास भेजती है । किसी विचित्र लिपि में सूक्ष्म अक्षरो में इस पर लिखा हुआ था—अभिनव दृष्ट प्रिय के शुभ सगम और स्पर्श की इच्छा करती हुई, दुस्सह विरह के दुःख से सतप्त, करुण आक्रंदन करती हुई, चचल नयनो के अश्रुजल के पूर से सिक्त और नियत्रित श्रेष्ठ राजहंसिका का अपने प्रिय हस के साथ मिलाप कब होगा ?

राजकुमार ने कोई प्रतिसन्देश न भेज केवल अपनी प्रेमिका के कलाकौशल की सराहना की ।

कुवलयचन्द्र अपने सखाओ के साथ किसी रमणीय उद्यान में पहुँचता है । उधर कुवलयमाला भी अपनी सखियो के साथ वहाँ आती है । कलहसिनियो में राजहसी की भाँति, ताराओ में शशिकला की भाँति, कुमुदनियो में कमलिनी की

भाँति, वनलताओ में कल्पलता की भाँति, अप्सराओ में तिलोत्तमा की भाँति और युवतियो में रति की भाँति कुवलयमाला के रूप-सौन्दर्य से अतिशय आकृष्ट राज-कुमार उसके निर्माता प्रजापति के कला-कौशल की भूरि-भूरि प्रशंसा करने के सिवाय और कर ही क्या सकता था ?

आखिर वह भी दिन आ पहुँचा जब कि मुनिवर की भविष्यवाणी के अनु-सार, हस्ती को वश में करने वाले और समस्यापूर्ति द्वारा मनोरंजन करने वाले कुवलयचन्द्र के साथ शुभ मुहूर्त में पुरुषद्वेषिणी त्रैकोल्यसुन्दरी कुवलयमाला का विवाह हो गया !

वासगृह में रत्नो से विनिर्मित मुक्ताओ से शोभित धवल सेज बिछायी गयी। कुवलयमाला ने अपनी सखियो का सग छोड वासगृह में प्रवेश किया तो सखियाँ ठठोली करने लगीं।

कुवलयमाला—हे प्रिय सखियो ! वनमृगी की भाँति मुझे अकेली छोड तुम कहाँ चलीं ?

सखियाँ—हे सखि ! हमें भी अकेली रहने का यह सौभाग्य प्राप्त हो !

कुवलयमाला—हे प्रिय सखियो ! रोमाच से कम्पित, स्वेदयुक्त ज्वरपीडित दशा में मुझे छोडकर मत जाओ।

सखियाँ—तुम्हारा पति स्वय वैद्य है, वह तुम्हारे ज्वर की चिकित्सा कर देगा।

तत्पश्चात् लज्जा और भय से कांपती हुई उसने कहा—तो लो, मै भी चली।

उसकी साडी का पल्ला पकड कुवलयचन्द्र ने पूछा—कहाँ ?

कुवलयमाला—छोड दो मुझे, अपनी सखियो के साथ जा रही हूँ।

कुवलयचन्द्र-—यदि तू जाना ही चाहती है तो तुझे कौन रोक सकता है। लेकिन तूने जो मेरी चीज चुरा ली है, उसे वापिस देती जा।

"कौनसी चीज चुरा ली है ?"

"मेरा हृदय।"

"कोई गवाह है ?"

"तुम्हारी सखियाँ।"

"बुलाओ उन्हे। वे तुम्हे उत्तर देगी। उन्हे बुलाओ, नहीं तो मुझे छोड दो।"

"सुन्दरी ! जरा ठहर, मै अभी तेरी सखियो को बुलाता हूँ ।"

सखियाँ आ गई ।

कुवलयचन्द्र—देखो, जब तुम्हारी यह सखी जाने लगी तो मैने उसे रोक-कर कहा कि मेरा हृदय तो वापिस देती जा । वह कहती है कि इसका निबटारा तुम लोग करोगी ।

सखियाँ (कुवलयमाला को लक्ष्य करके)—क्या यह ठीक है ?

कुवलयमाला—हाँ, बस, इतनी ही बात है ।

सखियाँ—अरे, यह तो बडा भारी विवाद है । इसका फैसला तो श्री विजयसेन राजा और नगर के अग्रगण्य ही कर सकते है ।

कुवलयमाला—नहीं, तुम ही फैसला करो कि मैने इनका कुछ ले लिया है या इन्होने मेरा ।

सखियाँ—लो, हम साफ-साफ कह देती है, कान लगा कर सुनो । उन्होने तुम्हारा और तुमने इनके प्रिय हृदय का अपहरण किया है । ऐसी हालत में जुआरी और चोर की जो दशा होती है, वही तुम्हारी भी होगी ।

कुवलयमाला—(कुवलयचन्द्र को लक्ष्य करके) तू चोर है ।

कुवलयचन्द्र—(कुवलयमाला को लक्ष्य करके) चोर तू है, मै नहीं ।[1]

इस प्रकार की अनेक रोचक प्रणयकथाएँ प्राकृत जैन कथा-साहित्य में उपलब्ध है ।

लीलावती और उसकी सखियों की प्रेमकथा

कौतूहल की लीलावई का उल्लेख किया जा चुका है । जैन प्राकृत कथा-ग्रंथ की भाँति यह कथा-ग्रथ धार्मिक अथवा उपदेशात्मक नहीं है । इसमें प्रति-ष्ठान के राजा सातवाहन और सिहलदेश की राजकुमारी की प्रेमकथा का वर्णन है ।

राजा विपुलाशय और अप्सरा रंभा की कन्या कुवलयावली गधर्वकुमार चित्रागद के प्रेमपाश में पडकर उसके साथ गंधर्व विवाह कर लेती है । यह जान-कर राजा विपुलाशय चित्रांगद को शाप देता है जिससे वह राक्षस बन जाता है ।

राजकुमारी लीलावती की दूसरी सखी विद्याधरकन्या महानुमति का सिद्ध-कुमार माधवानिल से प्रेम हो जाता है । घर लौटने पर वह उसके विरह से

---

१ कुवलयमाला पृ० १५८–७३

व्याकुल रहती है। इस बीच माधवानिल को उसका कोई शत्रु पाताललोक में भगाकर ले जाता है।

सिंहलराज की कन्या लीलावती राजा सातवाहन का चित्र देखकर उस पर मोहित हो जाती है। अपने माता-पिता की अनुमति प्राप्त कर वह अपने प्रिय की खोज में निकल पडती है।

तीनो विरहणियाँ गोदावरीतट पर मिलती है।

इस समय राजा सातवाहन सिहलराज पर आक्रमण कर देता है। राजा के सेनापति विजयानन्द को पता लगता है कि लीलावती गोदावरी के तट पर अपनी सखियो के साथ समय व्यतीत कर रही है।

राजकुमारी लीलावती और सातवाहन, कुवलयावली और चित्रांगद, तथा महानुमति और माधवानिल तीनो विवाहसूत्र में बध जाते है।

कृति के अंत में कवि ने अपनी प्रिया को सबोधित करते हुए कहा है—

दीहच्छि कहा एसा अणुदियहं जे पढति णिसुणति।
ताण पिय-विरह-दुक्खं ण होइ कइया वि तणुअंगी ॥

—हे दीर्घाक्षि ! जो प्रतिदिन इस कथा को पढते और सुनते है, उन्हे कभी भी प्रिय के विरहजन्य दु:ख को अनुभव नहीं करना पडता।

शृङ्गाररसप्रधान अनुपलब्ध आख्यायिकाएँ

निशीथभाष्य में, लौकिक कामकथाओ में नरवाहणदत्त कथा, लोकोत्तर कामकथाओ में तरगवती, मलयवती और मगधसेना, आख्यानो में धूर्ताख्यान, शृङ्गारकाव्यो (छलित) में सेतु तथा कथाग्रन्थो में वसुदेवचरित और चेटककथा का उल्लेख है। इन कथाओ के कहने वाले को काथिक कहा गया है।[1] अन्य आख्यायिकाओ मे वधुमती[2] ओर सुलोचना[3] के नाम गिनाये गये है।

तरंगवतीकथा

तरंगवती सातवाहनवशी विद्वान् राजा हाल की विद्वत्सभा के सुप्रतिष्ठित कवि पादलिप्तसूरि की कृति है, यह अनुपलब्ध है। पैशाची भाषा में रचित बृहत्कथा

१ ८ ,२३४३, १६ ५२११, तथा बृहत्कल्पभाष्य २२ २५६४

२ सिद्धसेनाचार्य की तत्त्वार्थसूत्र की बृहद्वृत्ति में निर्दिष्ट, वसन्त रजतमहोत्सवस्मारक ग्रथ, मुनि जिनविजयजी का कुवलयमाला नामक लेख पृ० २८४।

३ कुवलयमाला (६, पृ० ३) में उल्लिखित।

के रचयिता महाकवि गुणाढ्य भी हाल के प्रिय कवियो में से थे। उद्योतनसूरि ने कुवलयमाला की प्रस्तावना में सर्वप्रथम पादलिप्तसूरि का परिचय देते हुए उन्हे राजा सातवाहन की गोष्ठी की शोभा कहा है। इस कवि ने चक्रवाकयुगल की घटना से सुभग तथा सुन्दर राजहंसकृत हर्ष से सयुक्त, कुलपर्वत से निसृत गंगा की भाँति तरंगवती की रचना की। कवि धनपाल ने भी तिलकमंजरी मे तरगवती की उपमा प्रसन्न एव गंभीर मार्ग वाली पुनीत गंगा नदी से दी है।

तरंगवती का सक्षिप्त रूप तरगलोला (सखित्त तरगवई) के नाम से प्रसिद्ध है जिसकी रचना आचार्य वीरभद्र के शिष्य नेमिचन्द्र गणि ने की है।[1]

कौमुदी महोत्सव के अवसर पर तरंगवती का नगर के धनदेव सेठ के पुत्र पद्मदेव से प्रेम हो गया। धनदेव के पिता ने अपने पुत्र के लिए तरगवती की मगनी की, लेकिन तरगवती के पिता ने इन्कार कर दिया। इस पर तरगवती ने भोजपत्र पर एक प्रेमपत्र लिख अपने प्रेमी के पास भिजवाया। अपनी सखिको साथ लेकर वह उसके घर पहुँची और वहाँ से दोनो नाव में बैठ नदी पार कर गये। दोनो ने गधर्व विधि से विवाह कर लिया।

जान पडता है कि तरगवती जैन कथाग्रथो मे सर्वप्रथम शृङ्गारप्रधान कथाग्रथ रहा होगा। उद्योतनसूरि और धनपाल के अतिरिक्त अनुयोगद्वारसूत्र (१३०)

१. पादलिप्त की तरगवई कहा के सबन्ध में नेमिचन्द गणि ने लिखा है—
पालित्तएण रइया वित्थरओ तह य देसिवयणेहिं।
नामेण तरगवई कहा विचित्ता य विउला य॥
कत्थइ कुलयाइ मणोरमाइ अण्णत्थ गुविलजुयलाइ।
अण्णत्थ छक्कलाइ दुप्परिअल्लाइ इयराण॥
न य सा कोई सुणेइ नो पुण पुच्छेइ नेव य कहेइ।
विउसाण नवर जोगा इयरजणो तीए किं कुणउ॥
तो उव्वे (य) जण गाहाओ पालित्तएण रइयाओ।
देसिपयाइ मोत्तु सखित्तयरी कया एसा।
इयराण हियट्ठाए मा होही सव्वहा वि वोच्छेओ।
एव विचिंतिऊण खामेऊण तय सूरिं—रजत महोत्सव स्मारक ग्रथ, वही।
कुवलयमालाकार ने इस रचना का सकीर्णकथा के रूप में उल्लेख किया है। सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान अर्नेस्ट लायमान ने इसका जर्मन भाषान्तर प्रकाशित किया है। नरसिंह भाई पटेल द्वारा इस भाषातर के गुजराती अनुवाद के लिए देखिए, जैन साहित्य संशोधक द्वितीय खण्ड। पूना, १९२४।

दशवैकालिकचूर्णी (३, पृ०१०९) तथा जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के विशेपावश्यक-भाष्य (गाथा १५०८) में इस महत्त्वपूर्ण कृति का उल्लेख मिलता है।

मलयवती—

मलयवती के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती। मलयवती का उल्लेख अनगवती, इन्दुलेखा, चारूमती, बृहत्कथा, माधविका शकुन्तिका, आदि रचनाओ के साथ भोजराज (९९३–१०५१ ई०) के सरस्वतीकण्ठाभरण मे मिलता है।[1]

मलयसुंदरी—

मलयसुन्दरी मे महाबल और मलयसुन्दरी की प्रणयकथा का वर्णन है। इस ग्रथ के कर्त्ता का नाम अज्ञात है। इसपर आचार्य धर्मचन्द्र (१४ वीं शताब्दी) ने सस्कृत मे सक्षिप्त कथा की रचना की है।[2]

वसुदेवचरित या वसुदेवहिण्डी—

आचार्य हेमचन्द्र के गुरु आचार्य देवचन्द्रकृत शांतिनाथचरित्र के उपोद्घात के उल्लेख पर से पता लगता है कि भद्रबाहुसूरि ने अत्यन्त सरस कथाओ से युक्त सवा लाख श्लोकप्रमाण वसुदेवचरित कथाग्रथ की रचना की थी, जो आजकल अनुपलब्ध है।[3] किन्तु कुछ विद्वानो का कहना है कि उपलब्ध वसुदेवहिडी में वसुदेव के भ्रमण (हिण्डी) की कथा है अतएव वसुदेवहिडी और वसुदेवचरित दोनो को एक ही मानना चाहिए।[4]

गुणाढ्य की वड्डकहा (बृहत्कथा) का अनुकरण करने वाला यह कथा-ग्रन्थ दो खण्डो में उपलब्ध है। प्रथम खण्ड के प्रणेता सघदासाणि वाचक ने वसुदेवहिण्डी को गुरु परपरागत मानकर उसका वसुदेवचरित के रूप में उल्लेख किया है।[5] दूसरा खण्ड अप्रकाशित है। इसके रचयिता धर्मसेनगणि महत्तर ने इस खण्ड के आरम्भ में अपनी रचना को आचार्य परंपरागत स्वीकार कर, लताविज्ञान की उपमा देते हुए इसे धर्म-अर्थ-काम से पुष्पित, आयास के फलभार से नमित,

१ प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ०६५९
२ वही, पृ० ४७६
३ मुनि जिनविजय, वसत रजत महोत्सव स्मारक ग्रन्थ, पृ० २६०
४ प्रोफेसर भोगीलाल साडेसरा, वसुदेवहिंडी के गुजराती भाषातर का उपोद्घात, पृ० ३–४ आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, वि० स० २००३।
५. वसुदेवहिंडी, पृ० १, २, २६

श्रृङ्गार वस्त्र के ललित किसलय से व्याप्त, सुतन की शोभा से अह्लादित मधुकरो रूप विविध गुणो से सेवित वसुदेवचरित के रूप में स्वीकार किया है।[1]

वसुदेवहिंडी के प्रथम खण्ड का रचनाकाल ईसवी सन् की लगभग ५वीं शताब्दी है, लेकिन गुणाढ्य की वृहत्कथा के नजदीक होने के कारण इसकी सामग्री ईसवी सन् की पहली शताब्दी के आसपास की जान पडती है। इसकी भाषा प्राकृत है। द्वितीय खण्ड या मध्यम खण्ड प्रथम खण्ड के कुछ वाद की रचना है। मुनि पुण्यविजयजी ने इसकी भाषा को शौरसेनी कहा है। इस खण्ड की रचना प्रथम खण्ड की पूर्ति के लिए नहीं की गयी, धर्मसेन गणि महत्तर ने अपनी कल्पना से इसकी रचना की है।[2]

अन्य प्रेमाख्यान —

अन्य प्रेम कथाओ में भोजराज के श्रृङ्गार प्रकाश में उल्लिखित कुन्दनमाला, कामसेना विप्रलम्भ, शाखाविशाखोपाख्यान, शखिनीसवाद ईर्ष्यालुविप्रलम्भ और सातिकर्णिहरण का नाम लिया जा सकता है।[3]

इस प्रकार हम देखते है कि प्राकृत जैन कथाओ में केवल वैराग्य रस की ही प्रधानता नहीं थी, श्रृङ्गार रस की प्रचुर मात्रा भी यहाँ देखने में आती है। वहुत सम्भव है कि उत्तरवर्ती काल से श्रृङ्गार प्रचुर तरगवतो, नरवाहनदत्तकथा,

१ (क) नमिऊण त विणएण सघमहारयणमदरगिरिस्स
वोच्छामि सुणह णिहुया खड वसुदेव चरियस्स ॥

(ख) त सुणह इम धम्मत्थकामकुसुमियामा(यसो)फल—
भरियणमितसार सिंगारवत्थललितकिसलयाकुल सुतणसोभा—
वमुइयमधुकरविविहगुणविहतसेविय वसुदेवचरितलतावितण।

(ग) निसुव्वति य आयरितपरपरगत अवितह दिट्ठीवाद—
णीसद अरहतचक्किवलवासुदेवगणिताणुओगकमनिद्दिट्ठ वसुदेवचरित ति।
वसुदेवहिंडी मध्यमखण्ड, मुनि पुण्यविजयजी की सशोधित हस्तलिखितप्रति पृ० २, ४

२ हैम्बर्ग यूनिवर्सिटी के प्राकृत के सुप्रसिद्ध विद्वान डाक्टर एल० आलसडोर्फ ने वसुदेव-हिंडी का विशेष अध्ययन कर बुलेटिन आफ द स्कूल आफ ओरिंटियल स्टडीज, जिल्द ८, १९३५–३७ में एक महत्वपूर्ण लेख लिखा है जिसमें उन्होंने इस रचना को गुणाढ्य की वृहत्कथा के नजदीक वताया है। तथा देखिए, उनका १९ वीं इन्टरनेशनल कॉंग्रेस आफ ओरिंटियलिस्ट, रोम में भाषण। वसुदेवहिंडी के प्रथम खण्ड का गुजराती अनुवाद डाक्टर भोगीलाल जे० साडेसरा कृत, श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से वि०स० २००३ में प्रकाशित हुआ है। स्वीडिश भाषा में भी इसका अनुवाद हुआ है।

३ वी० राघवन, पृ० ८२६

मलयवती, मगधसेना वन्धुमती और सुलोचना जैसी प्रेमाख्यायिकाओ का अध्ययन-अध्यापन कम हो गया और कालान्तर में इन कृतियो को नष्ट घोषित कर दिया गया। उल्लेखनीय है कि कामकथाप्रधान गुणाढ्य की वृहत्कथा पर अधारित वसुदेवहिंडी जैसी महत्त्वपूर्ण कृति की भी कोई शुद्ध प्राचीन प्रति उपलब्ध न हो सकी और जो मिली, उन्हीं के आधार पर आगमप्रभाकर मुनि पुण्यविजयजी के अथक परिश्रम से, वर्तमान में उपलब्ध, बीच-बीच में त्रुटित और अपूर्ण कृति ही प्रकाश में आ सकी।[1]

फ्रेंच विद्वान् प्रोफेसर एफ० लाकोते ने भारतवर्ष को कथा-कहानियो का एक प्रतिष्ठित देश बताते हुए यहाँ के प्रेमाख्यानो की लोकप्रियता पर जोर दिया है।[2] ऐसे कितने ही प्रेमाख्यानों की रचना जैन और बौद्ध विद्वानो ने अपने उपदेशो का प्रचार एव प्रसार करने के लिए की। इन आख्यानो ने उत्तरकालीन साहित्य में रोचक कथा-कहानियों का रूप धारण किया।

४. अर्थोपार्जन संबंधी कथाएँ

अर्थकथा की प्रधानता

काम पुरुषार्थ की भाँति जीवन के लिए अर्थ भी आवश्यक है। हरिभद्रसूरि ने चार कथाओ मे अर्थकथा को सर्वप्रथम स्थान दिया है। अर्थ के पश्चात् काम और अन्त में धर्मकथा का उल्लेख है।

दशवैकालिक निर्युक्त में विद्या, शिल्प, विविध उपाय, साहस (अनिर्वेद), सचय, दाक्षिण्य, साम, दण्ड, भेद तथा उपप्रदान द्वारा अर्थ की सिद्धि बतायी गयी है।[3] हरिभद्रसूरि ने असि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, धातुवाद और अर्थोपार्जन के हेतु साम, दण्ड, भेद उपप्रदान आदि को अर्थ के साधन कहा है।[4] जो अपने बाप दादाओ के धन का उपभोग करते हुए भी उसमें वृद्धि करता है, उसे अर्थ की अपेक्षा उत्तम, जो उस धन को क्षीण नहीं होने देता, उसे मध्यम और जो उसे खा-पीकर बराबर कर देता है, उसे अधम पुरुष कहा गया है।

---

१ मुनि चतुरविजय और मुनि पुण्यविजयजी द्वारा सपादित, भावनगर, १९३०

२. देखिए, ऐसे ऑन गुणाढ्य एण्ड द वृहत्कथा, क्वार्टर्ली जरनल आफ द मीथिक सोसायटी, बंगलूर, १९२३

३ गाथा ३ १८९। इनके उदाहरण के लिए देखिए, हारिभद्रीय टीका, पृ० १०६।

४ समराइच्चकहा, पृ० ३

५ वसुदेवहिंडी, पृ० १०१

सोमप्रभसूरि के कुमारपालप्रतिबोध में श्रेष्ठीपुत्र सुन्दर की कथा आती है। परदेश जाकर धन कमाने के लिए अपनी माता की अनुमति मागते हुए उसने निवेदन किया—जो कायर पुरुष अपनी जवानी में धन नहीं कमाता, उसका जन्म बकरे के गले में लगे हुए स्तनो की भाँति निष्फल है। बुद्धिमान पुरुष को अपने बाप-दादाओ द्वारा कमाई हुई धन सम्पत्ति पर अवलम्बित नहीं रहना चाहिए। जैसे, समुद्र में यदि नदियो का जल न पहुँचे तो वह सूख जाता है, इसी तरह यदि धन का उपार्जन न किया जाये तो अक्षय धन की राशि भी समाप्त हो जाती है। धनहीन पुरुष चाहे गुणी या गुणहीन, उसके सगे-सबधी तक उसका अपमान करने लगते है।[1]

पंचतन्त्र का मित्रभेद नाम का प्रथम तन्त्र महिलारोप्य नगर के वर्धमानक नाम वणिक पुत्र की कथा से आरम्भ होता है जो प्रचुर-धन सम्पन्न होने पर अधिक धन अर्जन का अभिलाषी है। वह विचार करता है—

ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो धन द्वारा प्राप्त न हो सके। अतएव बुद्धिमान पुरुप को चाहिए कि वह यत्नपूर्वक धन की सिद्धि करे। जिसके पास धन है, उसी के मित्र होते है, उसी के भाई वन्द होते है, वहीं पुरुष कहा जाता है और वही पंडित है। जो पूजने योग्य नहीं, उसकी पूजा होने लगती है, जिसके पास कोई नहीं आता, उसके पास लोग आने लगते है और जो वन्दनीय नहीं वह वन्दनीय हो जाता है—यह सब धन का ही प्रताप है। धन होने से उम्र बीत जाने पर भी लोग तरुण कहे जाते है और जिसके पास धन नहीं ऐसे तरुणो को भी बूढा समझा जाने लगता है[2]

अर्थोपार्जन के लिए चारुदत्त की साहसिक यात्रा

श्रेष्ठी चारुदत्त के निर्धन हो जाने के कारण जब वसन्ततिलका गणिका की माँ ने चारुदत्त को घर से निकाल दिया और १२ वर्ष बाद वह घर लौटकर

---

१ देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, 'रमणी के रूप' में 'नगरी के न्यायी पुरुष' कहानी पृ० २६–३२

२ न हि तद् विद्यते किञ्चित् यदर्थेन न सिद्धयति।
यत्नेन मतिमास्तस्मादर्थमेक प्रसाधयेत् ॥
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा।
यस्यार्था स पुमाल्लोके यस्यार्था स च पण्डित ॥
पूज्यते यदपूज्योऽपि यदगम्योऽपि गम्यते।
वन्द्यते यदवन्द्योऽपि स प्रभावो धनस्य च ॥
गत वयसामपि पुसा येषामर्था भवन्ति ते तरुणा।
अर्थेन तु ये हीना वृद्धास्ते यौवनेऽपि स्यु ॥

३ निर्धन पुरुप को वेश्याओं के घर से निकाल दिये जाने का उल्लेख कथासरित्सागर (२ ४ ९०–६) मे भी आता है।

आया तो द्वारपाल ने अन्दर जाने से उसे रोक दिया। पूछने पर पता लगा कि वह घर रामदेव का है और जब से भानु श्रेष्ठी का पुत्र चारुदत्त कुपूत हो गया और गणिका के घर रहने लगा, शोक से अभिभूत हो, गृहत्याग कर उसके पिता ने दीक्षा ग्रहण कर ली, और उसकी माँ अपना घर बेचकर अपने भाई के घर रहने चली गई। रामदेव को जब चारुदत्त के आगमन का पता लगा तो उसने कहा कि उस निर्लज्ज को उसके घर में न घुसने देना। वह अपने मामा के घर पहुँचा जहाँ उसने दरिद्र वेश धारण किये दीन-हीन अवस्था में बैठी हुई अपने माँ के दर्शन किये। माँ अपने बेटे का आलिंगन कर रुदन करने लगी। मलिन वस्त्र धारण किये हुए श्रीविहीन चारुदत्त की पत्नी मित्रवती से भी न रहा गया। इतने दिनो बाद, बिछुड़े हुए पति को प्राप्त कर उसकी आँखो से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। बाजार से तुपकण मगाकर भोजन तैयार किया गया।

शेष रहे धन के विषय में पूछताछ करने पर माँ ने उत्तर दिया—

बेटा! जमीन मे गडे हुए, ब्याज पर दिये हुए तथा सगे सम्बन्धियो को दिए हुए धन के विषय में मै कुछ नहीं जानती। इतना जानती हूँ कि श्रेष्ठी के दीक्षा लेने के बाद दासी और दासो को दिया हुआ धन विनष्ट हो गया, सोलह हिरण्य कोटि तुझ पर खर्च हो गये और हम लोग जैसे-तैसे करके दिन काट रहे है।

चारुदत्त—माँ! लोग मुझे नालायक समझने लगे है, अब मै यहाँ नहीं रहूँगा। मै कहीं दूर चला जाऊँगा और धनार्जन करके ही वापिस लौटूँगा। बस तेरा आशीर्वाद चाहिए।[1]

माँ—बेटा! व्यापार करने में कितना कष्ट होता है, इसकी तुझे खबर नहीं। तू कहाँ रहेगा? तू हमारे साथ रहे तो हम दोनो तेरा निर्वाह कर सकते है।

चारुदत्त—माँ तू ऐसा मत कह। भानुश्रेष्ठी का पुत्र होकर मै पराश्रित रहूँगा। ऐसा तू विचार छोड़ दे। मुझे जाने की आज्ञा दे।

चारुदत्त अपने मामा सर्वार्थ के साथ धनोपार्जन के लिए चल पडा। दिगासवाह ग्राम मे पहुँचने पर मामा ने कहा कि वहाँ उसके पिता के घर काम

१ बृहत्कथाश्लोकसंग्रह मे इस प्रसंग पर भानुदास द्वारा प्रक्षपित द्रव्य का चार गुना धन कमाकर लौटने का उल्लेख है—

तत प्रक्षपिताद् द्रव्यादुपादाय चतुर्गुणम्।
गृह मया प्रवेष्टव्यं न प्रवेष्टव्यमन्यथा॥ १८ १७०, पृ० २३४

करने वाले कुटुम्बीलोग रहते है, उनसे सुवर्ण लिया जा सकता है।[1] लेकिन चारुदत्त ने अपनी अगूठी बेचकर खरीदे हुए माल से व्यापार किया। उसने रूई और सूत खरीदा[2] लेकिन एक चूहा जलते हुए दीये की वत्ती ले भागा और रूई मे आग लग जाने से रूई का ढेर जलकर खाक हो गया।

चारुदत्त ने व्यापार से फिर किसी तरह पैसा इकट्ठा किया। इस पैसे से फिर रूई और सूत खरीद कर गाडियो में भरा और व्यापार के लिए चल दिया! उत्कल देश में पहुँचा। वहाँ से कपास खरीद कर ताम्रलिप्ति की ओर बढा। रास्ते में एक अटवी पडी। सार्थ के लोग अटवी के बाहर ठहर गये। जब सब लोग विश्राम कर रहे थे तो अचानक ही कोलाहल सुनायी दिया। चोर अपने सींग और ढोल-ढपडे वजाते हुए चले आ रहे थे। कारवां के व्यापारियो पर उन्होने

१ वृहत्कथाश्लोकसग्रह में मामा का नाम गगदत्त है। वह ताम्रलिप्ति का निवासी था। यह नगर धूर्तो का आवास था। देशाटन करता हुआ सानुदास जब उसके घर पहुँचा तो उसने अपन भानजे का स्वागत करते हुए प्रतिज्ञा किये हुए धन से चौगुना धन लेकर अपनी माता के पास लौट जाने को कहा। सानुदास ने उत्तर दिया--धनार्जन के लिए मैने दृढ प्रतिज्ञा की है, मामा! मुझे कष्ट मत पहुँचाओ। गुरुजनों को चाहिए कि वे वालको को कार्य करने मे प्रवृत्त करें। फिर यदि कोई वालक स्वयं ही कार्य में जुट जाये तो उसे वहा से लौटने के लिए कैसे कहा जा सकना है? मामाजी! जो आपने कहा कि आपका धन लेकर मै कुटुम्वियों का जीवन निर्वाह करूँ तो चार हाथ-पाव वाले मुझ जैसे व्यक्ति के लिए यह उपदेश उचित नहीं। जो अपने मामा का धन लेकर अपनी माता सहित जीता है, उसे अपने मामा और अपनी माता के साथ क्लीव ही समझना चाहिए–

सारेऽर्थे दृढनिर्वन्ध मा मा व्याहत मातुल ॥
प्रवर्त्यो गुरुभि कार्ये यत्र वालो वलादपि।
स्वयमेव प्रवृत्तस्तैर्निवर्त्येत कथ तत ॥
यच्चोक्त मामकैरर्थै कुटुम्व जीव्यतामिति।
एतत् सहस्तपादाय मादृशे नोपदिश्यते ॥
मातुलाद् धनमादाय यो जीवति समातृक
ननु मातुलमात्रैव क्लीवसत्त्व. स जीव्यते ॥ १८–२३९–४२, पृ० २४०–४१

शुकसप्तति (७) मे मातुल के धन को अधम कहा है–

उत्तमा स्वगुणै ख्याता मध्यमाऽच पितुर्गुणै।
अधमा मातुलै ख्याता श्वशुरैश्चाधमाधमा ॥

२ वृहत्कथाश्लोक संग्रह (१८ ३८७) में कहा है कि यह एक ऐसा माल है जिसे अल्प मूल्य में खरीदकर अधिक मूल्य मे वेचा जा सकता है।

धावा बोल दिया । व्यापारी इधर उधर भाग गये । चोरो ने गाडियो में भरे हुए माल को लूट लिया और बाकी बचे हुए मे आग लगा दी ।

अपने आप को घोर सकट मे पडे हुए देख चारुदत्त का मन निराशा से व्याकुल हो उठा । लेकिन दूसरे ही क्षण उसके मन मे विचार आया—यदि मुझे जल्दी ही घर पहुँचना है तो जो पुरुषार्थ मैंने आरम्भ किया है, उसे छोड़ देना होगा । लेकिन "लक्ष्मी का वास उत्साह में है । दरिद्र व्यक्ति मृतक के समान है, स्वजन सम्बन्धियो द्वारा अपमानित होता हुआ ही वह तिरस्कृत जीवन जीता है",[1] अतएव घर लौटकर जाना ठीक नहीं ।

चारुदत्त ने साहस बटोरकर फिर प्रस्थान किया । प्रियंगुपट्टन पहुँचा, जहाँ सुरेन्द्रदत्त नाविक से उसकी मुलाकात हुई । यहाँ से वह चीन देश की ओर चला । यानपात्रो को सजाया गया, उनमें विविध प्रकार का माल भरा, सांयात्रिको के साथ बहुत से नौकर-चाकर लिये, तथा राजा से 'पासपोर्ट' (राजशासन का पट्टक) प्राप्त किया । तत्पश्चात् अनुकूल वायु के बहने पर, शकुन देख, चारुदत्त यानपात्र में सवार हो गया । धूप जलाई गई और जहाज का लंगर छोड दिया गया । जहाज चीन देश की ओर चल पडा । सर्वत्र जल के सिवाय और कुछ नज़र नहीं आ रहा था ।[2]

चीन में व्यापार करने के बाद चारुदत्त ने सुवर्णभूमि के लिए प्रस्थान किया । तत्पश्चात् कमलपुर[3] यवन (यव) द्वीप (जावा), सिहल और बब्बर (बार्बरिकोन) और यवन (सिकन्दरिया) की यात्रा करते हुए जहाज सौराष्ट्र की ओर बढ रहा था कि तट पर पहुँचने से पहिले वह जल मग्न हो गया । बडी कठिनता से चारुदत्त के हाथ एक पट्ट लगा और लहरो की चपेटे खाता हुआ, सात रात के बाद वह उम्बरावती पहुँचा । इतने समय तक समुद्र मे रहने के कारण समुद्र के खारे जल से उसका शरीर सफेद पड गया था ।

१ उच्छाहे सिरी वसति, दरिद्दो य मयसमो, सयणपरिभूओ य धीजीविय जीवइ ।
वसुदेवहिंडी, पृ० १४५

२ बृहत्कथा-श्लोकसग्रह (१८,२५२) मे निम्न वर्णन है—

तरङ्गजलदाल्य मकरनक्रचक्रग्रह
पिनाकधरकन्धरप्रभमनन्तमप्रक्षयम ।
महार्णवनभस्तल लवणसिन्धुनौछद्मना
वियत्पथरथेन तेन वणिजस्तत प्रस्थिता ॥

३ डाक्टर मोतीचन्द्र ने ख्मेर मे इसकी पहचान की है । सार्थवाह, पृ० १३१

चारुदत्त फिर भटक गया। कोई त्रिदण्डी साधु उसे कीमिया बनाकर देने का लोभ देकर गाँव से श्वापदबहुल अटवी में ले गया। रात्रि के समय गमन। दिन में पुलिदो के भय से छिपकर रहना। पर्वतो की गुफा मे पहुँचे। वहाँ साधु ने तृणाच्छादित एक अध कूप में ढकेल दिया। किसी तरह वहाँ से निकला तो जंगली भैसे और भयकर अजगर से अपनी रक्षा करने मे समर्थ हो सका। लेकिन चारुदत्त ने हिम्मत न हारी। उसने थोडी-सी पूँजी जोडकर फिर से धन कमाने का सकल्प किया। अब की बार वह परदे, आभूषण, महावर, लाल वस्त्र और ककण आदि माल जहाज में भरकर सार्थ के साथ चल पडा। वह हूण, खस और चीनियो के देश मे उतरा। वहाँ से वैताढ्य पर्वत की तहलटी में डेरा डाला। यहाँ तुबरू-चूर्ण[1] की पोटलियाँ कमर में बांध और अपने माल की गठरियो को कांख में दबा,[2] व्यापारी लोगो ने शकुपद से पर्वत शिखर पर आरोहण किया। इस प्रकार शकुपथ से पर्वत को पार कर वे लोग इपुवेगा (वक्षु=आमूदरिया) नदी पर आये।

तीक्ष्ण धार वाली इस अथाह नदी को तिरछे तैरकर भी पार नहीं किया जा सकता था। इसे पार करने के लिए वेत्रपथ का आश्रय लिया। इस पथ से नदी पार करने वाले को अनुकूल वायु चलने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। उत्तरी वायु बहने पर स्वभाव से मृदु और स्थिर वेत्रलताऍ दक्षिण की ओर झुक जाती थीं। उस समय उनकी पोरो का अवलम्बन ग्रहण कर दक्षिण तट पर पहुॅचा जा सकता था। इसी तरह दक्षिण वायु के बहने पर वेत्रलताओ के सहारे नदी के उत्तरी तट पर पहुॅच सकते थे। चारुदत्त और उसके साथी दक्षिण वायु के बहने की प्रतीक्षा करते रहे और दक्षिण वायु चलने पर वेत्रलताओ की सहायता से नदी के उत्तरी तट पहुॅच गये।

यहाँ से टकण देश के लिए प्रस्थान किया। यहाँ पहुँचकर नदीतट पर अलग स्थानो पर माल रक्खा। फिर लकडियाँ एकत्र कर उनमे आग लगा दी और वहाँ से हटकर एक ओर बैठ गये। धुआँ देखकर टकण[3] लोग वहाँ आ गये। रक्खा

१ पर्वत पर आरोहण करते हुए पत्थर के शकुओं-खूटियों-को पकड़कर चढते समय, पसीने के कारण हाथों के गीले हो जाने से, खूटियों के हाथ से छूटकर, नीचे बहते हुए गभीर द्रह में गिर जाने का अन्देशा रहता था। इसलिए गीले हाथों मे रूक्षता लाने के लिए तुंबरु का चूर्ण मला जाता था।

२ बृहत्कथाश्लोकसग्रह (१८ ४३२) में गर्दन में तेल के कुतुप (कुप्पे) बाधकर वेत्रमार्ग द्वारा पर्वत आरोहण किया गया है।

३ बृहत्कथाश्लोकसंग्रह (१८ ४५२–५४) मे किरात लोग अपने बकरे बेचने के लिए आते हैं।

हुआ माल उन्होंने ले लिया। उन्होने भी आग जलायी और वहाँ वकरो को वाघ और फल रखकर अपने स्थान पर आ बैठे। अपने माल के वदले चारुदत्त के साथियो ने यह माल ले लिया।

तत्पश्चात् सव लोग सीमानदी के तट की ओर चले। यहाँ से आँखो पर पट्टी वांध वकरो की सवारी की। यह मार्ग अजपथ कहलाता था। इस मार्ग से एक-दम खडी और सीधी चढाई वाले वज्रकोटिसस्थित पर्वत पर पहुँचे। शीत हवा लगने के कारण वकरे खडे हो गये। सवने आँखो की पट्टी खोल दीं, और वकरो पर से उतर आये।

यहाँ से रत्नो का सचय करने के लिए रत्नद्वीप जाना था। इस द्वीप में पहुँचना वहुत दुष्कर था।

वकरो को मारकर उनकी रुधिरमय खाल से भस्त्रा तैयार की गई। अपनी कमर मे छुरी वांध व्यापारियो ने भस्त्रा के अन्दर प्रवेश किया। तत्पश्चात् रत्नद्वीप से आनेवाले और वहाँ आकर व्याघ्र, रीछ और भालू आदि जानवरो का मास भक्षण करने वाले महाकाय भारुड पक्षी, भस्त्रा को मांसपिंड समझ, उसे अपनी चोचो से उठा रत्नद्वीप ले गये। चारुदत्त की भस्त्रा को दो पक्षियो ने उठाया और वे गेंद की भाँति उसे हिलाते-डुलाते और उछालते हुए आकाश मे उड गये। दोनो में लडाई-झगडा होने लगा और इस झगडे मे चारुदत्त की भस्त्रा उनके मुँह से छूटकर एक महान् द्रह मे गिर पडी। जल मे गिरते ही अपनी कमर में वधी हुई छुरी से भस्त्रा को चीर, चारुदत्त वाहर निकला और तैर कर तालाव के किनारे आ गया। उसने आकाश की ओर देखा तो पक्षी उसके साथियो को अपनी चोचो मे उठाये उडे जा रहे थे।

चारुदत्त सोचने लगा—क्या अव मृत्यु ही एक शरण है? पुरुषार्थ में मैंने कोई कमी नहीं की, फिर भी सफलता क्यो नहीं? मरण का आलिंगन करने के लिये वह एक पर्वत पर चढा। वहाँ भुजा उठाकर एक पैर से तप करते हुए साधु को देखा। चारुदत्त ने फिर साहस वटोरा। फिर से वह जी-तोड परिश्रम पुरुषार्थ करने लगा।

एक दिन चारुदत्त को अपनी माँ का स्मरण हो आया। वहुत-से खच्चरो, गधो, ऊँटो और गाड़ियो मे माल भरकर, अपनी पुत्री गंधर्वदत्ता के साथ उसने चपानगरी में प्रवेश किया। राजा ने चारुदत्त का सत्कार

किया । उसे देखकर मामा की खुशी का ठिकाना न रहा। उसने कहा—बेटे ! तूने कुल को उज्ज्वल कर दिया है ! तू बडा पुरुषार्थी है ! तत्पश्चात् नगर के अग्रगण्य व्यापारियो द्वारा सन्मानित हो, चारुदत्त ने अपने घर में प्रवेश कर माँ को प्रणाम किया और अपनी पत्नी को आलिंगन पाश में बाँध लिया ।[1]

एक बार की बात है, कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न अपने दादा वसुदेव से वार्तालाप कर रहा था। प्रद्युम्न बात-बात मे पूछ बैठा—दादाजी, आपने सौ वर्ष परिभ्रमण कर मेरी अनेक दादियो को प्राप्त किया है। लेकिन जरा अपने पोते शंब के अंतःपुर की ओर भी नजर डालिए। भाई सुभानु के लिए एकत्र की हुई समस्त कन्याओ का विवाह शब से हो गया है !

वसुदेव अपने पोते की 'छोटा मुँह, बडी बात' सुनकर क्रोध में भर गया। प्रद्युम्न को सबोधित करते हुए वसुदेव ने कहा-'अरे प्रद्युम्न ! क्या तू नहीं समझता कि शब कूपमडूक है ? केवल स्वयं प्राप्त भोगो को भोगकर वह सतुष्ट हो गया है। लेकिन जानता है कि देश-विदेश मे परिभ्रमण करके मैने जिन सुख-दु.खो का अनुभव किया है, वह अन्य किसी के लिए दुष्कर है ।[2]

इभ्यपुत्रों की प्रतिज्ञा

किसी नगर मे दो इभ्यपुत्र रहते थे। एक अपने मित्रो के साथ उद्यान से नगर मे जा रहा था। दूसरा रथ मे सवार हो, नगर से बाहर जा रहा था। नगर द्वार पर दोनो की भेंट हुई। गर्व के कारण दोनो मे से कोई भी पीछे हटने को तैयार नहीं था। दोनो मे वाद-विवाद होने लगा।

एक ने कहा-पिता के द्वारा अर्जित धन पर क्या गर्व करते हो ? स्वय अर्जित करके लाओ, तो समझे ?

दूसरा—और क्या तुम्हारा धन तुम्हारे पिता का कमाया हुआ नहीं है ? स्वयं कमाकर दिखाओ !

दोनो के गर्व को चोट पहुँची। दोनो ने प्रतिज्ञा की—जो परिवार के बिना, अकेले ही, बारह वर्ष बाद बहुत-सा धन अर्जित करके वापिस आयेगा, उसकी अपने मित्रो सहित दूसरा गुलामी करेगा।

यह लिखकर उन्होने एक सेठ को दे दिया।

१ वसुदेवहिंडी, पृ० १४४-५४
२ वही, पृ० ११०

पहला इभ्यपुत्र अपने गर्व की रक्षा के लिए वहीं से धनार्जन के लिए रवाना हो गया। विदेश में समुद्र यात्रा द्वारा व्यापार करके उसने बहुत-सा धन अर्जित किया और अपने मित्रो को भेजा।

दूसरा अपने मित्रो के अनुरोध पर भी जाने के लिए तैयार न हुआ। वह सोचता रहा—जितना धन वह बहुत समय मे कमायेगा, उतना मे अल्प समय मे कमा लूँगा।

किन्तु बारहवे वर्ष में, पहले इभ्यपुत्र का आगमन सुनकर दूसरा इभ्यपुत्र दुखी होकर सोचने लगा—दुखो से भयभीत और विषयो की लोलुपता के कारण मैने बहुत-सा समय ऐसे ही बिता दिया अब एक वर्ष मे मै कितना कमा सकूँगा? अतएव शरीर का त्याग करना ही श्रेयस्कर है।[1]

दो व्यापारी मित्र

अपना माल लेकर बनिज-व्यापार के लिए देश-देशान्तर में परिभ्रमण करने वाले सार्थवाहो और पोत-वणिको की अनेक कहानियाँ प्राकृत जैन कथा-साहित्य में उपलब्ध होती है।

कुवलयमाला मे थाणु और मायादित्य नामक दो मित्रो की कथा आती है। दोनो में वार्तालाप हो रहा है।

थाणु—मित्र! लोक मे धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों मे से जिसके एक भी नहीं, उसका जीवन जडवत् है। हम लोगो के धर्म तो है नहीं, क्योकि हम दान और शील से रहित है। अर्थ भी दिखायी नहीं देता और अर्थ के अभाव मे काम कहाँ से हो सकता है? ऐसी हालत में हे मित्र! हमारा जीवन तराजू के अग्रभाग मे लटका हुआ है, अतएव हम लोग क्यो न कहीं चलकर अर्थ का उपार्जन करे जिससे शेष पुरुषार्थों की सिद्धि हो।

मायादित्य—तो मित्र! बनारस क्यो न चला जाये? वहाँ पहुँचकर हम जूआ खेलेंगे, सेध लगायेंगे, ताले तोडेंगे, राहगीरो को लूटेंगे, लोगो की गांठ कतरेंगे, कूट-कपट खेलेंगे, ठगविद्या करेंगे। और भी ऐसे-ऐसे कार्य करेंगे जिससे धन की प्राप्ति हो।

---

१ वसुदेवहिंडी, पृ० ११६–१७। यहाँ बताया गया है कि तप के कारण तपस्वी जन पूजा-प्रतिष्ठा के पात्र होते हैं। इस कहानी की राजोवाद जातक (१५१) कहानी से तुलना कीजिए। देखिए, जगदीशचद्र जैन, 'प्राचीन भारत की कहानियाँ' मे 'दोनों मे बड़ा कौन'? कहानी।

थाणु—ऐसा करना ठीक नहीं। देखो, निर्दोष अर्थोपार्जन के निम्नलिखित उपाय है—देशगमन, मित्रता करना, राजसेवा, मान-अपमान मे कुशलता, धातुवाद, सुवर्णसिद्धि, मंत्र, देवाराधन, समुद्रयात्रा, पहाड की खान खोदना, वनिज-व्यापार, विविध कर्म, और अनेक प्रकार की शिल्पविद्या।[1]

तत्पश्चात् अनेक पर्वत और नदियो से सकीर्ण अटवियो को लांघ, दोनो प्रतिष्ठान नगर में पहुँचे। वहाँ उन्होने विविध प्रकार का वनिज-व्यापार कर और मेहनत-मजूरी करके पाँच-पाँच हजार सुवर्णमुद्राएँ कमाईं।

यथेच्छ धन की उन्होने कमाई कर ली। लेकिन इस धन को लेकर घर कैसे पहुँचा जाये?

उन्होने अपनी पाँच-पाँच हजार की मुद्राओ का दस रत्नो मे बदल, उन्हे एक मैले-कुचैले वस्त्र मे बाँध लिया। वेश परिवर्तन कर उन्होने सिर मुडा लिया, हाथ मे छाता ले लिया, दण्ड के अग्रभाग मे तुबी लटका ली, गेरुए रंग के वस्त्र धारण किये और अपनी बहगी में भिक्षापात्र रक्खा। ऐसा लगा जैसे दोनो दूर से तीर्थयात्रा करके आ रहे है। चोरो की नजरो से बचने के लिए दोनो भिक्षा मागते-खाते स्वदेश के लिए रवाना हो गये।[2]

सागरदत्त की प्रतिज्ञा

एक बार की बात है, चम्पा का श्रेष्ठिपुत्र सागरदत्त कौमुदी महोत्सव देखने गया था। नटो का नृत्य हो रहा था। नट का एक सुभाषित सुनकर सागरदत्त बडा प्रसन्न हुआ। उसने भरतपुत्रो को बुलाकर अपने नाम से एक लाख के पुरस्कार की घोषणा की। यह देखकर नट का खेल देखने के लिए उपस्थित समस्त नर-नारी सागरदत्त के गुणो की प्रशसा करने लगे।

---

१ पचतत्र, प्रथम तत्र के आरभ मे धनोपार्जन के छह उपाय बताये गये हैं—भिक्षा माँगकर, राजा की चाकरी करके, खेती करके, विद्या पढकर, लेनदेन करके और वनिज-व्यापार करके। इनमें वनिज व्यापार सबसे श्रेष्ठ है। व्यापार सात प्रकार के हैं—गधी का व्यापार, लेन देन का व्यापार, थोक व्यापार, परिचित ग्राहकों को माल बेचना, झूठे दाम बताकर माल बेचना, खोटी माप-तौल रखना और दिसावरों से माल मँगाना।

२ कुवलयमाला, पृ० ५७। प्राकृत गाथाओं मे निबद्ध नेमिचन्द्र आचार्य (वृत्तिकार आम्रदेव) के आख्यानकमणिकोष (पृ० २२२ २५) के कथानक से इस आख्यान की तुलना की जा सकती है। डॉक्टर ए एन उपाध्ये, कुवलयमाला, भाग २, नोट्स पृ० १३७।

कोई मनचला कह बैठा—हम तो तब जाने जब कोई स्वयं उपार्जित किये हुए धन का दान करे, बाप-दादाओ के धन का दान तो कोई भी कर सकता है। कहा भी है—

"जो अपने भुजबल से अनेक दु:खो से कमाये हुए धन का दान करता है, वही प्रशसा का पात्र है, बाकी सब चोर है" !

सागरदत्त सोचने लगा कि बात तो ठीक है।

उसने प्रतिज्ञा की कि यदि वह एक वर्ष के भीतर सात करोड उपार्जन नहीं कर सका तो अग्नि मे कूदकर प्राणो का अंत कर देगा।

सागरदत्त ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। दक्षिण समुद्र तट पर अवस्थित जयश्री नामक महानगरी में उसने प्रवेश किया। वहाँ उसने एक वणिक् की दूकान पर नौकरी कर ली।

तत्पश्चात् यानपात्र में श्वेत चन्दन और वस्त्र भरकर यवनद्वीप के लिए रवाना हुआ। समुद्रतट पर पहुँच अपना माल उतारा, सरकारी शुल्क दिया। वहाँ से दूसरा माल भरकर वापिस लौटा। हिसाब लगाया तो सात करोड से अधिक जमा हो गया था।

सागरदत्त की प्रतिज्ञा पूरी हो गयी!

सयोगवश, जहाज वापिस लौट रहा था कि चारो दिशाएँ अंधकार से आच्छन्न हो गईं और देखते-देखते मूसलाधार पानी बरसने लगा। माल के बोझ से भारी और वृष्टि के जल से भरा हुआ जहाज समुद्र में डूब गया!

सागरदत्त के हाथ में तेल का एक खाली कुप्पा लगा। उसके सहारे-सहारे मगरमच्छो से अपनी रक्षा करता हुआ, वह पाँच रात और दिन की मुसाफिरी के बाद चद्रद्वीप में उतरा![1]

लोभदेव की रत्नद्वीप यात्रा

तक्षशिला के पश्चिम-दक्षिण मे स्थित उच्चस्थल गाव में शूद्र जाति में उत्पन्न धनदेव नामक एक सार्थवाह का पुत्र रहता था। अत्यंत लोभी होने के कारण लोग उसे लोभदेव कहने लगे थे। एक बार लोभदेव ने घोडे लेकर दक्षिणापथ में व्यापार के लिए जाने की अपने पिताजी से अनुमति माँगी।

लोभदेव ने निवेदन किया—पिताजी! मै बहुत-सा धन कमाकर लाऊँगा और फिर सुख से जीवन बिताऊँगा।

---

१ वही, पृ० १०३–६

पिता ने उत्तर दिया—बेटा ! तू कितना धन कमायेगा ? हमारे पास इतना धन है जो तेरे और मेरे दोनो के बेटे-पोतो के लिए काफी होगा। इसलिए तू यहीं रहकर दान-पुन कर, विदेश जाकर क्या करेगा ?

लोभदेव—पिताजी, जो धन अपने पास है, वह तो अपना है ही, मै अपने बाहुबल से धन का उपार्जन करना चाहता हूँ।

लोभदेव ने घोडो को सजाया, यान-वाहनो को तैयार किया, वस्त्रो को ग्रहण किया, यानवाहको को खबर भेजी, कर्मकरो को नियुक्त किया, गुरुजनो की आज्ञा प्राप्त की, और मगल के लिए गोरोचन को नमस्कार किया। तत्पश्चात् जब सब चलने को तयार हुए तो पिता ने पुत्र को उपदेश दिया—बेटे ! दूर देश जाना है, मार्ग विषम है, लोग निष्ठुर है, दुर्जन बहुत है, सज्जन थोडे है, माल की पहचान मुश्किल से होती है, यौवन दुर्धर है, बहुत लाड-प्यार मे तुम पले हो, कार्य की गति विषम है, काल की रुचि अनर्थकारक है और चोर-डाकू बिना ही कारण कष्ट देते है। अतएव कभी पडित बनकर, कभी मूर्ख बनकर, कभी चतुर बनकर, कभी निष्ठुर बनकर, कभी दयालु बनकर, कभी निर्दय बनकर, कभी शूरवीर बनकर, कभी कायर बनकर, कभी त्यागी बनकर, कभी कृपण बनकर, कभी मानी बनकर, कभी दानता से, कभी विदग्धता से और कभी जडता से काम निकालना।[1]

कालान्तर मे लोभदेव शूर्पारक नगर पहुँचा। यहाँ घोडे बेचकर उसने बहुत-सा धन कमाया। फिर उसने अपने देश लौट चलने का इरादा किया।

इस समय उसे स्थानीय देशी व्यापारी मंडल का निमत्रण मिला। इसमें कहा गया था कि जो कोई देशातर से आया हुआ अथवा स्थानीय व्यापारी हो, वह जिस देश मे गया हो, जो माल लेकर गया हो या माल लेकर आया हो, या जो कुछ उसने कमाई की हो, उस सबका ब्यौरा वह देशी वणिकोको दे और मडल की ओर से गध, तांबूल और माला स्वीकार करे, उसके बाद वह गंतव्य स्थान को जा सकता है।

किसी ने कहा—मै घोड़े लेकर कोशल देश गया था। कोशल के राजा ने मुझे भाइल जाति के घोडोके साथ हाथी के शिशु भी दिये।

१ इसी प्रकार का उपदेश यशवल श्रेष्ठी धनोपार्जन के लिए परदेश की यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय अपने पुत्र धर्मदत्त को देता है। देखिए पद्मचन्द्रसूरि के अज्ञात नामा शिष्य द्वारा रचित प्राकृतकथासग्रह। यह कहानी 'रमणी के रूप' मे 'दो बहु-मूल्य उपदेश' शीर्षक के नीचे दी गयी है।

दूसरे ने कहा—मैं सुपारी आदि लेकर उत्तरापथ गया था, वहाँ से घोड़े लेकर लौटा।

तीसरा—मैं मोती लेकर पूर्वदेश गया था, वहाँ से चामर लेकर आया।

चौथा—मैं द्वारका गया था, वहाँ से शख लाया।

पाँचवां—मैं वस्त्र लेकर बर्बरकूल गया था, वहाँ से हाथी-दात और मोती लेकर लौटा।

छठा—मैं पलाश के पुष्प लेकर सुवर्णद्वीप (सुमात्रा) गया था, वहाँ से सोना लेकर आया।

सातवा—मैं भैंस और गाय लेकर चीन और महाचीन गया था, वहाँ से रेशम लेकर लौटा।

आठवां—मैं पुरुषों को लेकर स्त्रीराज्य गया था, वहाँ सोने से तोल-तोलकर उन्हे बेचा।

नौवां—मैं नीव के पत्ते लेकर रत्नद्वीप गया था, वहाँ से बहुत-से रत्न लेकर वापिस आया।

यह सुनकर व्यापारियो के मन में रत्नद्वीप जाने की इच्छा बलवती हो उठी।

लेकिन रत्नद्वीप बहुत दूर है, समुद्र द्वारा लम्बी यात्रा है, प्रचण्ड वायु का प्रकोप रहता है, चचल तरगो को पार करना पड़ता है, बडे-बडे मत्स्य, मगर, ग्राह, दीर्घ तन्तु, और निगल जाने वाले तिमिंगल मत्स्य, रौद्र राक्षस, ऊँचे उड़ने वाले वेताल, दुर्लंघ्य पर्वत, कुशल चोर, भीषण तूफानी महासमुद्र आदि को पारकर वहाँ पहुॅचना होता है। लेकिन दुख के बिना सुख भी तो नहीं?

"जो पुरुष निरुद्यमी है उसे, जैसे लक्ष्मी हरि को छोडकर चली जाती है, वैसे ही छोडकर चली जाती है, और जो उद्यमशील रहता है, उसकी ओर लक्ष्मी की नजर जाती है। गोत्रस्खलन से निस्तेज हुई प्रिय पत्नी जैसे अपने प्रिय को छोड देती है, उसी तरह साहसविहीन पुरुष का आलिंगन करके भी लक्ष्मी उसे छोड देती है। जैसे कुलबालिका नववधू लज्जापूर्वक व्यग्र पति की ओर दृष्टिपात करती है, वैसे ही लक्ष्मी पुरुष को कार्य में सलग्न जान उसकी ओर नजर फेरती है। जो धीर पुरुष विषम परिस्थितियो मे भी आरम्भ किये हुए कार्य से मुँह नहीं मोडता, उसके वक्षस्थल पर लक्ष्मी, किसी अभिसारिका की भाँति आकर विश्राम करती है। प्रोषितभर्तृका की भाँति न्याय-नीति और पराक्रम द्वारा वश में की

हुई लक्ष्मी को उद्यमी पुरुष प्राप्त करते है। जो कोई कार्य का आरम्भ करके वाद में उसमें शिथिलता दिखाते है, खंडित महिला की भॉति लक्ष्मी उनका मान भंग करती है।"

तत्पश्चात् व्यापारी रत्नद्वीप की यात्रा के लिए चल पडे।[1]

व्यापारियों की भाषा और लेनदेन

यहाँ केवल व्यापारियो के देश-देशांतर में परिभ्रमण करने की कथाओ का ही नहीं, उनकी बोलचाल रीति-रिवाज तथा व्यापारी भाषा का भी रोचक वर्णन देखने में आता है।

विजया नगरी मे अपना-अपना माल बेचने के लिए आये हुए गोल्ल, मध्य-देश, मगध, अन्तर्वेदी, कीर, ढक्क, सिध, मरु, गुर्जर, लाट, मालव, कर्णाटक, ताजिक, कोशल, महाराष्ट्र और आंध्र के व्यापारियो का उल्लेख आता है, जो अपनी-अपनी भाषाओ में वार्तालाप करते है।

गोल्लदेश (गोदावरी के आसपास का प्रदेश) के व्यापारी कृष्ण वर्ण, निष्ठुर वचनवाले, बहुत काम-भोगी और निर्लज्ज थे, वे 'अड्डे' का प्रयोग करते थे।

मध्यदेश के व्यापारी न्याय, नीति, सधि, और विग्रह मे पटु, स्वभाव से बहुभाषी थे, वे 'तेरे मेरे आउ' शब्दो का प्रयोग करते थे।

मगध देशवासी पेट निकले हुए, दुर्वर्ण, तथा सुरत क्रीडा में तल्लीन रहते थे, वे 'एगे ले' का प्रयोग करते थे।

अन्तर्वेदी (गंगा और यमुना के वीच का प्रदेश) के वासी कपिल रंग के, पिंगल नेत्रवाले, भोजन-पान और गपशप में लगे रहने वाले और मिष्टभाषी थे, वे 'कित्तो कम्मो' शब्दो का प्रयोग करते थे।

कीर (कुल्लू कागडा) देशवासी ऊची और मोटी नाकवाले, गेंहुआ रंग के और भारवाही होते थे, वे 'सारि पारि' शब्दों का प्रयोग करते थे।

ढक्क (पजाव) देश के वासी दाक्षिण्य, दान, पौरुष, विज्ञान और दया-रहित थे, 'एहं तेहं' शब्दो का वे प्रयोग करते थे।

सिंधुदेशवासी ललित, मृदुभाषी और सगीतप्रिय थे, अपने देश की ओर उनका मन लगा रहता था, वे 'चउडय' शब्द का प्रयोग करते थे।

१ कुवलयमाला पृ० ६५–६७। यहा समुद्रयात्रा की तैयारी का वर्णन है। समुद्री तूफान के वर्णन के लिये देखिये पेरा १३३ पृ० ६८

मरुदेश(मारवाड)वासी वक्र, जड, उजड्ड, बहुभोजी, कठिन, पीन और फूले हुए शरीर वाले थे, वे 'अप्पां तुप्पां' शब्दो का प्रयोग करते थे ।

गुर्जर देशवासियो का शरीर घी और मक्खन से पुष्ट था, वे धर्मपरायण तथा सधि और विग्रह में निपुण थे, 'णउ रे भल्लउ' शब्दो का वे प्रयोग करते थे ।

लाट देशवासी स्नान के पश्चात् सुगधित द्रव्यो का आलेपन करते, अपने बाल काढते और अपने शरीर को सजाते, वे 'अम्हं कउ' शब्दो का प्रयोग करते थे ।

मालव देशवासी तनु, श्याम और छोटे कद वाले, क्रोधी, मानी और रौद्र स्वभाव के थे, वे 'भाउय भइणी' और 'तुम्हे' शब्दो का प्रयोग करते थे ।

कर्णाटक के व्यापारी उत्कट दर्पवाले, मैथुनप्रिय, रौद्र और पतंग वृत्तिवाले थे, वे 'अडि पाडि मरे' शब्दो का प्रयोग करते थे ।

ताजिक के व्यापारी कचुक से आवृत्त शरीर वाले, मांस में रुचि रखने वाले, तथा मदिरा और मदन मे तल्लीन रहते थे, वे 'इसि किसि मिसि' शब्दो का प्रयोग करते थे ।

कोशलदेश के वासी सर्व कला संपन्न, मानी, क्रोधप्रिय और कठिन शरीर वाले होते थे, वे 'जल तल ले' शब्दो का प्रयोग करते थे ।

महाराष्ट्र के व्यापारी हृष्ट-पुष्ट, छोटे कद वाले, श्यामल अग वाले, सहनशील, अभिमानी और कलहप्रिय थे, वे 'दिण्णल्ले गाहयल्ले' शब्दो का प्रयोग करते थे ।

आध्र देशवासी महिलाप्रिय, सग्रामप्रिय, सुन्दर और रौद्र भोजन करने वाले थे, वे 'अटि पुटि रटि' शब्दो का प्रयोग करते थे ।—कुवलयमाला, पृ० १५२ ।

ठेठ व्यापारी भाषाओ का वे लोग प्रयोग कर रहे थे । कोई कह रहा था—'दे दो, दे दो', 'इससे अधिक सुन्दर हमें चाहिए', 'यह सुन्दर नहीं तो अपना रास्ता देख', 'आओ, पधारो', 'चलो, खरीद के भाव मे ही दे देगे', 'सात गये तीन बचे'—'हिसाब लगाने पर आधा बाकी रहा', 'बीस के आधे दस', 'हम तो पाई-पाई का हिसाब लगाते है', 'सौ भार, करोड, लाख सौ करोड, पलशत, पल, अर्धपल, कर्ष, मास, रत्ती', 'अरे, बडा व्यापार होगा', 'ले जाओ, बहुत अच्छा और सस्ता मिल रहा है', 'अरे, यहाँ तो आओ, इसके ऊपर तुम्हे कुछ मासा और दे देगे', 'अरे, मालको क्यो ढक लिया, हमे लेना है', 'देखो, अच्छी तरह देख-परख कर जाना', 'यदि माल जरा भी खराब निकला तो ग्यारह करोड दूगा ।'
—कुवलयमाला पृ० १५३ ।

पोतवणिकों के अन्य आख्यान

व्यापारी लोग धनोपार्जन के लिए जल और स्थल मार्ग से बडे-बडे पर्वत, नदी-नाले और भयानक जंगल तथा महानदी और प्रत्यवायबहुल समुद्र-[1]सचरण करके साहसिक यात्राएँ किया करते थे।

चपा के जिनपालित और जिनरक्षित नामक वणिक्पुत्र ग्यारह बार लवणसमुद्र (हिन्द महासागर) की यात्रा कर प्रभूत धनसचय कर चुके थे। लेकिन फिर भी उन्होने किसी प्रकार अपने पिता की अनुमति प्राप्त कर बारहवीं बार समुद्रयात्रा की।[2]

इसी प्रकार समराइच्चकहा[3], नर्मदासुंदरीकथा[4], प्राकृतकथासग्रह[5], जिनदत्ताख्यान[6], सिरिवालकहा[7] आदि प्राकृत के अनेक आख्यान ग्रंथो में वणिक्पुत्रो और सांयात्रिको के वर्णन आते है जिन्होने समुद्रमार्ग से यात्रा कर, अपनी जान जोखिम मे डाल, प्रचुर धन का सचय किया।

व्यापारियों की पत्नियों की शीलरक्षा

पोतवणिको के परदेश यात्रा करने पर उनकी सहधर्मिणियो को अकेले समय काटना दुष्कर हो जाता। पति की दीर्घकालीन अनुपस्थिति में उनके सतीत्व के विषय मे शका उपस्थित हो जाती। परदेश मे गया हुआ पति भी किसी युवती के

१ वसुदेवहिंडी, पृ० २५३

२ णायाधम्मकहाओ, कथा ९। इस कथा की तुलना बौद्धों के वलाहस्स जातक (१९६) और दिव्यावदान से की जा सकती है।

३ चौथे भव में धन और धनश्री, तथा छठे भव मे धरण और लक्ष्मी की समुद्रयात्रा का वर्णन है।

४ महेश्वरदत्त ने अपनी पत्नी नर्मदासुदरी को साथ लेकर धनार्जन के लिए यवनद्वीप प्रस्थान किया और मार्ग मे उसके चरित्र पर सदेह हो जाने के कारण उसे वहीं छोड दिया।

५ समुद्रयात्रा के वर्णनप्रसग मे कालिका वायु बहने के कारण जहाज भग्न हो जाता है। श्रेष्ठीपुत्र एक तख्ते के सहारे सुवर्णद्वीप पहुँच सोने की ईंटे प्राप्त करता है।

६. जिनदत्त अपनी पत्नी श्रीमती के साथ समुद्रयात्रा करता है। कोई व्यापारी जिनदत्त की पत्नी को हथियाने के लिए उसे समुद्र में ढकेल देता है।

७ श्रीपाल की समुद्रयात्रा के प्रसग पर बड़सफर, पवहण, बेडिय, वेगड, सिल्ल (सित=पाल), आवत (गोल नाव) और बोहित्थ नाम के जलयानों का उल्लेख है।

मायापाश में फंस जाता, अथवा विवाह कर लेता।[1] इस सबन्ध के अनेक आख्यान प्राकृत जैन कथा-ग्रथो में उपलब्ध है।

उज्जैनीनिवासी वसुदत्ता का विवाह कौशाम्बी के धनदेव सार्थवाह के साथ हुआ था। एक बार उसका पति परदेशयात्रा के लिए गया। वसुदत्ता को पता चला कि व्यापारियो का काफला उज्जैनी जा रहा है। उज्जैनी में माता-पिता को मिलने की इच्छा से उसने अपने सास-ससुर से काफले के साथ जाने की अनुमति माँगी। उन्होने कहा—तुम गर्भवती हो और तुम्हारा पति परदेश में है, अकेले तुम कहाँ भटकती फिरोगी? लेकिन वह नहीं मानी और अपने शिशुओ को लेकर चल पडी। आगे जाकर वह काफले से भ्रष्ट हो गयी। इस बीच में उसका पति प्रवास से लौट आया। अपने पुत्र और स्त्री के स्नेह के वशीभूत हो वह उनकी खोज में चल दिया[2]।

कितने ही प्रसग ऐसे आते जब पोतवणिकों की पत्नियो को अपने शील की रक्षा करना कठिन हो जाता।

चीन की यात्रा से लौटने पर अपनी पत्नी का व्यवहार देख धरण को उसके चरित्र पर सदेह होगया। टोप्प सेठ को उसने आदि से अंत तक सारा वृतान्त कह सुनाया। उसने कहा—मेरी पत्नी जीवित तो है, लेकिन शील से नहीं।[3]

कौशांबी के धनदत्त नामक व्यापारी की रूपवती कन्या सुदरी का विवाह यशोवर्धन से हो गया था। लेकिन यशोवर्धन बडा कुरूप था अतएव उसकी पत्नी के मन वह नहीं भाता था।

एक बार यशोवर्धन ने बहुत-सा माल लेकर परदेश जाने का इरादा किया। उसने अपनी पत्नी से भी साथ चलने को कहा लेकिन उसने बहाना बना दिया।

पति के परदेश चले जाने पर वह अपने पीहर जाकर रहने लगी।

एक दिन अपने भवन की ऊपर की मंजिल में बैठी हुई वह अपने केश सवार रही थी कि कोई राजकुमार वहाँ से गुजरा। दोनो की आँखे मिल गई।

१ सुन्दर के परदेश जाते समय उसकी माँ ने उसे उपदेश दिया बेटा! विषय भोगों से और चोरों से सदा अपनी रक्षा करना। याद रख, जवानी की उम्र जगल के समान बडी मुश्किल से पार की जाती है। कहीं ऐसा न हो कि स्त्रियों के पाश में फस जाओ। देखिए, कुमारपालप्रतिबोध, 'रमणी के रूप' में 'नगरी के न्यायी पुरुष' शीर्षक कहानी तथा शुकसप्तति (कथा ३३) कथासरित्सागर उपकोशा की कथा (१-४)

२. वसुदेवहिंडी, पृ० ५९-६०

३. समराइच्चकहा, छठा भव

राजकुमार ने एक गाथा पढी—

"जिस स्त्री के अनुरूप गुण और यौवन वाला पुरुष नहीं, उसके जीने से क्या लाभ ? उसे तो मृत समझना चाहिए।"[1]

सुन्दरी ने उत्तर दिया—

"पुण्यहीन पुरुष प्राप्त की हुई लक्ष्मी का उपभोग करना नहीं जानता। पराक्रमी पुरुष ही परायी लक्ष्मी का उपभोग कर सकता है"।[2]

रात्रि के समय गवाक्ष मे से चढकर, राजकुमार उसके भवन में पहुँचा और पीछे से चुपचाप आकर उसकी आँखें मींच लीं।

सुन्दरी ने कहा—

"अरे, क्या तू नहीं जानता कि तू मेरे हृदय को चुराकर ले गया था ? और अब तू मेरी आँखे मींचने के बहाने सचमुच अंधेरा कर रहा है। आज मै निर्भ्रान्त होकर अपने बाहुपाश को तेरे गले मे डाल रही हूँ। या तो अपने इष्ट देव को स्मरण कर, नहीं तो पुरुषार्थ का प्रदर्शन कर"।[3]

इस प्रकार दोनो में प्रेमपूर्ण वार्तालाप होता रहा।

प्रात:काल उठकर राजकुमार अपने स्थान को लौट गया।[4]

शीलवती महिलाएँ

अनेक ऐसी महिलाओ के भी उल्लेख मिलते है जो अपने पति के परदेश जाने पर बडे साहसपूर्वक अपने शील की रक्षा करने मे दत्तचित रहीं।

शीलवती का पति श्रेष्ठिपुत्र अजितसेन जब राजा के साथ परदेश यात्रा पर जाने लगा तो अपनी पत्नी की ओर से उसे बडी चिंता हुई। उस समय शीलवती

---

१. अणुरुवगुण अणुरुवजोव्वणं माणुस न जस्सत्थि।
किं तेण जियतेण पि मानि नवर मओ एसो॥

२ परिभुजिउ न याणइ लच्छि पत्त पि पुण्णपरिहीणो।
विक्कमरसा हु पुरिसा भुजति परेसु लच्छीओ॥

३ मम हियय हरिऊण गओसि रे किं न जाणिओ त सि।
सच्च अच्छिनिमीलणमिसेण अधारय कुणसि॥
ता बाहुलयापास दलमि कठम्मि अज्ज निब्भत।
सुमरसु य इट्ठदेव पयडसु पुरिसत्तण अहवा॥
—जिनेश्वरसूरि, कथाकोषप्रकरण, जगदीशचद्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास पृ० ४३३

४. देखिए, 'रमणी के रूप' में 'पराई लक्ष्मी का उपभोग' शीर्षक कहानी।

ने अपने पतिको विश्वास दिलाते हुए कहा—प्राणनाथ! आप बिल्कुल भी चिंता न करे। 'अग्नि शीतल हो सकती है, सूर्य पश्चिम में उग सकता है, मेरु का शिखर कपायमान हो सकता है, पृथ्वी उछल सकती है, वायु स्थिर हो सकती है, समुद्र मर्यादा का उल्लंघन कर सकता है, लेकिन त्रिकाल में भी मेरा शील भंग नहीं हो सकता।''[1]

श्रेष्ठीपुत्र चन्द्र की पत्नी तारा अपने पुत्र के साथ मदन नामक सार्थवाह के जहाज में सवार हो सिंहलद्वीप के लिए रवाना हो गयी। मार्ग में जहाज फट जाने के कारण जहाज डूब गया। तारा किसी भील के हाथ पड गयी। उसने उसे अपनी पल्ली के स्वामी को भेंट में दे दी। पल्ली के स्वामी ने तारा के रूप पर मोहित हो उसे अपनी पत्नी बनाना चाहा। तारा ने उत्तर दिया—"देखिए, सिंह की जटाएँ, सती-साध्वियों की जंघाएँ, शरण में आये हुए सुभट और सर्प के मस्तक की मणि को, बिना जान हथेली पर रक्खे प्राप्त नहीं किया जा सकता।"[2]

कहा गया है कि देशाटन को गये हुए व्यापारियों की घर में रही हुई स्त्रियों की राजाओं को रक्षा करना चाहिए।[3]

यात्रागीत

जान पड़ता है, वणिक्पुत्रों के इन साहसिक यात्राओं संबंधी गीतों की रचना भी की गयी थी। गायिकाएँ इन गीतों को विश्वासपूर्वक गाकर श्रोताओं का मनोरंजन किया करतीं। एक गीत देखिए—

वणिकों का एक बड़ा सार्थ गणिम (गिनने योग्य), धरिम (तोलने योग्य), मेय (मापने योग्य) और परीक्ष्य (परखने योग्य) माल को लेकर अपने नगर से रवाना हुआ। बीच में एक अटवी पडी। यहाँ सिंह का भय था। अस्त्र-शस्त्र से सज्जित हो वणिक् वहीं ठहर गये। इतने में वहाँ सिंह आया। सब लोग भय से घबडा गये। फिर एक गीदडी आई। उसके साथ सिंह रतिक्रीडा करने लगा। वणिक् उसे मारने के लिए तैयार हो गये। लेकिन कुछ ने कहा—उसे मारने से क्या? जो गीदड़ी के साथ सहवास कर सकता है, वह कैसा सिंह? यह सुन सब निश्चिन्त होकर बैठ गये।[4]

---

१ कुमारपालप्रतिबोध, देखिए 'रमणी के रूप' में 'शीलवती की चतुराई' कहानी, पृ० १४–२० तुलनीय वसुदेवहिंडी में ललिनाग नामक सार्थवाहपुत्र की कथा, पृ० ९।

२ कुमारपालप्रतिबोध, देखिए 'रमणी के रूप' के अन्तर्गत 'रूपवती तारा' पृ० ११–१५।

३ वसुदेवहिण्डी, पृ० २३३

४ वही, पृ० २८२

निष्कर्ष यह कि अटवी पार करते समय व्यापारियो को सिह आदि का भय नहीं रखना चाहिए।

मार्ग की थकान दूर करने वाली कथाएँ

जैसे राजे-महाराजे कथा-कहानियो के शौकीन थे, वैसे ही दूर-दूर तक जल अथवा स्थलमार्ग से प्रवास करने वाले वणिक् यात्री रोचक कथाएँ सुनकर अपनी लम्बी मुसाफिरी सुखपूर्वक तय करते थे।[1] अनेक व्यापारी तीर्थों तथा देश-देशांतर सबंधी कथाएँ कहने मे निष्णात होते थे।[2] इस सबध मे वसुदेव और अशुमान का एक रोचक आख्यान आता है। चलते-चलते वसुदेव को थका हुआ जान, अंशुमान ने कहा—आर्य पुत्र! क्या मै आपको ले चलूँ? यदि नहीं, तो आप मुझे ले चलिए।

वसुदेव ने सोचा थकान के कारण मेरे पैर लडखडा रहे है, ऐसी हालत में अंशुमान मुझे कैसे लेकर चल सकता है? यह राजपुत्र सुकुमार है, मै ही इसे क्यो न ले चलूँ? वसुदेव ने कहा—आओ मित्र! चढ जाओ, मै तुम्हे लेकर चलता हूँ।

अशुमान ने हँसकर उत्तर दिया—आर्यपुत्र! इस तरह किसी को मार्ग में लेकर नहीं चला जाता। यदि कोई मार्गजन्य खेद के कारण थके-मादे व्यक्ति को रोचक कथाएँ सुनाता चलता है, तो इसे ले चलना कहते है, इससे उसकी थकान दूर हो जाती है।

वसुदेव ने कहा यदि ऐसी बात है तो कोई रोचक कहानी सुनाओ। तुम्हीं इस कला मे कुशल हो।[3]

संस्कृतियों का आदान-प्रदान

जैन धर्म का अनुयायी विशेषकर व्यापारी वर्ग था, अतएव इस वर्ग के उपदेशार्थ वनिज-व्यापार सबंधी कथाओ का धर्मकथाओ में समावेश किया जाना स्वाभाविक था। ये व्यापारी धनोपार्जन के लिए दूर देशो की यात्रा किया करते थे। निश्चय ही इससे उनके व्यावहारिक ज्ञान में वृद्धि होती थी। वस्तुत

१ बृहत्कथाश्लोकसग्रह में मार्ग की क्लान्ति दूर करने के लिए रमणीय कथाएँ कहने का उल्लेख है—

अथ मा रमयन्तस्ते रमणीयकथा पथि।
अगच्छन् कञ्चिदध्वानमचेचितपथक्लमम् ॥ १८ १८४ पृ० २३६

२ वसुदेवहिण्डी, पृ० २३२

३ वही, पृ० २०८

ये व्यापारी ही उन दिनो हमारे देश के राजदूत थे जो विभिन्न देशो के साथ हमारे वाणिज्य और सास्कृतिक सवधो को दृढ बनाने में सहायक हुए थे। इनके माध्यम से ही हमारे देश के कितने ही रीति-रिवाज, आचार-विचार एवं कथा-कहानियाँ समुद्र की सीमा लांघकर दूसरे देशो मे पहुँची है, तथा दूसरे देशो के रीति-रिवाजो और कथा-कहानियो ने हमारी सभ्यता और सस्कृति को प्रभावित किया है।[1]

१ एन एम पेंजर ने भारतवर्ष को कहानियों का भडार वताया है। उसका कहना है कि गर्म आवहवा के कारण, यहाँ के निवासियो के स्वभाव में कुछ शिथिलता आ जाने तथा पूर्वी देशों में कुछ अधिक मात्रा मे ही मेहमानदारी के कायदे-कानूनों का पालन किये जाने से, शीतल सध्या के समय स्त्रियो के विना केवल पुरुषों की गोष्ठी मे कहानी की खुब ही प्रगति हुई। यहीं से फारस के लोगो ने कहानी कहने की कला सीखी। फिर यह कला अरव में पहुँच गयी। मध्यपूर्व के कुस्तुनतुनिया और वहाँ से वेनिस होती हुई अत मे वोकाचिओ, औसर और लफॉन्तेन (La Fantaine) की कृतियो मे उद्धृत हुई। द ओशन आफ स्टोरी, इन्ट्रोडक्सन, पृ० ३४–३६। एम विन्टरनित्स ने भारतीय कथा साहित्य का विदेशी साहित्य पर प्रभाव स्वीकार किया है। यह साहित्य यूरोप और एशिया तक ही सीमित न रहा, अफ्रीका मे भी इसने प्रवेश पाया। भारत के व्यापारियो के माध्यम मे यहाँ की कथा-कहानियो ने ही विदेशो की यात्रा नहीं की, अपितु भारतीय कथा साहित्य की पुस्तकों का अनुवाद भी विदेशी भाषाओं में किया गया। वहुत समय तक विद्वान भारतवर्ष को ही समस्त कथा-कहानियों का जन्मस्थान मानते रहे, किन्तु लोकवार्ता और नृकुल विज्ञान के अध्ययन के वाद यह मान्यता अव निर्मूल हो गयी है। फिर भी विदेशों की कितनी ही कहानियाँ ऐसी हैं जो भारतवर्ष से ही उन देशो मे पहुँची हैं। हिस्ट्री आफ इडियन लिटरेचर, जिल्द ३, भाग १, पृ० ३०२–३।

२.

प्राकृत की धर्म और नीति सम्बन्धी कथाएँ

१. धर्म-कथाएँ

काम और अर्थ के बाद धर्म आता है । धर्म के सबंध मे कहा है—"धर्म से श्रेष्ठ कुल मे जन्म होता है, दिव्य रूप और सम्पत्ति प्राप्त होती है, धन-समृद्धि मिलती है, कीर्ति का विस्तार होता है, अतुल मगल की प्राप्ति होती है, समस्त दु खो की यह अनुपम औषधि है. धर्म ही विपुल बल है, त्राण है और शरण है ।[1] इसी धर्मकथा के संकल्पपूर्वक अवंतिराज समरादित्य के चरित का वर्णन करने के लिए समराइच्चकहा की रचना की गयी है । वसुदेवहिंडी मे, जैसे कहा जा चुका है, शृङ्गार कथा के बहाने धर्मकथा का ही प्ररूपण है । कुवलयमाला में भी बीच-बीच मे कामशास्त्र की चर्चा आती है, किन्तु धर्म प्राप्ति मे सहायक होने से इस कथा को धर्मकथा (आक्षेपणी) समझ कर पढने और सुनने का लेखक का अनुरोध है ।[2]

धर्मप्राप्ति की मुख्यता

इस प्रकार हम देखते है कि जैन विद्वानो ने अपने कथा-ग्रंथो में धर्म को मुख्य मानकर ही आख्यान लिखे है । इतना अवश्य है कि कामकथा मे काम और अर्थकथा मे अर्थ की प्रधानता रहती है, यद्यपि उद्देश्य इनका भी धर्म प्राप्ति ही है ।

धर्मकथा के भेद

धर्मकथा के चार भेद है— श्रोता के मन को अनुकूल लगने वाली कथाएँ (आक्षेपणी) श्रोता के मन को प्रतिकूल लगने वाली कथाएँ (विक्षेपणी), ज्ञान की उत्पत्तिपूर्वक सवेगवर्धक कथाएँ (सवेदिनी) और वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथाएँ (निर्वेदनी) ।[3] जिसमे धर्म उपादान रूप हो तथा क्षमा, मार्दव, आर्जव अलोभ, तप, सयम, सत्य, शौच आदि जन-कल्याणकारी व्रत-नियमो का वर्णन हो उसे धर्मकथा कहा गया है ।

---

१ धम्मेण कुलपसूई धम्मेण य दिव्वरूवसपत्ती ।
धम्मेण धणसमिद्धी धम्मेण सुवित्थडा कित्ती ॥
धम्मो मगलमउल ओसहमउल च सव्वदुखाण ।
धम्मो बलमवि विउल धम्मो ताण च सरण च ॥

—समराइच्चकहा, पृ० ६

२. ८, ९, पृ० ४–५

३. दशवैकालिक निर्युक्ति १९३–२०५, तथा हारिभद्रीय टीका, पृ० १०९अ–११३अ ।

श्रोताओं के प्रकार

अर्थ, काम, धर्म और सकीर्ण कथाओ के श्रोता अधम. मध्यम और उत्तम के भेद से तीन प्रकार के होते है। जो क्रोध आदि के वशीभूत हो, इस लोक में ही आस्था रखने वाले, जीवदयारहित अनर्थबहुल अर्थकथाओ के श्रवण में आनन्द लेते हो ऐसे तामस वृत्ति वाले अधम श्रोता है। शब्द आदि विषयों में मोहित बुद्धि युक्त, "यह सुन्दर है और यह इससे भी सुन्दर है" —इस प्रकार की अस्थिर मतिवाले, पंडितजनो द्वारा उपहास के योग्य और विडम्बना मात्र ऐसी कामकथाओ में आनन्द लेने वाले राजसी वृत्ति के लोग मध्यम श्रोता है। इहलोक और परलोक मे सापेक्ष, व्यवहार नय में कुशल, परामर्थ की अपेक्षा सार विज्ञान से हीन, क्षुद्र, भोगो को बहुत न मानने वाले, उदारभोगो में तृष्णा रहित, सात्विक मनोवृत्ति वाले, त्रिवर्ग का निरूपण करने वाली तथा तर्क, हेतु और उदाहरण युक्त सकीर्णकथा में रस लेने वाले श्रोताओं को भी मध्यम कोटि में ही गिना गया है। तथा जाति, जरा, मरण से वैराग्य को प्राप्त, कामभोगो से विरक्त, सकलकथाओ में श्रेष्ठ महापुरुषो द्वारा सेवित धर्मकथा में रस लेने वाले सात्विक श्रोताओ को उत्तम कहा गया है।[1]

धार्मिक कथा-साहित्य

कहा जा चुका है कि जनकल्याणकारी लोकप्रिय धर्म और नीति-संबंधी कथाओ द्वारा जनसमूह का मार्ग-प्रदर्शन करना ही इन कथाओ का उद्देश्य रहा है। इस सबंध में आगमकालीन कथा-साहित्य में ज्ञातृधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, विपाकसूत्र आदि आगम ग्रथो का नामोल्लेख किया जा सकता है। ज्ञातृधर्मकथा में ज्ञातृपुत्र महावीर द्वारा प्ररूपित धर्मकथाओ का संग्रह है। विभिन्न उदाहरणो, दृष्टांतो एवं लोकप्रचलित कथाओ के माध्यम से यहाँ सयम, तप और त्याग का उपदेश दिया गया है। उपाशकदशा में महावीर के दस उपासकों और अन्तकृद्दशा मे अर्हतो की कथाएँ है। विपाकसूत्र में शुभ और अशुभ कर्मो के विपाक सबंधी कथाएँ दी हुई है। उत्तराध्ययन नामक मूल सूत्र में उपमा, दृष्टात और विविध संवादो द्वारा धर्मकथामूलक त्याग और वैराग्य का वर्णन है। आगम ग्रन्थो की निर्युक्तियों, भाष्यों, चूर्णियों और टीकाओं में तो अनेकानेक धर्मकथाए सनिविष्ट है।

१ समराइच्चकहा, पृ० ४–५

कथाकोशों की रचना

आगमोत्तरकालीन साहित्य मे अनेक लोकप्रिय कथाग्रंथो और कथाकोषो की रचना की गयी। तरगवईकहा, वसुदेवहिडी, समराइच्चकहा और कुवलयमाला के अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण कथाकोष लिखे गये। इनमें जिनेश्वरसूरि का कहाणयकोस (कथानककोष), नेमिचन्द्रसूरिकृत कथामणिकोश (आख्यानकमणिकोष), गुणचन्द्रगणि (देवभद्रसूरि के नाम से प्रख्यात) कृत कहारयणकोस (कथारत्न कोष), विनयचन्द्रकृत धम्मकहाणयकोस (धर्मकथानककोश), भद्रेश्वरकृत कहावलि, पद्मचन्द्रसूरि के अज्ञातनामा शिष्यकृत पाइयकहासगह आदि उल्लेखनीय है।[1] इन कथाकोपो मे विविध विषयो पर धर्मकथाओ का सग्रह है जिनमें मत्र-विद्या, सर्पविप उतारने की विधि, देवी आराधना से पुत्रोत्पत्ति, सगीत, अभिनय, सास-बहू का कलह, गृहकलह, राजसभाओ मे वाद-विवाद, धातुवाद, उत्सव, चर्चरी-प्रगीत आदि के साथ पर्वत की यात्रा, खन्यविद्या (जमीन में गडे हुए धन का पता लगाना), हाथियो की व्याधि, हाथियो को पकडने की विधि, परिवार की दारिद्र्यपूर्ण स्थिति, मल्लयुद्ध, चोरो का उपद्रव, ठगविद्या, धूर्तविद्या, युद्ध, खेती, वनिज-व्यापार, शिल्पकला आदि लौकिक विपयो से सबंध रखने वाले अनेक रोचक आख्यानो का सग्रह है। आख्यानो को रोचक बनाने के लिए बीच-बीच में चित्रकाव्य, सुभाषित, उक्ति, कहावत, सवाद, गीत, प्रगीत, प्रहेलिका, प्रश्नोत्तर, वाक्कौशल आदि शैलियो का प्रयोग किया गया है।

२ धूर्तों और पाखंडियों की कथाएँ

लौकिक कहानियो मे हम सर्वप्रथम धूर्तों, पाखडियो, ठगो और मक्कारो सबधी कथाओ को ले। ये कहानियाँ जैन प्राकृत कथा-ग्रथो में यत्र-तत्र बिखरी पडी है। इनका उद्देश्य था समाज-विरोधी तत्त्वो का भंडा-फोड कर धूर्तों आदि के चंगुल से स्वरक्षा करना।

गांव का कोई किसान गाडी मे अनाज भरकर शहर में वेचने जा रहा था। उसकी गाड़ी में तीतरी का एक पिंजडा बधा हुआ था।

नागरिकों द्वारा ठगाया गया ग्रामीण

शहर पहुँचनेपर गधीपुत्रो ने उससे पूछा—यह गाडी-तीतरी (प्राकृत में सग-

1. प्राकृत एव सस्कृत के कथाकोषों के विवरण के लिए देखिए, हरिषेण, बृहत्कथाकोश, डाक्टर ए० एन० उपाध्ये की भूमिका, पृ० ३९ आदि

डतित्तिरी अर्थात् (१) गाड़ी में लटके हुए पिंजड़े की तीतरी, (२) अथवा गाडी और तीतरी) कैसे बेचते हो ?

किसान ने उत्तर दिया—एक कार्षापण में

गंधीपुत्रो ने उसे कार्षापण दे दिया और उसकी अनाज से भरी गाडी और तीतरी लेकर चल दिये ।

किसान को बडा दु ख हुआ कि एक कार्षापण मे उसकी अनाज भरी गाडी और तीतरी दोनो ही चल दिये ।

किसान न्यायालय मे गया, लेकिन हार गया ।

कुछ दिनो बाद गधीपुत्रो के घर जाकर वह कहने लगा — मालिक ! अनाज से भरी हुई मेरी गाड़ी तो चली ही गयी, अब इन बैलो को रखकर मै क्या करूँगा । इन्हे भी आप ही रख लें । इनके बदले मुझे सिर्फ दो पायली सत्तू दे दे । लेकिन यह सत्तू मै सर्वालंकारभूषित आपकी प्राणेश्वरी के हाथ से ही ग्रहण करूँगा ।

गधीपुत्र ने किसान की बात स्वीकार कर ली ।

गधीपुत्र की प्राणेश्वरी ज्यो ही सत्तू देने आयी, किसान उसका हाथ पकड कर चल दिया ।

पूछने पर उसने उत्तर दिया—मै तो दो पायली सत्तू ले जा रहा हूँ ।[1]

कमलसेना ने चंपा नगरी मे प्रवेश करते समय धम्मिल्ल को यह दृष्टात देते हुए कहा था—आर्यपुत्र ! पुर, नगर और जनपदो में प्राय' वंचक लोग बसते है, आप सावधान होकर जाये । कहीं ऐसा न हो कि जैसे क्रय-विक्रय के समय धूर्त नागरिको ने गांव के सीधे-साधे किसान को ठग लिया था, वैसे ही आपको भी लोग ठग ले ।[2]

धूर्तो से सावधान रहने की आवश्यकता

क्षेमेंद्र (११ वीं शताब्दी) ने लिखा है—धनवान कुल मे पैदा हुए, दुनियादारी के ज्ञान से वंचित भोले-भाले लोग, धूर्तो के हाथ में ऐसे ही नाचते है जैसे कि हाथ की गेंद । ये लोग वारवनिताओ के चरणो के नुपूर मे लगी हुई

१ वसुदेवहिंडी, पृ० ५७–५८

२ वसुदेव ने जब भद्दिलपुर के जीर्णोद्यान में प्रवेश किया, उस समय भी अंशुमान ने अपने मित्र को सावधान रहने को कहा, क्योंकि अज्ञात नगरों में अतिदुष्ट लोग रहते हैं, जो भले आदमियो को ठग लेते हैं । वसुदेवहिंडी, पृ० २०९

मणि के समान जीवन यापन करते है। पक्षियो के नवजात शावको की भाँति इनका देश एव काल अज्ञात रहता है, इनके मुख चचल होते है, और पंगु होते हुए भी ये फुदकते फिरते है। जैसे मार्जार पक्षिशावको को हजम कर जाते है, वैसे ही धूर्त भोले-भाले लोगो को चट कर जाते है[1]

धूर्तों को चतुर्मुख कहा गया है--मिथ्या आडम्बर से वे धनी बन जाते है, पुस्तको के पंडित होते है, कथाओ के ज्ञानी होते है, वर्णन मे शूर होते है और बड़े चपल होते है।[2] यदि किसी स्त्री का पति परदेश गया हुआ हो तो दृष्ट अथवा अदृष्ट, क्रूर और कृत्रिम वचनपूर्ण मुद्राओ द्वारा धूर्त पुरुष उस मुग्ध वधू का अपहरण कर लेते है।[3]

स्तेयशास्त्रप्रवर्तक धूर्तशिरोमणि मूलदेव[4] अपने शिष्यो को दंभ[5] और धूर्तविद्या

---

१ धूर्तकरकन्दुकाना वारवधूचरणनूपुरमणीनाम् ।
धनिकगृहोत्पन्नाना मुक्तिर्नास्त्येव मुग्धानाम् ॥
अज्ञातदेशकालाश्चपलमुखा पङ्गवोऽपि सप्लुतय ।
नवविहगा इव मुग्धा भक्ष्यन्ते धूर्तमार्जारे ॥ —कलाविलास १ १८, १९
तुलना कीजिए सोमदेव के यशस्तिलकचम्पू (भाग २, पृ० १४५) के वर्णन से--
धूर्तेषु मायाविषु दुर्जनेषु स्वार्थैकनिष्ठेषु विमानितेषु ।
वर्तेत य साधुतया स लोके प्रतार्यते मुग्धमतिर्न केन ॥

२ मिथ्याडम्बरधनिक 'पुस्तकविद्वान्' कथाज्ञानी ।
वर्णनशूरश्चपलश्चतुर्मुखो जृम्भते धूर्त ॥ —कलाविलास, ९ ७०

३ दृष्टाभिरदृष्टाभि क्रूराभि कृतकवचनमुद्राभि ।
धूर्तो मुष्णाति वधू मुग्धा विप्रोषिते पत्यौ ॥ —वही, ९ ५९

४ देखिए, जगदीशचन्द्र जैन का "आजकल," अगस्त, १९७० में प्रकाशित 'धूर्त शिरोमणि मूलदेव और धूर्तविद्या' नामक लेख ।

५ क्षेमेन्द्र ने मूलदेव के मुँह से दभ का प्ररूपण कराते हुए उसके तीन मुख्य भेद बताये है—बकदभ, कूर्मजदभ और मार्जारदभ । व्रत-नियम धारण करके बगुले के समान आचरण करने वाला बकदभी, व्रतनियमों को आच्छादित रख कछुए के समान आचरण करने वाला कूर्मजदभी तथा अपनी गति और नेत्रों को गुप्त रखकर मार्जार के समान नियमों को गोपनीय रखनेवाला घोर मार्जारदभी है—

व्रतनियमैर्बकदम्भ सवृत्तनियमैश्च कूर्मजो दम्भ ।
निभृतगतिनयननियमैर्घोरो मार्जारजो दम्भ ॥
कलाविलास, १. ४८

की शिक्षा दिया करता था।[1] काश्मीरी विद्वान् दामोदर गुप्त (आठवीं शताब्दी) ने विट, वेश्या, धूर्त, एवं कुट्टिनियो के जाल से लोगों की रक्षा करने के लिए ही 'कुट्टिनीमत' की रचना की है।

धूर्तराज मूलदेव की कथा

कोई ब्राह्मणकन्या गुप्त रूप से गणिका के वेष मे रहा करती थी। अपने बुद्धिबल से कामीजनो को अपने पास न फटकने देती। उसका पहला पहर स्नान, दूसरा भोजन, तीसरा मण्डन-आभूषण, और चौथा कथा-वार्ता में बीतता। इस प्रकार कामीजनो से अपने शील की रक्षा करती, किन्तु मूलदेव के सगम की इच्छा रखती हुई, वह अपना समय गुजारती।

मूलदेव की नजर भी उस पर लगी थी। लेकिन वह अपने वास्तविक रूप में उसके पास नहीं जाना चाहता था। वह छद्मवेषी कामुक बन उसके पास गया। दोनो का सगम हुआ। उसे गर्भ रह गया।

एक बार, कन्या मूलदेव के साथ द्यूत खेलने लगी। मूलदेव हार गया, वह जीत गयी। मूलदेव को बांधकर वह अपनी माँ के पास ले गयी। उसने मूलदेव से कहा—देखिए, मेरी प्रतिज्ञापूर्ण हो गयी है, तुम साक्षी हो। मूलदेव ने राजा से निवेदन किया—देखिए, महाराज, पतिव्रताएँ कितनी सत्यवती होती है![2]

मूलदेव की दूसरी कथा

मूलदेव और कडरीक दोनो कहीं जा रहे थे। रास्ते मे उन्हे एक बैलगाडी मिली। गाडी मे एक तरुण अपनी स्त्री के साथ बैठा था। युवती स्त्री को देख कडरीक ने मूलदेव को इशारा किया।

कडरीक को मूलदेव ने वृक्षो के झुरमुट में छिपा दिया और स्वयं बैलगाडी के पास आकर खडा हो गया।

मूलदेव ने युवक से अनुनय-विनय की—

१ महाकवि दण्डी ने दशकुमारचरित में द्यूतविद्या तथा कपटकला की भाँति राजकुमारों के लिए चोरविद्या में कुशल होना आवश्यक कहा है। वसुदेवहिण्डी (पृ० २१०, २४७-४८) में द्यूतसभा और द्यूतशाला का उल्लेख है। जहाँ महाधनी अमात्य, श्रेष्ठी, सार्थवाह, पुरोहित, तलवर, दण्डनायक आदि प्रभूत मणि, रत्न और सुवर्ण राशि लेकर जुआर खेलते थे। इसमें हस्तलाघव की मुख्यता रहती थी।

२ क्षेमेन्द्र, बृहत्कथामजरी के अन्तर्गत विषमशील प्रकरण।

देखिए, मेरी पत्नी वृक्षो के झुरमुट में लेटी है। प्रसव-वेदना से वह पीडित है यदि थोडी देर के लिए अपनी पत्नी को उसके पास भेज दे तो कृपा हो।

युवक ने अनुमति दे दी।

युवक की पत्नी वृक्षो में झुरमुट में कंडरीक के पास पहुँची।

वहाँ से लौटकर मूलदेव को उसने बधाई दी कि उसके बेटा हुआ है।

तत्पश्चात् मूलदेव की पगड़ी उछाल अपने पति को लक्ष्य करके उसने निम्नलिखित दोहा पढा—

खडी गड्डीबइल्ल तुहु, बेटा जायां ताह।
रण्णि वि हुंति मिलावडा, मित्तसहाया जांह ॥[1]

तुम्हारी गाडी और बैल खडे है। उसका बेटा हुआ है। जिसके मित्र सहायक होते है, उसका अरण्य मे भी मिलाप हो जाता है।[2]

धूर्त जुलाहा

किसी नगर में कोई जुलाहा रहता था। उसकी दुकान पर कुछ धूर्त जुलाहे कपडे बुना करते थे।

१. तुलनीय शुकसप्तति (५९) की 'राहडभूलड' इत्यादि गाथा से।

२ उपदेशपद, और वादिदेवसूरिकृत टीका, गाथा ९२, पृ ६४, आवश्यकचूर्णी, पृ० ५४९ मे भी यह कहानी मिलती है। शुकसप्तति (४) में इस प्रकार की कथा है। यहाँ विष्णु नामक ब्राह्मण, मार्ग मे चलते हुए पति के वृक्षोंकी आड मे जाने पर, उसकी पत्नी के साथ सभोग करता है और उसके साथ गाडी में बैठकर चल देता है। उपदेशपद (गाथा ९३, पृ० ६४) में कोई व्यतरी गाड़ी मे जाते हुए किसी पुरुष की स्त्री का रूप बना उसके साथ गाडी में बैठकर जाती है। भोजदेव की शृङ्गारमजरी मे मूल देव को धूर्त, अतिविदग्ध, सर्व पाखण्डों का ज्ञाता, सकल कलाकुशल, वचक और प्रतारक के रूप मे उल्लिखित किया है। स्त्रियों के सम्बन्ध मे शकाशील होने के कारण वह अपना विवाह नहीं कराता था। सोमदेव के कथासरित्सागर मे भी मूलदेव का आख्यान आता है। वेतालपचविंशतिका (कथा १३, कथा २२) भी देखिए। उत्तराध्ययन की टीकाओं मे पाटलिपुत्र के राजकुमार और उज्जैनी की प्रसिद्ध गणिका देवदत्ता का विस्तृत आख्यान उपलब्ध है। बृहत्कल्पभाष्य ७६० और निशीथभाष्य २० ६५१७ भी देखिये। हितोपदेश में तीन धूर्तो और ब्राह्मण की कहानी आती है।

कोई ब्राह्मण बकरे को अपने कन्धे पर उठाये ले जा रहा था। इन धूर्तो ने उसे ऐसा चकमा दिया कि बिचारा अपने बकरे को कुत्ता समझ उसे छोड कर चल दिया। जगदीशचन्द्र जैन, हितोपदेश, सधि, पृ० ११७। पचतत्र के तीसरे तन्त्र मे भी यह कहानी आती है। तथा देखिये प्रबधचिंतामणि, पृ० १३६। शिव और माधव नामक धूर्तो की कथा के लिए देखिए, कथासरित्सागर, पाँचवा लबक प्रथम तरग।

इनमें से एक जुलाहे का स्वर बहुत मधुर था। अपने मधुर स्वर से वह गाया करता था।

जुलाहे की लडकी उसका गाना सुनकर मोहित हो गयी।

धूर्त ने कहा—चलो, कहीं भाग चले। जुलाहे की लडकी ने उत्तर दिया—मेरी सखी एक राजकुमारी है। हम दोनो ने निश्चय कर रखा है कि हम एक ही पुरुष से विवाह करेगी।

धूर्त—तो उसे भी बुला लो।

जुलाहे की लडकी ने अपनी सखी के पास समाचार भिजवाया। वह आ गयी। तीनो चल दिए।

इतने में किसी ने एक गाथा पढी—"हे आम्र! यदि कणेर के वृक्ष फूल गये है तो वसत के आने पर तुझे फूलना योग्य नहीं। यदि नीच लोग कोई अशोभन कार्य करने के लिए उतारू हो जाये, तो क्या तू भी वही करने लगेगा ?[1]"

यह सुनकर राजकुमारी सोचने लगी—अरे! ठीक तो है। यदि यह जुलाहे की लडकी इसके साथ जा रही तो क्या मुझे भी उसका अनुकरण करना चाहिए ?

यह सोचकर अपनी रत्नो की पिटारी लेने के बहाने वह राजमहल में लौट गयी।[2]

चार ढोंगी

चन्दन की पत्नी अपने नवजात शिशु को इसलिए स्तनपान नहीं कराती थी कि ऐसा करने से परपुरुष के स्पर्शदोष से उसके शीलभंग हो जाने की आशका थी।

कोई धर्मात्मा ब्राह्मण दर्भ हाथ में लिए जल द्वारा मार्ग का सिंचन कर रहा था। जब वह चंदन की दुकान पर आया तो कहीं से उडकर एक तिनका उसके सिर पर आ गिरा। चंदन ने उसे हटाना चाहा, लेकिन धर्मात्मा ने यह कहकर मना कर दिया कि वह तिनके की चोरी के अपराध में अपना सिर ही धड से अलग कर देगा!

---

१ जइ फुल्ला कणियारया चूयय! अहिमासयमि पुट्ठमि।
तुह न खम फुल्लेउ जइ पच्चता करिति डमराइ॥

२. आवश्यकचूर्णी २ पृ० ५६। आवश्यक हारिभद्रीय टीका, पृ० ५५६। आवश्यक निर्युक्ति १२३९ में दो कलाओ के उदाहरण में उल्लिखित।

एक दिन नगर के बाहर एक वृक्ष पर काठ की भाँति निश्चेष्ट बैठे हुए पक्षी की ओर चन्दन की नजर गई। उसने देखा कि जब वृक्ष के सब पक्षी अपने दाने-पानी के लिए बाहर चले जाते तो वह चुपके से उनके घोसलो में घुस उनके अण्डे-बच्चो को चट कर जाता !

एक दिन उसे भुजा लटकाये ध्यानमग्न एक साधु दिखायी दिया ! वहाँ एक राजकुमारी आई। साधु ने पहले तो उसे उपदेश दिया और बाद में उसका हार निकाल उसे गड्ढे में मार कर फेंक दिया !

चन्दन विचार करने लगा—

जैसा ढोंगी यह पक्षी है और दंभी यह साधु है, वैसी ही कहीं मेरी पत्नी और यह ब्राह्मण भी तो नहीं ?[1]

प्रवचक मित्रों की कहानी

विश्वासपात्र बनकर ठगने वाले वंचक मित्रो की कहानियाँ समराइच्चकहा, कुवलयमाला आदि जैन कथा ग्रंथो मे मिलती है। मायादित्य और थाणु की कथा का उल्लेख किया जा चुका है। कपटी मायादित्य ने अपने मित्र थाणुको ठगने का प्रयत्न किया लेकिन सफलता न मिली।[2]

कपटी मित्र

एक बार की बात है, दो मित्रो को कहीं से एक खजाना मिला। दोनो ने सोचा कि शुभ मुहूर्त में इसे निकालकर घर ले जायेंगे। लेकिन एक दिन कपटी मित्र ने चुपचाप खजाना निकाल कर उसके स्थान पर कोयले रख दिए।

जब दोनो खजाना निकालने आये तो कपटी मित्र कहने लगा—क्या करे भाई साहब ! अपना भाग्य ही ऐसा है, देखो खजाने के कोयले बन गये !

सच्चा मित्र कुछ नहीं बोला।

१ बालेन चुम्बिता नारी, ब्राह्मणो शीर्षहिंसक ।
काष्ठीभूतो वने पक्षी, जीवाना रक्षको व्रती ॥
आश्चर्याणीह चत्वारि मयापि निजलोचनै ।
दृष्टान्यहो तत कस्मिन् विश्रब्ध क्रियता मन ॥
मलधारि हेमचन्द्र (१२ वीं शताब्दी), भवभावना। 'रमणी के रूप', में 'विश्वासपात्र कौन'? कहानी।

२. कुवलयमाला पृ० ५८–५९। मिलाइए पचतत्र, मित्रभेद की धूर्त और चार ब्राह्मणों की कहानी के साथ।

उसने अपने मित्र की एक मूर्ति बनवाई और दो बंदर पाले। प्रतिदिन वह उस मूर्ति पर बंदरों के खाने की चीजें रख देता और बन्दर मूर्ति पर चढ सब खा जाते।

एक दिन उसने अपने मित्र के लड़कों को निमंत्रित किया। लडकों को खाना खिलाकर कहीं छिपा दिया।

जब लडके समय से घर न पहुँचे तो उनके पिता को बड़ी चिन्ता हुई। लडको का पता लगाने वह अपने मित्र के घर आया।

सच्चे मित्र ने उस मूर्ति की जगह अपने मित्र को बैठाकर उस पर बन्दर छोड दिये। बन्दर किलकिलाहट करते हुए उसके साथ खेलने-कूदने लगे।

अपने मित्र से उसने कहा—लो ये रहे तुम्हारे लाड़ले!

कपटी मित्र—अरे, कहीं लडके भी बन्दर बनते हुए सुने गये हैं?

सच्चा मित्र—और खजाना! क्या कभी खजाना कोयला हुआ है?[1]

दो बनिये

एक बार किसी वणिक् ने शर्त लगायी कि जो माघ महिने की शीत में रात्रि के समय पानी के अन्दर बैठा रहेगा, उसे एक हजार दिनारे मिलेगी।

एक बूढा बनिया तैयार हो गया।

रातभर पानी में बैठे रहकर अगले दिन जब वह अपना इनाम मागने गया तो वणिक् ने पूछा—

"अरे भाई, तुम रातभर इतनी सर्दी मे बैठे रहकर कैसे जिन्दा निकल आये?"

"सेठजी! एक घर में दीपक जल रहा था। उसे देखते हुए मै सारी रात पानी में बैठा रहा"—बूढे बनिये ने उत्तर दिया।

वणिक्—तो तुम इनाम के हकदार नहीं हो। जलते हुए दीपक को देखकर तुम पानी में रहे न?

बनिया निराश होकर घर लौट आया।

एक दिन उसने बहुत से लोगों को दावत के लिए निमंत्रित किया। उस वणिक् को भी निमंत्रित किया गया।

१ आवश्यकचूर्णी, पृ० ५५१। 'दो हजार बरस पुरानी कहानी' (द्वितीय संस्करण में) 'दो मित्रों की कहानी'। मिलाइये, पचतंत्र, मित्रभेद की 'धर्मबुद्धि और पापबुद्धि' तथा 'जीर्णधन बनिया कहानियों के साथ। तथा देखिये शुकसप्तति (३९, ५०) कथासरित्सागर (पृ० ३१५), कूटवाणिज जातक।

लेकिन भोजन के समय बनिये को पीने के लिए पानी नहीं दिया।

वणिक् ने पानी माँगा।

बनिये ने दूर से पानी का लोटा दिखाकर कहा यह रहा पानी।

"क्या पानी को दूर से देखकर प्यास बुझाई जा सकती है—" वणिक् ने पूछा।

"और जलते हुए दीपक को दूर से देखकर सर्दी दूर हो सकती है?" बनिये ने उत्तर दिया।[1]

इसके अलावा, धूर्त और ककडी बेचने वाला कूंजडा[2], धरोहर वापिस न देने वाला पुरोहित,[3] किसान और गंधीपुत्र[4] आदि अनेक रोचक आख्यान प्राकृत जैन कथा-साहित्य में वर्णित है। ये केवल मनोरजनात्मक ही नहीं है, इनके पीछे आचार-व्यवहार और नीति-न्याय की भावना सन्निहित है।

३. मूर्खों और विटों की कहानियाँ

कथा-कहानियो मे मूर्खों और विटो[5] का महत्त्व भी कम नहीं है। जैसे धूर्तो और ठगो की धूर्तता और ठगी से, वैसे ही मूर्खों की मूर्खता से भी रक्षा करना आवश्यक है।

भरटद्वात्रिंशिका में ३२ कथाओ का सग्रह है।[6] इसे मुग्धकथा का सुंदर उदाहरण कहा जा सकता है, जिसमें मुग्धकथाओ के बहाने, जीवन में सफलता के

१ आवश्यकचूर्णी, पृ०) ५२३–२४। 'दो हजार वरस पुरानी कहानियाँ' (द्वितीय सस्करण) मे 'पडित कौन' कहानी।

२ आवश्यकचूर्णी, पृ० ५४६। 'दो हजार वरस पुरानी कहानियाँ' मे 'कुंजडा और धूर्त' कहानी। तुलनीय शुकसप्तति (५५) की श्रीधर ब्राह्मण और चन्दन चमार की कहानी से तथा देखिये विनोदात्मक कथासंग्रह, कथा ३९

३ आवश्यकचूर्णी, पृ० ५५०। 'दो हजार वरस पुरानी कहानियाँ' मे 'पुरोहित की नियत' कहानी।

४ देखिए, पीछे, पृ० ६०

५ चतुर्माणी के अन्तर्गत ईश्वरदत्तकृत धूर्तविट संवाद से पता लगता है कि पाटलिपुत्र के राजमार्गो मे विटों की बहुत भीड़ रहती थी। भरत मुनि ने विट को वेश्योपचार मे कुशल, मधुरभाषी, सभ्य, कवि, ऊहापोह करने मे सक्षम, वाक्पटु एव चतुर कहा है। क्षेमेंद्र ने देशोपदेश मे उसे क्षीण, गुणविहीन, सदोष, कलासपन्न तथा कृष्णपक्ष के चन्द्र की भाँति कुटिल कहकर नमस्कार किया है।

६- जे० हर्टेल द्वारा सपादित, लाइप्जिग, १९२१। हर्टेल का मत है कि इस द्वात्रिंशिका का लेखक गुजरात निवासी कोई जैन विद्वान् होना चाहिए। यह रचना ४९२ ई० पूर्व मौजूद थी।

आकांक्षी पुरुष को अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा दी गयी है । पहली कथा की भूमिका का निम्नलिखित वक्तव्य उल्लेखनाय है—"ससार में निश्रेयस की प्राप्ति के इच्छुक लोगो को सदैव अपने सदाचरण के ज्ञान मे वृद्धि करते रहना चाहिए । यह सदाचरण का परिज्ञान मूर्खजनो के चरित पढ़कर हो सकता है । इन चरितो को, लेखक अपनी बुद्धि से कल्पित वस्तु प्रवर्तन के अनर्थ दर्शन द्वारा अभिव्यक्त करता है । इस प्रकार की अभिव्यक्ति तथा मूर्खजनो द्वारा किये जाते हुए आचरण के परिहार के लिए लेखक ने भरटद्वात्रिंशिका की रचना की है ।"

इन कहानियो में लंपट, वंचक, धूर्त, मूर्ख और मिथ्याभाषी पुरुषो का सरस चित्रण देखने में आता है । ग्रामकवियो का उपहास किया गया है ।

किसी ग्रामकवि को वहुत याचना करने पर भी कुछ न मिला। लेकिन भरटक (शैव-उपासक साधु) के शिष्य खा-पीकर मौज से रहते थे, यद्यपि वे न कभी पढ़ते-लिखते थे और न कभी काव्य की रचना ही करते थे । इसके विपरीत, वह रोज नये-नये काव्य की रचना करता, फिर भी कर्म की परवशता के कारण भूखा ही मरता ।[1]

सातवीं कथा में एक मूर्ख शिष्य की कथा आती है । किसी शिष्य को भिक्षा में ३२ वाटियाँ मिलीं । उसे भूख लगी थी । उसने सोचा कि इनमें से गुरुजी को आधी देनी पडेगी, इसलिए वह आधी वाटियो को खा गया । अब सोलह रह गयीं । फिर उसके मन में वही विचार आया । वह फिर आधी खा गया । आठ वच गई । उनमें से फिर आधी खा लीं । चार रह गई, दो रह गई, एक रह गई, अत में आधी वची ।

उसे लेकर गुरुजी के पास पहुँचा । उन्होने पूछा—क्या वस भिक्षा में यही मिला था ?

शिष्य—नहीं महाराज ! मुझे भूख लगी थी, बाकी मै खा गया ।

गुरुजी—कैसे ?

शिष्य ने शेष वची हुई आधी वाटी को भी खाकर वता दिया ।

---

१ भरटक तव चट्टा लवपुट्ठा समुद्धा ।
न पठति न गुणते नेव कव्व कुणते ॥
वयमपि न पठामो किंतु कव्व कुणामो ।
तदपि भुख मरामो कर्मणा कोत्र दोष ॥

—५ वीं कथा

किसी ने ठीक ही कहा है—

सुख की इच्छा रखने वाले गुरु को मूर्ख शिष्य नहीं बनाना चाहिए। बाटी के भक्षक शिष्य की भाँति वह अत्यत विडम्बना पहुँचाता है।[1]

तेरहवीं कहानी में स्वर्ग की गाय की कहानी आती है। यह गाय रात्रि के समय स्वर्ग से उतरकर भूलोक पर आ जाया करती और प्रातः काल होने पर अपने स्थान को लौट जाती। लोगों को स्वर्ग में जाने की इच्छा हुई। उसकी पूछ पकड़ कर वे जाने लगे। लेकिन मार्ग मे हाथ के इशारे से स्वर्ग के लड्डू का परिमाण बताने की लालसा से, पूछ छूट जाने से, सब लोग नीचे गिरकर मर गये।[2]

सोलहवीं कहानी एक जटाधारी शैव-उपासक की है। एक बार उसने अपने शिष्य को बाजार से घी और तेल लाने के लिए कहा। धूपदानी मे उसने एक तरफ घी और दूसरी तरफ तेल ले लिया। वापिस लौटकर वह गुरु के पास आया। गुरु ने पूछा—घी और तेल ले आये ? शिष्य ने गुरु के सामने ही पात्र को एक बार सीधा और एक बार औंधा करके दिखा दिया। घी और तेल दोनो जमीन पर गिर गये।

कथासरित्सागर में नरवाहनदत्त का विनोद करने के लिए उसका विज्ञ मंत्री गोमुख अनेक मुग्ध कथाएँ सुनाता है। इनमें अगर जलाने वाले वैश्य की कथा, तिल बोने वाले मूर्ख कृषक की कथा, मूर्ख गडरिए की कथा, मूर्ख रुईवाले की कथा, केशमूर्ख की कथा, नमक खाने वाले मूर्ख की कथा, मूर्ख गोदोहक की कथा, तैलमूर्ख की कथा, मूर्ख चण्डाल कन्या की कथा, मूर्ख राजा की कथा, मूर्ख सेवक की कथा, 'कुछ' न माँगने वाली की कथा,[3] ब्राह्मण और धूर्तो की कथा, मूर्ख सेवको की कथा, अपूपमुग्ध की कथा, महिर्षीमुग्ध की कथा[4] आदि अनेक मुग्ध-कथाएँ उल्लेखनीय है।

प्राकृत कथा साहित्य की एक कहानी देखिये—

मूर्ख लड़का

किसी स्त्री का पति मर गया था। उसके एक लडका था। लडके ने माँ से पूछा—माँ! पिताजी क्या करते थे ?

---

१ मूर्खशिष्यो न कर्तव्यो गुरुणा सुखमिच्छता।
विडम्बयति सोत्यन्त यथा वटकभक्षक ॥

२ यह कहानी विश्व कथा-साहित्य में अन्यत्र भी पायी जाती है।

३ देखिए, दशमलवक, पचम तरग

४ देखिए, दशम लवक, षष्ठ तरग

माँ—नौकरी।

वालक – मैं भी नौकरी करूँगा।

माँ—तू अभी छोटा है, नौकरी करना तेरे वस की बात नहीं।

लडका—माँ! मुझे वता, नौकरी कैसे की जाती है।

माँ—देख, नौकरी करने वाले को नम्रतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए, मालिक का जय-जयकार करना चाहिए, मालिक की आज्ञानुसार चलना चाहिए। और क्या?

लडका अपनी माँ के चरणो का स्पर्श कर नौकरी के लिए चल दिया।

किसी जगल में कुछ शिकारी हरिणों की घात लगाये बैठे थे। उन्हे देखकर लडके ने दूर से जय-जयकार किया। शिकारियो का खेल वखेल हो गया।

उन्होने समझाया—मूर्ख! ऐसे समय शोरगुल न मचाकर, चुपचाप दवे पाव आना चाहिए।

आगे चलने पर उसे कपडे धोते हुए धोवी दिखायी दिये। धोवियो के कपडे चोरी चले जाते थे और चोर का पता लगता नहीं था।

लडका धोवियो की ओर चुपचाप दवे पांवो जाने लगा।

उन्होने उसे चोर समझकर पीटा।

धोवियो ने कहा—ऐसे समय दवे पांव न आकर कहना चाहिए कि खार डालने से सफाई आती है।

कुछ दूरी पर किसान खेत में वीज वो रहे थे। उसने वही कहा—खार डालने से सफाई आती है।

उसकी फिर कुटाई हुई।

किसानो ने कहा—ऐसे समय कहना चाहिए कि ऐसे ही और भी हो।

आगे चलने पर उसे शव को ले जाते हुए कुछ लोग दिखाई दिये।

चिल्लाकर वह कहने लगा—अरे, ऐसे और भी हो।

उन लोगो ने कहा—मूर्ख! ऐसे समय कहना चाहिए—ऐसे प्रसग कभी न आये।

कुछ दूरी पर एक वारात मिली।

उसने दुहराया—ऐसे प्रसग कभी न आये।

वारातियो ने समझाया—ऐसे समय कहना चाहिए कि ऐसे प्रसग वहुत-से आये और हमेशा मै यही देखूँ।

आगे चलने पर उसे एक कैदी दिखाई दिया। उसके पैरो में वेडी पडी थी और जेल के सिपाही उसे पकडकर ले जा रहे थे।

उसने कहा—ऐसे प्रसग बहुत-से आये मै हमेशा यही देखूँ।

कैदी ने कहा—ऐसे समय कहना चाहिए कि तुम शीघ्र ही बंधन से मुक्त हो जाओ।

कुछ दूर चलने पर बहुत-से मित्र आते हुए दिखायी दिये।

उसने कहा—आप शीघ्र ही वधन से मुक्त हो जाये।

उसे फिर अपमानित होना पडा।

अव की वार उसने एक ठाकुर के घर नौकरी कर ली।

एक दिन ठकुराइन ने उसे ठाकुर साहव को भोजन के लिए वुलाने भेजा।

ठाकुर साहव कुछ मित्रो के साथ बैठ गपशप कर रहे थे। लडके ने दूर से सन्देशा दिया—चलिए ठाकुर साहव! ठकुराइन भोजन के लिए वुला रही है।

ठाकुर ने घर आकर उसे समझाया —देखो, जब दो आदमी बैठे हो तो ऐसी बात धीरे से आकर कान में कहनी चाहिए।

एक दिन ठाकुर के घर में आग लग गयी। ठाकुराइन ने लडके को जल्दी से ठाकुर को खबर देने को कहा।

लडका ठाकुर के पास पहुँचा और धीरे से कान मे कहा—ठाकुर साहव! चलिए, ठकुराइन वुला रही है। घर में आग लग गयी है।

ठाकुर ने कहा—मूर्ख! ऐसे समय घर छोडकर नहीं जाना चाहिए, वहीं रहकर पानी, गोवर, मट्ठे और दही से जिस तरह भी हो, आग वुझानी चाहिए।

एक दिन सर्दी के मौसम में ठाकुर साहव स्नान करके आ रहे थे। उनके शरीर में से भाप निकल रही थी। लडके ने समझा कि ठाकुर के शरीर में आग लग गयी है। वह पानी, गोवर, मट्ठे, दही और गोमूत्र, जो भी उसके हाथ लगा, उसे ठाकुर के शरीर पर फेकने लगा।[1]

---

[1] आवश्यक निर्युक्ति १३३, मलयगिरिकृत वृहत्कल्पभाष्यवृत्ति, पीठिका, पृ० ५३–५४। आवश्यकचूर्णी, (पृ० ११०–११) और आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति (पृ० ९०) भी देखिये। 'दो हजार वरस पुरानी कहानियाँ' (प्रथम सस्करण) मे 'अक्ल वडी या भैंस' कहानी। इस प्रकार की अन्य कहानियों के लिए देखिए वृहत्कल्पभाष्य ३७२ और वृत्ति, पृ० ११० मे पडित और वैयाकरणी की कहानी, 'दो हजार वरस पुरानी कहानियाँ (प्रथम सस्करण), में 'मूर्ख वडा या विद्वान' कहानी, मूर्ख वैद्यराज की कथा के लिए देखिए, वृहत्कल्पभाष्य ३७६ और वृत्ति, पृ० १११-१२, 'दो हजार वरस पुरानी कहानियाँ' (द्वितीय सस्करण) में 'वैद्यराज या यमराज' कहानी।

मूर्ख शिष्य

किसी नगर में कोई जटाधारी रहता था। वृद्ध होने के कारण वह ऊँचा सुनने लगा था।

एक दिन उसने अपने शिष्य को बुलाकर कहा कि उसे ठीक सुनाई नहीं पड़ता, इसलिए किसी वैद्य के पास जाकर वह बहिरापन दूर करने की औषधि ले आये।

शिष्य वैद्य के घर पहुँचा तो वह बाहर से लौटकर आया था। बाहर जाते समय वह अपने जेठ लडके से उसके छोटे भाई को पढाने के लिए कह गया था। वैद्यजी के पूछने पर जेठ लडके ने जवाब दिया—पिताजी ! मैंने उससे पढ़ने के लिए बहुत कहा, पर वह सुनता ही नहीं।

वैद्यजी को बहुत गुस्सा आया। उन्होने अपने छोटे लड़के को बुलाकर बहुत मारा। वैद्यजी उसे मारते जाते और बीच-बीच में कहते जाते—तू सुनता है कि नहीं ?

शिष्य खडा हुआ यह सब देख रहा था। उसने सोचा कि बहिरापन दूर करने की उत्तम औषधि उसके हाथ लग गई है।

वह भागा-भागा गुरुजी के पास पहुँचा। गुरुजी को हाथ से पकड़कर उसने जमीन पर गिरा दिया और उन्हे थप्पडो और घूसो से मारने लगा। बीच-बीच में वह कहता जाता—अभी भी आप सुनते है या नहीं ?

शिष्य द्वारा गुरु को पिटता हुआ देखकर बहुत-से लोग इकट्ठे हो गये। उन्होने शिष्य से गुरु को मारने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया—बहिरापन दूर करने की यह सर्वोत्तम औषधि है और यह औषधि वैद्यराज ने उसे बतायी है।[1]

मूर्ख पंडित की कहानी

यह कहानी पचतंत्र की है—

किसी नगर में चार ब्राह्मण रहते थे। चारो कन्नौज में विद्याध्ययन कर स्वदेश लौट रहे थे।

कुछ दूर चलने पर दो रास्ते दिखायी दिये। चारो बैठकर सोचने लगे—कौनसे रास्ते से गमन करना ठीक होगा ?

१ मलधारी राजशेखर सूरि, विनोदकथासग्रह कथा २६। ३० वीं कथा में व्यवहार में अकुशल चार विद्वानों की कहानी है। भरटद्वात्रिंशिका में भी इस तरह की कथा आती है।

उस समय नगर के बनिये का लड़का मर गया था। उसका क्रिया-कर्म करने के लिए लोग उसे श्मशान ले जा रहे थे।

पहले पंडित ने पोथी-पुस्तक देखकर कहा—जिस रास्ते से बहुत लोग जाये, उसी रास्ते से जाना चाहिए। (महाजनो येन गत' स पन्था')।[1]

चारो पडित महाजनो के साथ चल पडे।

श्मशान में पहुँचकर उन्हे एक गधा दिखायी दिया।

दूसरे पंडित ने पुस्तक देखकर कहा—उत्सव होने पर, कोई दुख आ पडने पर, अकाल पडने पर, शत्रुजन्य सकट उपस्थित होने पर, राजद्वार पर और श्मशान में जो साथ रहता है, वह बन्धु है (यस्तिष्ठति स बान्धव)[2]

श्मशान में रहने के कारण यह गधा हमारा बन्धु होना चाहिए।

इसपर कोई गधे को गले से लगाने लगा और कोई उसके पाव धोने लगा।

इस समय उन्हे एक ऊँट दिखायी दिया।

तीसरे पंडित ने पुस्तक देखकर कहा—

धर्म की गति त्वरित होती है (धर्मस्य त्वरिता गति.),[3] अत' निश्चय ही यह धर्म होना चाहिये।

चौथे पंडित ने कहा—बिल्कुल ठीक कहा आपने। लेकिन 'इष्ट वस्तु को धर्म के साथ जोड देना चाहिये' (इष्ट धर्मेण योजयेत्)।[4]

यह सुनकर सबने उस गधे को ऊँट के गले से बांध दिया।

धोबी को जब पता लगा तो वह उन्हे मारने दौड़ा। चारो ने भागकर जान बचायी।

आगे चलने पर रास्ते में एक नदी पडी।

नदी में पलास के पत्ते को तैरते देख एक पंडित ने कहा—यह आने वाला पत्ता हमें पार उता देगा।

१ श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयश्च भिन्ना, नैको मुनिर्यस्य वच प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्व निहित गुहाया महाजनो येन गत स पन्था॥

२ उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे शत्रुविग्रहे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धव॥

३ क्षण चित्तं क्षण वित्त क्षण जीवति मानव।
यमस्य करुणा नास्ति धर्मस्य त्वरिता गति॥

४ सत्कुले योजयेत् कन्या पुत्रं विद्यासु योजयेत्।
व्यसने योजयेच्छत्रु इष्ट धर्मेण योजयेत॥

यह कहकर उसने पत्ते का आश्रय लेने की कोशिश की तो वह नदी में गिर पड़ा।

दूसरे पण्डित ने उसके बाल खींचकर उसे बचाने की कोशिश करते हुए कहा -- 'सर्वनाश उपस्थित होने पर पंडित लोग आधी वस्तु को छोड़ देते हैं' (सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डित)[1] अतएव इसे छोड़ देना ही ठीक होगा।

यह सुनकर दूसरे पंडित ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

आगे चलकर किसी गांव में उन्हें भोजन का न्योता मिला।

पहले पडित को भोजन मे घी और खांड की सेवइयाँ मिलीं। उसने सोचा---

'लम्बे सूतवाला नष्ट हो जाता है' (दीर्घसूत्री विनश्यति)।

वह भोजन छोड़कर चल दिया।

दूसरे पडित को माडे मिले। उसने सोचा ---'जो लंबा-चौड़ा और विस्तार वाला होता है, वह बहुत दिन नहीं जीता' (यदतिविस्तारविस्तीर्णं तद् भवेन्न चिरायुषं)।

वह भी भोजन छोड़कर चला गया।

तीसरे पंडित को वाटियाँ मिलीं। उसने सोचा---'छिद्रों मे अनर्थ बहुत होते है' (छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति)।

वह भी बिना भोजन किये चला गया।[2]

तीनो पडित भूखे-प्यासे लौट आये।

४. बुद्धिचमत्कार की कहानियाँ

निम्नलिखित कहानियो मे बुद्धि का चमत्कार लक्षित होता है। इस प्रकार की अनेक लोकजीवन की कथाएँ प्राचीन काल मे प्रचलित थीं।

शिष्यों का संवाद

किसी सिद्धपुत्र के निमित्तशास्त्रवेत्ता दो शिष्य थे। एक बार वे घास-लकड़ी लेने जगल मे गये। वहाँ उन्हे हाथी के पाँव दिखाई दिये।

पहला शिष्य--ये पाँव हथिनी के होने चाहिए।

दूसरा शिष्य-- तुमने कैसे जाना?

१ श्लोक का उत्तरार्ध।
अर्धेण कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुःसह ॥

२ पाचवा तंत्र, कथा ४।

"उसकी लघुशका देखकर। और वह एक आँख से कानी है।"

"कैसे पता लगा ?"

"उसने एक ही तरफ की घास खायी है। और उसपर एक स्त्री और एक पुरुष बैठे हुए थे।"

"कैसे जाना ?"

"उनकी लघुशंका देखकर। और वह स्त्री गर्भवती थी।"

"कैसे ?"

"वह अपने हाथो का सहारा लेकर उठी थी। और उसके पुत्र पैदा होगा।"

"कैसे पता लगा ?"

"उसका दाहिना पाव भारी था। और वह लाल रग के वस्त्र पहिने हुए थी।"

"कैसे जाना ?"

"लाल धागे आसपास के वृक्षो पर लटके हुए थे।"[1]

मंत्रीपद पर नियुक्त करने के पूर्व राजा पुरुषो की परीक्षा लेता और जो परीक्षा में सफल होता, उसे मंत्रीपद दिया जाता। अकबर और बीरबल की कहानियो के ढग की निम्न कहानियो में बुद्धि का चमत्कार मुख्यतया देखने में आता है।

चतुर मंत्री

उज्जयिनी के राजा के चार सौ निन्यानवे मत्री थे, एक की कमी थी। राजा ने सोचा, जो परीक्षा में सफल होगा, उसे वह प्रधान मत्री के पद पर नियुक्त करेगा।

उज्जयिनी के पास नटो का एक गाव था। राजा ने गांववालो के पास एक मेंढा भिजवाया और कहा कि देखना, यह मेंढा पंद्रह दिन बाद भी वजन मे उतना ही रहे, न घटे, न बढे।

उस गांव मे भरत नामक नट का पुत्र रोहक रहता था अपनी प्रत्युत्पन्न मति के लिए वह दूर-दूर तक प्रसिद्ध था।

रोहक से पूछा गया। उसने कहा—इसमें कान बडी बात है ?

उसने मेढे को एक भेडिए के सामने बाध दिया और उसे घास खिलाता रहा। घास खाते रहने से मेढे का वजन घटा नहीं और भेडिए के डर से बढा नहीं।

१ आवश्यक चूर्णि, पृ० ५५३, आवश्यक, हारिभद्रीय वृत्ति, पृ० ४२३। वैनेयिकी बुद्धि का यह उदाहरण है। इस प्रकार की कहानियाँ गुणाढ्य की वृहत्कथा मे रही होंगी। नदिसूत्र (२६) मे चार प्रकार की बुद्धियाँ बताई गई हैं—औत्पातिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी। अभयकुमार की बुद्धि के ये उदाहरण हैं। वैनयिकी मे निमित्त, अर्थशास्त्र, लेखन, गणित, कूप, अश्व, गर्दभ, लक्षण, ग्रथि अगद, गणिका, रथिक शीता शाटिका, तीव्रोदक, और गोछोटक के उदाहरणों के लिये देखिये आवश्यक निर्युक्ति ९३८-३९, उपदेशपद गाथा १०७-१२०, पृ ७२-९१।

एक दिन राजा ने एक मुर्गा भेजा और आदेश दिया कि दूसरे मुर्गों की सहायता के बिना लड़ाकू बनाकर भेजो।

रोहक ने मुर्गे के सामने एक बड़ा दर्पण रख दिया। मुर्गा दर्पण के मुर्गे को देखकर उसके साथ युद्ध करना सीख गया।

एक दिन राजा ने एक बूढा हाथी भेजा और कहा कि इसके समाचार भिजवाते रहना, लेकिन कभी यह न कहना कि हाथी मर गया है।

अगले दिन रोहक से पूछकर गांव वाले राजा के पास पहुँचे। उन्होने निवेदन किया—महाराज! हाथी न कुछ खाता है, न पीता है, न उसकी सांस ही चलती है। राजा ने पूछा—तो क्या वह मर गया है? गांव के लोगो ने उत्तर दिया—यह तो हम नहीं कह सकते।

राजा ने और भी अनेक प्रकार से रोहक की परीक्षा ली। उसकी बुद्धिमत्ता से राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने रोहक को बुलवाया। लेकिन शर्त थी कि वह न शुक्ल पक्ष में आये, न कृष्ण में, न रात मे, न दिन मे, न छाया मे, न धूप में, न आकाश में होकर, न पैदल चलकर, न गाडीघोड़े पर सवार होकर, न सीधे रास्ते, न उल्टे रास्ते, न नहाकर, न बिना नहाये, परन्तु आना उसे अवश्य चाहिये।

राजा का आदेश पाकर, रोहक ने सुबह उठकर आकण्ठ स्नान किया और गाडी के पहियो के बीच एक मेंढा जोत, उसपर सवार हो, चलनी का छाता लगा, एक हाथ में मिट्टी का पिण्ड ले, अमावस्या के दिन, सध्या के समय राजा के दर्शन के लिए चल पडा।

राजा ने प्रसन्न हो रोहक को प्रधानमत्री बना लिया।[1]

१ आवश्यक चूर्णी, पृ० ५४५–४६। औत्पातिकी बुद्धि का यह उदाहरण है। औत्पातिकी में भरतशिला, पणित, वृक्ष, क्षुल्लक बाल, पट, तरट, काक, उच्चार, गज, भाण्ड, गोल, स्तभ, क्षुल्लक शिष्य, मार्गस्त्री, पति, पुत्र, मधुसिक्थ, मुद्रिका, अक, नाणक, भिक्षु, चेटक, शिक्षा, अर्थशास्त्र, इच्छा और शतसहस्र इन २६ उदाहरणों के लिये देखिये आवश्यक निर्युक्ति ९३४–३६, उपदेशपद गाथा ५२–१०६, पृ० ४८–७१। तुलनीय बौद्धों के महाउम्मग्ग जातक से, जहाँ रोहक का काम महोसध नामक मत्री करता है। विदेह के राजा को असाधारण मन्त्रियों की आवश्यकता थी। यहाँ १९ प्रश्नोत्तरों द्वारा महोसध की परीक्षा की गई है। ऋग्वेद में नमुचि और इन्द्र की कथा आती है। नमुचि इन्द्र को निम्नलिखित शर्तों पर मुक्त करने को राजी हुआ था—वह उसकी (नमुचि की) न दिन में हत्या करेगा, न रात मे, न दण्ड से और न आघात से, न तमाचे से और न घूसे से, न किसी गीली वस्तु से और न सूखी से। इन्द्र ने जल के झागों से, प्रात काल मे नमुचि की हत्या करना उचित समझा। देखिए, 'असभव प्रतीत होने वाली परिस्थितियों से कैसे बचा जाये–' नामक 'मोटिफ' सबन्धी एम० ब्लूमफील्ड का जरनल आफ अमेरिकन ओरिएंटल सोसायटी, जिल्द ३६ मे लेख।

समराइच्चकहा के अलावा, सुविख्यात कथाकार हरिभद्रसूरि ने आवश्यक-वृत्ति, दशवैकालिकवृत्ति तथा उपदेशपद में अपनी लाक्षणिक और प्रतीतात्मक शैली में लिखी हुई सरस कथाओ का समावेश कर प्राकृत जैन कथासाहित्य को समृद्ध बनाया है। इन कथाओ मे हास-उपहास और व्यग्य की पर्याप्त मात्रा पायी जाती है। देखिये—

एक क्षुल्लक और बौद्ध भिक्षु

किसी बौद्ध भिक्षु ने एक बार गिरगिट को अपना सिर धुनते हुए देखा।

उस समय वहाँ एक क्षुल्लक उपस्थित हुआ।

बौद्ध भिक्षु—क्षुल्लक ! तुम तो सर्वज्ञ के पुत्र हो ! कह सकते हो यह गिरगिट अपना सिर क्यो धुन रहा है ?

क्षुल्लक—हे शाक्यव्रति ! तुम्हे देख यह चिन्ता से व्याकुल हुआ, ऊपर-नीचे देख रहा है। तुम्हारी दाढी-मूंछ देखकर इसे लगता है कि तुम भिक्षु हो, लेकिन जब यह तुम्हारे चीवर पर दृष्टिपात करता है तो मालूम होता है तुम भिक्षुणी हो।

इसके सिर धुनने का यही कारण है।[1]

कितने कौए !

बौद्ध भिक्षु ने किसी क्षुल्लक से प्रश्न किया—बता सकते हो, इस बेन्यातट पर कितने कौए है ?

क्षुल्लक—साठ हजार।

बौद्ध भिक्षु—तुमने कैसे जाना ? यदि कम-ज्यादा हुए तो ?

क्षुल्लक—यदि कम है तो समझ लीजिए कुछ विदेश चले गये है। यदि अधिक है तो समझ लीजिए कि बाहर से आ गये है।[2]

दिगम्बर साधु और बौद्ध भिक्षु

कोई बौद्ध भिक्षु सध्या के समय थक जाने के कारण दिगम्बर साधुओ की वसति में ठहर गया। दिगम्बर साधुओ के उपासको को यह अच्छा न लगा।

उसे दरवाजे वाली एक कोठरी में ठहरने को कहा गया।

---

१ उपदेशपद, गाथा ८४ टीका, पृ० ६० अ। औत्पातिकी बुद्धि का उदाहरण।

२ वही, गाथा ८५, पृ० ६१। औत्पातिकी बुद्धि का उदाहरण।

जब भिक्षु सोने को गया, तो लोगो ने कोठरी में एक दासी को बन्द कर बाहर से दरवाजा लगा दिया।

भिक्षु समझ गया कि ये लोग उसे बदनाम करना चाहते है।

उसने कोठरी में जलते हुए दीपक में अपना चीवर जला डाला। सयोगवश वहाँ एक रक्खी हुई पीछी भी उसे मिल गयी।

प्रात काल होने पर बौद्ध भिक्षु अपने दाहिने हाथ से दासी को पकड, कोठरी से बाहर निकला।

वह ऊँचे स्वर में दिगम्बर साधुओ की ओर लक्ष्य करके कहने लगा—अरे! जैसा मै हूँ, वैसे ही ये सब है।[1]

५. नीति सम्बन्धी कथाएँ

नीति अर्थात् व्यवहार, बर्ताव, आचरण, मार्गदर्शन अथवा व्यवस्था। नीति-शास्त्र जानकर हम व्यवहारज्ञान यानी दुनियादारी सीखते है और सावधानीपूर्वक आत्मरक्षा मे प्रवृत्त होते है। इससे जीवन का विकास होता है, समाज में व्यवस्था फैलती है और सुख और शान्ति का लाभ होता है। कथाश्रवण से पापो का नाश होना बताया गया है। सामान्य मनुष्य की प्रवृत्ति शास्त्रो में कम होती है, जबकि कथाश्रवण से उसे आनन्द मिलता है और साथ ही उद्बोध और ज्ञान भी पैदा होता है। महान् पुरुषो के उद्बोधन के लिए कहानी सबसे श्रेष्ठ माध्यम है। उदाहरण के लिए, जिन विषयो को मत्रीगण राजा तक स्वय पहुँचाने मे सकोच का अनुभव करते है, उन्हे पशु-पक्षी, लौकिक अथवा अलौकिक कहानियो के बहाने प्रभावशाली ढग से उन तक पहुँचाया जा सकता है। कुटिलजनो के प्रति जब हमारी ऋजुता सफल नहीं होती तब नीति से ही काम लेना पड़ता है। शास्त्रो में

---

1 उपदेशपद, गाथा १००, पृ० ६८अ–६९। औत्पातिकी बुद्धि का उदाहरण। शुक-सप्तति (२६) में भी इसी तरह की कहानी है। यहाँ बौद्ध भिक्षु की जगह श्वेताबर साधु ले लेता है। चद्रपुरी नगरी मे सिद्धसेन नामक क्षपणक रहता था जिसका लोग बहुत आदर करते थे। वहाँ एक श्वेतपट (श्वेताबर साधु) का आगमन हुआ और उसने सब श्रावकों को अपने आधीन कर लिया। क्षपणक को जब यह सहन नहीं हुआ तो उसने श्वेतपट के उपाश्रय मे किसी वेश्या को भेजकर अफवाह उडा दी कि वह साधु वेश्यालोलुपी है। प्रात काल होने पर श्वेतपट, दीपक मे अपने वस्त्रों को जला, वेश्या का हाथ पकडकर, बाहर निकला। उसे देख लोग कहने लगे—अरे! यह तो क्षपणक है! उपदेशपद और शुकसप्तति की कहानी का तुलनात्मक अध्ययन उपयोगी सिद्ध होगा।

'अप्रिय सत्य' कहने का निषेध है लेकिन कहानी का सत्य 'प्रिय सत्य' होने से जल्दी गले उतर सकता है। सस्कृत में तत्राख्यान, पचतंत्र, हितोपदेश आदि नीतिशास्त्र सबन्धी ऐसा भरपूर, कथा-साहित्य है जिसमें कथा के बहाने मनोरञ्जक एव शिक्षाप्रद जीवनोपयोगी बाते कही गयी है।[1]

पंचतंत्र-नीति का शास्त्र

कहते है कि महिलारोप्य नगर मे अमरशक्ति नामक राजा था। उसके तीन पुत्र थे, लकिन थे तीनो वज्रमूर्ख। अपनी सभा के पडितो से राजा ने सलाह-मश्वरा किया। एक पडित बोला—महाराज! १२ वर्ष में व्याकरण पढा जाता है, फिर मनु महाराज का धर्मशास्त्र, फिर चाणक्य का अर्थशास्त्र और उसके बाद वात्स्यायन का कामशास्त्र समझ में आता है। उसके बाद ही ज्ञान की प्राप्ति हुई समझनी चाहिए।

यह सुनकर एक मत्री ने निवेदन किया—महाराज! पडितजी ने ठीक कहा है। यह जीवन बहुत समय तक टिकने वाला नहीं, और शास्त्रो का ज्ञान विशाल है। अतएव राजपुत्रो को विद्वान् बनाने के लिए कोई ऐसा शास्त्र पढाना चाहिए जिससे अल्प काल में ही बोध हो सके।

सकलशास्त्रो का पंडित विष्णुशर्मा राजपुत्रो को पढाने के लिए तैयार हो गया। उसने सिंह गर्जना की कि यदि छह महिने के अंदर वह राजपुत्रो को नीति-शास्त्र का पडित न बना दे तो वह अपना नाम बदल देगा।[2]

इससे पता लगता है कि पंचतत्र की रचना वस्तुत: राजकुमारो के लिए की गयी थी, यद्यपि आगे चलकर बालको के अवबोध के लिए इसका उपयोग किया जाने लगा।[3] पंचतंत्र को नीतिशास्त्र अथवा अर्थशास्त्र भी कहा गया है। समस्तशास्त्रो का यह नीचोड है और नीतिशास्त्र सबधी उसमें अनेक सुंदर आख्यान है। विविध कथा—कहानी तथा सुभाषित और सूक्तियो द्वारा यहाँ राजनीति एव लोकव्यवहार की शिक्षा दी गयी है।

इसकी नीति और व्यवहार ज्ञान सबधी लोकप्रचलित कहाँनियो में विद्या की अपेक्षा बुद्धि तथा बल-पराक्रम की अपेक्षा युक्ति और उपाय को मुख्य बताया है। कहानियो के पात्र प्राय: पशु-पक्षी है जो हमारी और आपकी तरह बोलते, बातचीत करते और सोचते-विचारते है। कहानियो को पढते हुए जल्दी ही उनसे हम

१. कथाच्छलेन बालाना नीतिस्तदिह कथ्यते। हितोपदेश

२ पंचतत्र, कथामुख

३ तत प्रभृत्येतपञ्चतन्त्रकं नाम नीतिशास्त्र बालावबोधनार्थं भूतले प्रवृत्तम्—कथामुख।

आत्मीयता स्थापित कर लेते है । सियार को कपटी, कौए को धूर्त, बगुले को दंभी, बिलाव को पाखडी, उल्लू को भयानक, ऊट को सरल, टिटहरे को घमण्डी और गर्दभ को मूर्ख के रूप मे चित्रित किया गया है ।

रामायण, महाभारत आदि संस्कृत महाकाव्यो अथवा अधिकाश सस्कृत नाटको की भाँति नीति के इन ग्रथो में शक्तिशाली राजाओ, विजेता सेनापतियो, प्रतिष्ठित पुरोहितो, राजमहिषियो, राजकुमारियो और श्रेष्ठियो का नहीं, वल्कि मध्यमवर्ग के व्यापारियो, कृषको, कर्मकरो, स्वार्थी ब्राह्मणो, धूर्तो, कपटी साधुओ, वेश्याओ और कुट्टिनियों आदि सामान्य जनो के वास्तविक जीवन के विविध रूपो का चित्रण देखने में आता है ।

दुर्भाग्य से मूल पंचतंत्र अप्राप्य है, इसके केवल उत्तरकालीन सस्करण ही मिलते हैं ।[1]

पंचतंत्र के विशिष्ट अध्येता डाक्टर हर्टेल के अनुसार, पंचतंत्र के सर्वाधिक लोकप्रिय सस्करण जैन विद्वानो द्वारा तैयार किये गये हैं। इसका Textus simplicior नामक संस्करण किसी अज्ञातनामा जैन विद्वान् द्वारा ९ वीं और ११ वीं शताब्दी के बीच तैयार किया गया। पंचाख्यान या पंचाख्यानक (Textus ornator) नामक दूसरा संस्करण पूर्णभद्रसूरि ने सन् ११९९ में तन्त्राख्यायिक (रचनाकाल ई०पू० २००) और textus simplicior के आधार पर तैयार किया। अपनी रचना के अंत में लेखक ने विष्णुशर्मा का नामोल्लेख करते हुए लिखा है कि सोममंत्री के आदेश से, समस्त शास्त्र पचतन्त्र का आलोकन कर, राजनीति के विवेचनार्थ, प्रत्येक अक्षर, पद, वाक्य, कथा और श्लोक का संशोधन कर इस शास्त्र की रचना

१ विण्टरनित्स के हिस्ट्री आफ इडियन लिटरेचर, जिल्द -, भाग १, पृ० ३०९-१० में निम्नलिखित सस्करणों का उल्लेख है—

(क) तन्त्राख्यायिका (रचनाकाल ई०पू० २००) ।

(ख) पहलवी का अनुवाद (रचनाकाल ५७० ई०) । इस पचतन्त्र का मूल और अनुवाद दोनो ही अप्राप्य हैं । लेकिन पहलवी से सीरियायी और अरवी और अरवी से जो यूरोपीय भाषाओं मे अनुवाद हुए, उनसे मूल सस्कृत और पहलवी अनुवाद का पता लगता है ।

(ग) पचतन्त्र का अश जो गुणाढ्य की वड्डकहा मे अन्तर्भूत था, और अब क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामजरी और सोमदेव की कथासरित्सागर मे उपलब्ध है ।

(घ) दक्षिण भारतीय पचतत्र (रचनाकाल ८ वीं शताब्दी ई० के बाद) । तन्त्राख्यायिक के यह निकट है ।

(ङ) श्लोकों का नेपाली संग्रह । दक्षिण भारतीय सस्करण के यह निकट है । इसकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है ।

की गयी है ।[1] डाक्टर हर्टल के शब्दो में, "पंचतन्त्र के अनेक सस्करणो में बौद्धो का पंचतत्र नहीं मिलता, यह कोई सयोग की बात नहीं है, जबकि पचाख्यान अथवा पचाख्यानक नामक जैन संस्करण ने प्राचीन नीतिशास्त्र को सारे भारतवर्ष में, इण्डोचीन और इण्डोनेशिया तक में, लोकप्रिय बनाया । सस्कृत तथा अन्य विविध देशी भाषाओ मे लिखा हुआ यह पचतत्र इन सब देशो मे इतना अधिक लोकप्रिय हो गया कि जैनो तक ने इस बात को भुला दिया कि मूल में यह जैन विद्वान् का लिखा हुआ था ।[2]

पंचतन्त्र—प्राकृत आख्यानों का विकसित रूप

वसुदेवहिण्डी, बृहत्कल्पभाष्य, व्यवहारभाष्य, आवश्यकचूर्णी, दशवैकालिक-चूर्णी आदि प्राचीन जैन प्राकृत ग्रथो में पचतत्र की शैली पर लिखे हुए नीति और लोकाचार सबधी अनेक आख्यान उपलब्ध है । इनमें से कितने ही आख्यानो का विकसित रूप पचतत्र में मौजूद प्रतीत होता है । सभव है कि ये आख्यान गुणाढ्य की बृहत्कथा में पायी जाने वाली लौकिक कथाओ पर आधारित हो तथा बृहत्-कथामजरी एव कथासरित्सागर के माध्यम से उत्तरकालीन सस्कृत साहित्य मे समाविष्ट कर लिये गये हो । इस सबध में डाक्टर हर्टल का यह कथन ध्यान आकर्षित करता है कि पूर्णभद्रसूरि ने अपने पचतत्र में कतिपय रूप में अज्ञात स्रोतो से

१ हर्टल, द पचतत्र, जिल्द २, पृ० २८९, हारवर्ड यूनिवर्सिटी, १९०८, विण्टरनित्स, द हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, जिल्द ३, भाग १, पृ० ३२१–२४ ।

२ हर्टल, आन द लिटरेचर आफ द श्वेतांबराज ऑफ गुजरात, पृ० ८, लाइप्जिग, १९२२। अन्य जैन पचतन्त्रों मे १६५९-६० ई० मे मेघविजय कृत पचाख्यानोद्धार का उल्लेख किया जा सकता है जो बालकों को नीतिशास्त्र की शिक्षा देने के लिए लिखा गया था । अनेक नूतन कहानियो का इसमें समावेश है । अतिम रत्नपाल की कथा पचतत्र के अन्य किसी सस्करण मे उपलब्ध नहीं है । यह सस्करण १५९१-९२ मे मुनि वच्छराजकृत गुजराती के पंचाख्यानचौपई पर आधारित है । विण्टरनित्स, वही, पृ० ३२५, ३२१ नोट । पचाख्यान वार्तिक (जे हर्टल लाइप्जिग १९२२) कीर्तिविजयगणि के चरण सेवक जिनविजय गणि की रचना है । वि स १७३० मे फलौधी नगरी में यह रचना की गई थी । यह पुरानी गुजराती मे है, श्लोक सस्कृत मे है । १९वीं कथा में बया और बदर की कहानी और ३० वीं कथा मे खरगोश और मदोन्मत्त सिंह की कहानी है । यहाँ सोमदेव के नीतिवाक्यामृत और हेमचन्द्राचार्य के लघ्वर्हन्नीतिशास्त्र नामक नीतिशास्त्र सबधी ग्रन्थों का उल्लेख किया जा सकता है ।

कितनी ही नयी कहानियो एवं सूक्तियो का समावेश किया। इस ग्रन्थ की भाषा-वैज्ञानिक विशेषताओ पर से हर्टल की मान्यता है कि अन्य बातो के साथ-साथ ग्रन्थ कर्ता ने अपनी रचना में प्राकृत रचनाओ अथवा कथाओ का लौकिक भाषा में उपयोग किया है ।[१]

यहाँ प्राकृत जैन कथा ग्रंथो मे पाये जाने वाले पशु-पक्षियो, पुरुषो और स्त्रियो सबधी कतिपय मनोरजक लौकिक आख्यान दिये जाते है जिनकी तुलना पचतंत्र, जातक, शुकसप्तति, वेतालपंचविंशतिका, कथासरित्सागर आदि की कथाओ से की जा सकती है ।

सर्वप्रथम हम पशु-पक्षियो की कहानी लेते है ।

पशु-पक्षियोंकी कहानियाँ

सियार और सिंह

किसी सियार ने मरा हुआ हाथी देखा । वह सोचने लगा—बडे भाग्य से मिला है, निश्चिन्त होकर खाऊँगा ।

इतने मे वहाँ एक सिंह आ पहुँचा। कुशल-क्षेम के पश्चात् सिंह ने पूछा—यह किसने मारा है ?

सियार—व्याघ्र ने महाराज !

सिंह ने सोचा, अपने से छोटो द्वारा मारे हुए शिकार को नहीं खाना चाहिए ।

वह चला गया ।

इतने मे व्याघ्र आ गया । व्याघ्र के पूछने पर गीदड ने कह दिया कि सिंह ने मारा है ।

व्याघ्र पानी पीकर चल दिया ।

थोडी देर बाद एक कौआ आया । गीदड ने सोचा—यदि इसे न दूँगा तो इसकी काँव-काँव सुनकर बहुत-से कौए इकट्ठे हो जायेगे । फिर बहुत से सियार आ जायेगे । किस-किसको रोकूँगा मै ?

सियार ने कौए की तरफ मांस का एक टुकडा फेक दिया । कौआ लेकर उड गया ।

---

१ विण्टरनित्स, वही, पृ० ३२४

उसके बाद एक सियार आ धमका। उसने सोचा—यह बराबरी का है, इसे मार भगाना ही ठीक है।

उसने भृकुटी चढाकर उस सियार के ऐसी जोर की लात जमायी कि वह भागता ही नजर आया।

किसी ने ठीक ही कहा है—

"उत्तम प्रणिपातेन शूर भेदेन योजयेत्।
नीचमल्पप्रदानेन, समतुल्य पराक्रमै ॥"[1]

उत्तम को नम्रता से, शूरो को भेद से, नीच को थोडा-सा देकर और बराबरवालो को पराक्रम से जीते।[2]

खसद्रुम गीदड़

एक बार कोई गीदड रात के समय जगल में से भागकर किसी गाव में आ गया और जब कहीं उसे बाहर जाने का रास्ता न मिला तो एक घर में घुस गया।

गीदड को घर में घुसा हुआ देख लोग उसे मारने दौडे। गीदड, भागता भागता घर के बाहर आया। लेकिन वहाँ कुत्ते उसके पिछे लग गये। वह एक नीलकुण्ड में गिर पडा।

बडी मुश्किल से उस कुण्ड में से बाहर निकला। बाहर निकलते ही वह जंगल की ओर भागा।

१ यह श्लोक महाभारत, (आदिपर्व, सभवपर्व, अध्याय १४० ५०-५१) मे जबुक कथा में निम्न रूप मे मिलता है—
भयेन भेदयेद् भीरू शूरमञ्जलिकर्मणा।
लुब्धमर्थप्रदानेन सम न्यून तथौजसा ॥
डॉ॰ प्रभाकर नारायण कवठेकर, सस्कृत साहित्य में नीतिकथा का उद्गम एव विकास, पृ॰ ३७४।

२ दशवैकालिकचूर्णी, पृ० १०४-'५। पचतत्र (लब्धप्रणाश) में भी यह कथा आती है। सियार सिंह को विनम्र भाव से उत्तर देता है कि उसके लिए वह हाथी की रक्षा में नियुक्त है। व्याघ्र से कहता है--सिह हाथी को मारकर नदी में स्नान करने गया है, तुम जल्दी ही भाग जाओ। उसके बाद चीता आता है। उससे कहता है कि जब तक सिंह लौटकर आये, तू हाथी का मास खाकर तृप्त हो ले। जब चीते के मुँह मारने से हाथी की खाल फट जाती है तो गीदड उसे जल्दी से सिंह के आने की सूचना देता है। चीता भाग जाता है। कौए का नाम यहाँ नहीं है। 'उत्तम प्रणिपातेन' श्लोक यहाँ उद्धृत है।

कुण्ड में गिरने से गीदड का शरीर नीले रंग में रंग गया था।

जगल के जानवर उससे पूछते—तेरा यह रूप-रंग कैसे वदल गया ?

"जंगल के सव प्राणियो ने मिलकर मुझे खसद्रुम नामक राजा नियुक्त किया है। अव तुम सवको मेरी आज्ञा का पालन करना होगा"—गीदड जवाव देता है।

जगल के जानवर उसे राजा समझ, उसका आदर करने लगे।

वे एक हाथी पकड़कर लाये। खसद्रुम उसपर सवारी कर शान के साथ जंगल में घूमने लगा।

एक दिन रात के समय सव गीदड हाउ-हाउ कर रहे थे। खसद्रुम भी उनकी आवाज मे आवाज मिलाकर 'हाउ-हाउ' करने लगा।

हाथी को जव यह मालूम हुआ तो उसने अपनी सूंढ में लपेट उसे मार डाला।[1]

घण्टीवाला गीदड

एक वार किसी किसान के खेत में ईख की अच्छी फसल हुई। खेत में गीदड आने लगे।

किसान ने सोचा कि इस तरह तो ये गीदड सारा ईख खा डालेंगे, अतएव खेत के चारो ओर एक खाई खुदवा देनी चाहिए।

एक दिन एक गीदड खाई में गिर पडा। किसान ने उसे खाई में से निकलवा, उसके कान-पूछ काट, व्याघ्र की खाल उढा, गले में एक घंटी वाँध, उसे छोड दिया।

गीदड जगल में भाग गया। उसके साथी उसे देख भय के मारे भागने लगे।

रास्ते में उन्हे भेडिये मिले। भेडियो के पूछने पर उन्होने कहा—विचित्र शब्द करता हुआ कोई अद्‌भुत प्राणी दौडा आ रहा है, भागो।

भेडिये भी भागने लगे।

आगे चलकर व्याघ्र मिले। वे भी डर के मारे उनके साथ भागने लगे।

कुछ दूरी पर चीते मिले। वे भी इनके साथ हो गये।

मार्ग मे एक सिह वैठा हुआ था। जानवरो को भागते देख उसने उनके भागने का कारण पूछा। उन्होने कहा—कोई अद्‌भुत प्राणी पीछा कर रहा है। वचने का कोई उपाय नहीं।

१, वृहत्कल्पभाष्य और वृत्ति, उद्देश १ ३२५१, व्यवहारभाष्य ३ २७। पचतत्र (मित्रभेद) में गीदड का नाम चडरव है। जगल के जानवरों से वह कहता है कि ब्रह्मा ने उसे जगल का ककुद्रुम राजा वनाया है। हाथी का यहाँ नाम नहीं है।

इस समय घण्टी की अवाज करता हुआ गीदड वहाँ से गुजरा। सिह ने उसके पास जाकर देखा तो पता लगा कि गीदड है। सिह ने दबोच कर उसे मार डाला।[1]

लालची गीदड़

किसी भील ने जंगल में एक हाथी देखा। उसे देखकर वह एक विषम प्रदेश में खडा हो गया।

जव उसने देखा कि उसके वाण के प्रहार से हाथी गिर पडा है, तो वह डोरी चढे हुए धनुष को नीचे रख, हाथ मे फरसा ले, हाथीदांत और उसके गड-स्थल के मोती लेने के लिए हाथी पर प्रहार करने लगा।

लेकिन हाथी के गिरने से दवे हुए महाकाय सर्प से डसे जाने के कारण वह गिर पड़ा।

उधर घूमते-फिरते हुए एक गीदड की नजर मरे हुए हाथी, मनुष्य, सर्प और धनुष पर पहुँची। वह डरकर पीछे हट गया। लेकिन लोलुपता के कारण वहाँ वार-वार आकर झाकने लगा।

थोडी देर वाद उन सवको निर्जीव समझ, निश्शक, और सन्तुष्ट हो वह सोचने लगा—

हाथी को तो मै जीवन-भर खा सकता हूँ, मनुष्य और सर्प से कुछ समय के लिए मेरा काम चल जायेगा, इसलिए पहले मै क्यो न धनुष की डोरी खाकर पेट भरूँ?

यह निश्चय कर जव उसने धनुष की डोरी चवाना शुरू किया तो धनुष की कोटि छिटक कर उसके तालु मे लगी और वह वहीं ढेर हो गया।[2]

---

१ वृहत्कल्पभाष्य ७२१–२३ और वृत्ति, पीठिका, पृ० २२१। देखिए सीहचम्मजातक (१८९), ददभजातक (३२२), और पचतन्त्र की वाचाल रासभ कथा (४ ७)।

२ वसुदेवहिंडी, पृ० १६८–६९। उपदेश के रूप में यहाँ कहा गया है कि जो इन्द्रियजन्य सुख में प्रतिवद्ध होकर परलोकसाधन में निरपेक्ष रहता है, वह गीदड़ की भाँति मरण को प्राप्त होता है। आवश्यकचूर्णी, पृ० १६८–६९। पचतन्त्र (मित्रसप्राप्ति) में यह कहानी आती है। यहाँ जंगली सूअर द्वारा पेट फाड डालने से भील की मृत्यु होती है। सूअर भी भील का वाण लगने से मर जाता है। साँप का नाम यहाँ नहीं है। हितोपदेश, मित्र-लाभ, और कथासरित्सागर भी देखिए, तथा मूल सर्वास्तिवाद का विनयवस्तु, पृ० १२१–२२।

खरगोश और सिंह

किसी जंगल में एक सिंह रहता था। हरिण का मांस उसे बहुत अच्छा लगता था। प्रतिदिन वह हरिण मारकर खाता।

एक दिन जंगल के सब हरिण मिलकर जंगल के राजा के पास पहुँचे। उन्होंने निवेदन किया—महाराज! हम लोग प्रतिदिन जंगल में से एक प्राणी आपके भोजन के लिए भेजेंगे, कृपा कर हमारी रक्षा करें।

सिंह ने स्वीकृति दे दी। उसे अब घर-बैठे शिकार मिलने लगा।

एक बार एक बूढ़े खरगोश की बारी आई। जब खरगोश सिंह के पास पहुँचा तो सूर्योदय हो चुका था।

सिंह ने गरज कर पूछा—रे दुष्ट! इतनी देर कहाँ था?

खरगोश ने डरते-डरते उत्तर दिया—"महाराज! जब आपके पास आ रहा था, रास्ते में मुझे एक दूसरा सिंह मिल गया।
उसने पूछा—कहाँ जा रहे हो?

मैंने कहा—जंगल के राजा के पास।

वह बोला—क्या? जंगल के राजा के पास? मेरे सिवाय जंगल का राजा और कौन है?

मैंने निवेदन किया—महाराज! यदि मैं उसके पास न जाऊँगा तो वह मुझे और मेरे साथियों को मार डालेगा"।

खरगोश की बात सुनकर सिंह आग-बबूला हो गया। वह बोला—बता, वह दुष्ट कहाँ रहता है? मैं उसे अभी मजा चखाता हूँ।

वह खरगोश के साथ चल दिया। कुछ दूर चलने पर खरगोश ने एक कुएँ की ओर इशारा किया—महाराज! वह यहीं रहता है। देखिए, आप कुएँ पर बैठकर गर्जना कीजिए। आपकी गर्जना का उत्तर वह प्रतिगर्जना से देगा।

सिंह को निश्चय हो गया कि अवश्य ही वह डर के मारे कुएँ में उतर गया है।

सिंह अपने प्रतिद्वंदी को मज़ा चखाने के लिए कुएँ में कूद पडा ।[1]

वन्दर और बया

किसी वया ने एक वृक्ष पर सुन्दर घोसला वनाया ।

एक वार की वात है, वर्षा ऋतु में ठडी हवा चलने लगी और मूसलाधार पानी वरसने लगा । इस समय वहाँ वर्षा से वचने के लिए ठण्ड से काँपता हुआ एक वन्दर आया ।

अपने घोसले मे वैठी हुई वया कहने लगी—ऐ वन्दर ! तू जरा मेर घोसले को देख । कितने परिश्रम से मैने इसे वनाकर तैयार किया है । कितने सुख से मै यहाँ रहती हूँ । न मुझे वर्षा का डर है और न हवा का । रे मूर्ख ! मुझे तुझपर दया आती है कि तेरे हाथ पाँव होते हुए भी, आलस्य के कारण तू कुछ नहीं कर सकता । वर्षा की तीक्ष्ण वौछारे सहने के लिए तू तैयार है और ठण्डी हवा के थपेडे सहना तुझे मजूर है, लेकिन थोडी-सी मेहनत से अपना घर तू नहीं वना सकता !

पहले तो वन्दर वया की वाते चुपचाप सुनता रहा । लेकिन वया जव अपनी वात को वार-वार कहती गयी तो वह कूदकर वृक्ष की डाल पर पहुँचा । उसने वृक्ष की उस डाल को जोर से हिलाया जिस पर वया का घोसला लटका हुआ था ।

क्षणभर में वया अपने घोसले में से जमीन पर आ गिरी । घोसले को तोड-कर उसने हवा में उडा दिया । वया से वह कहने लगा—प्यारी वया ! अव तू मेरे

१ व्यवहारभाष्य ३ २९–३० और वृत्ति पृ० ७ अ । तुलनीय हितोपदेश (मित्रभेद), शुक-सप्तति (३१) के साथ । निग्रोधजातक तथा कथासरित्सागर भी देखिए । मलाया के जंगलवासियों में इस प्रकार की कथा प्रचलित है । डब्ल्यू० स्कीट, फेवल्स एण्ड फोक-टेल्स, कैम्ब्रिज, १९०१, कहानी न० १२, पृ० २८, डाक्टर प्रभाकर नारायण कवठेकर, सस्कृत साहित्य में नीतिकथा का उद्गम एव विकास, पृ० ३३९ फुटनोट । यह कहानी अफ्रीका की हब्शी जाति की लोक कथाओं मे भी पाई जाती है । सिंह खरगोश का पीछा करता है । खरगोश रास्ते में एक चट्टान के नीचे खड़ा होकर चिल्लाने लगता है—"सिंह ! मेरे दादाजी ! यह देखिए, यह चट्टान हम लोगों पर गिरी जा रही है । कृपया इसे सभा-लिए" । सिंह चट्टान को सभाल्ने खड़ा हो जाता है और खरगोश भाग जाता है । इसे चट्टान 'मोटिफ' कहा गया है । स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोकलोर, माइथोलोजी एण्ड लीजेण्ड, जिल्द२, मारिया लीच, न्यूयार्क, १९५०

वह हाथ हंडी में लगा। हंडी फूट गयी और सारा दूध विखर गया।[1]

एक व्यापारी

कोई वणिक् माल की बहुत-सी गाड़ियाँ भरकर सार्थ के साथ व्यापार के लिए चला। एक खच्चर पर उसने उपयोगी समझकर कुछ पण (एक छोटा सिक्का) लाद लिये थे। ऊबड-खाबड मार्ग पर चलने के कारण खच्चर की झूल फट गयी और पण जमीन पर बिखर गये। यह देखकर वणिक् ने माल की गाडियाँ रोक दीं और लोगो को पणो को चुगने के लिए कहा।

वहाँ से कुछ मार्गदर्शक जा रहे थे। उन्होने कहा—आप लोग कौडी के लिए करोडो का क्यों नुकसान कर रहे है? गाडियो को आगे जाने दे। क्या आप को चोरो का डर नहीं है?

वणिक् ने उत्तर दिया भविष्य की कौन जाने? जो मौजूद है, उसे तो पहले ले लें।

व्यापारी आगे वढ गये। वणिक् पीछे रह गया। उसका माल चोरो ने लूट लिया।[2]

१ व्यवहारभाष्य और वृत्ति, उद्देश ३ २९ पृ० ८अ। पचतंत्र (अपरीक्षित कारक) में मन के लड्डू खाने वाले सोमशर्मा के पिता की कहानी आती है। सत्तू के घड़े को देखकर वह सोचता है—अकाल पडने पर सत्तू का यह घडा सौ रुपये में विकेगा। उससे वकरिया आयेगी, फिर गायें, भैसे, घोड़ियाँ और घोडे हो जायेगे। घोडे वेचकर सोना, सोने से चौमजला मकान वनेगा। फिर विवाह होगा। पुत्र का जन्म होगा। पुस्तक पढने में वह वाधा डालेगा। पुत्र के पढने में वाधा डालने के कारण वह अपनी ब्राह्मणी को मारने के लिए लात उठाता है और सत्तू का घड़ा फूट जाता है। तथा देखिए भवदेवसूरि कृत पार्श्वनाथचरित (२ १०२५-२६) विनोदात्मककथा सग्रह कथा ३३, धम्मपद-अट्ठकथा, पृ० ३०२, हितोपदेश (४ ८)। यह कथा विश्व कथा साहित्य में पाई जाती है।

२ वसुदेवहिंडी, पृ० १५। यहाँ वणिक् की तुलना विषयसुख के लोभ के वशीभूत, मोक्षसुख के साधनों की उपेक्षा कर ससार में रचे-पचे मनुष्य से की गयी है। ऐसा मनुष्य पश्चात्ताप का भागी होता है। आवश्यकचूर्णी पृ० ३७२ में भी यह कहानी आती है। धनदेव वणिक् पाच सौ गाड़ियाँ माल भरकर चलता है। रास्ते में वेग-वती नदी पार करते समय एक वैल थककर वहीं गिर पडता है। धनदेव उसके सामने घास-चारा और पानी रखकर आगे वढ जाता है। पचतत्र (मित्रभेद) मे वणिकपुत्र वर्धमानक सजीवक और नन्दक नामक दो वैलो को रथ मे जोड, व्यापार के लिए मथुरा रवाना होता है। सजीवक यमुना नदी पार करते हुए दलदल मे फस जाता है। वर्धमानक तीन रात उसके पास वेठा रहता है। तत्पश्चात् वहाँ से जाने वाले व्यापारियों के कहने पर संजीवक के लिए रखवाले नियुक्त कर आगे वढता है। कालान्तर मे सजीवक की पिंगलक सिंह से मित्रता हो जाती है।

सोचा था कुछ, हुआ कुछ !

वसुभूति नाम का एक दरिद्र ब्राह्मण अध्यापन का काम करता था। उसकी भार्या का नाम था यज्ञदत्ता। उसके सोमशर्म नाम का पुत्र और सोमशर्मा नाम की पुत्री थी। उसकी गाय थी रोहिणी।

किसी धर्मात्मा ने उसे खेती करने के लिए थोडी-सी जमीन दे दी। इस जमीन मे उसने शालि बो दिये।

एक दिन उसने अपने पुत्र से कहा—बेटा! मै शहर जा रहा हूँ। चन्द्र-ग्रहण लगने वाला है। साहूकारो से दान-दक्षिणा माँग कर लाऊँगा। मेरे पीछे तू खेत की रखवाली करना। खेत में जो शालि पैदा होगे और मै जो कुछ रुपया-पैसा माँगकर लाऊँगा, उससे तेरी और तेरी बहन की शादी कर देगे। तबतक रोहिणी भी बिया जायेगी।

यह कहकर ब्राह्मण चला गया।

एक दिन गाव में कोई नट आया। सोमशर्म नटी के ससर्ग से नट बन गया। सोमशर्मा को किसी धूर्त से गर्भ रह गया। रोहिणी का गर्भ गिर गया। खेती की देखभाल न होने से शालि सूख गये।

उधर ब्राह्मण को भी कुछ प्राप्ति न हुई। वह खाली हाथ घर लौटा। ब्राह्मणी दीन-हीन दशा में बैठी दिखायी पडी।

ब्राह्मणी ने उठकर उसका स्वागत किया।

ब्राह्मण ने पूछा—यह सब क्या?

ब्राह्मणी ने उत्तर दिया—हमारा भाग्य ही ऐसा है। सोचा कुछ था और हुआ कुछ![1]

पारखी इभ्यपुत्र

किसी नगर में एक रूपवती गणिका रहती थी। उसके पास अनेक धनाढ्य राजपुत्र, मन्त्रीपुत्र और इभ्यपुत्र आते और धन-सम्पति लुटाकर लौट जाते। उन्हे विदा देते समय गणिका कहती—यदि आप मुझे छोडकर जा ही रहे है तो कम-से-कम मुझ निर्गुनिया की याद के लिए कुछ तो लेते जायें।

१ सालीरक्तो तणो जातो, रोहिणी न वियाइया
सोमसम्मो नडो जाओ, सोमसम्मा वि गब्भिणी ॥

वसुदेवहिंडी, पृ० ३१

समान निर्लज्ज हो गयी है। वर्षा मे भीगती हुई और ठण्ड से काँपती हुई तू कितनी अच्छी लगती है![1]

कौए और मरा हुआ हाथी

कोई बूढा हाथी ग्रीष्मकाल में पहाडी नदी पार करते समय नदी के किनारे गिर पडा। कोशिश करने पर भी वह उठ नहीं सका और वहीं उसकी मृत्यु हो गयी।

भेडिए और गीदडो ने उसके गुदाभाग को खा लिया। उसके गुदाभाग से होकर कौए अन्दर घुस गये। अंदर बैठे-बैठे वे उसका मास खाने लगे।[2]

कुछ समय वाद गर्मी के कारण कौओ का प्रवेश मार्ग सकुचित हो गया।

कौओ ने सोचा—अब हम विना किसी विघ्न-बाधा के यहाँ आराम से रह सकेंगे।

वर्षाकाल आरंभ होने पर पहाडी नदी के प्रवाह में वह हाथी वह गया और वहते-वहते उसकी लाश समुद्र में पहुँच गयी। मगर-मच्छो ने उसे खा डाला।

लाश के अन्दर जल भर जाने से कौए बाहर निकल आये, लेकिन पास में कोई आश्रय न पा उनकी वहीं मृत्यु हो गयी।[3]

१ वृहत्कल्पभाष्य और वृत्ति, उद्देश १ ३२५२। यहाँ बन्दर के दृष्टान्त द्वारा लब्धि प्राप्त होने से गर्वोन्मत्त किसी साधु को शिक्षा दी गयी है। आवश्यक निर्युक्ति ६८१ में वानर का दृष्टान्त आता है। आवश्यकचूर्णी (पृ० ३४५) मे इस कहानी का गाथाओं में वर्णन है। तथा देखिए आवश्यक, हारिभद्रीय वृत्ति, पृ० २६२। पचतत्र (मित्रभेद), और कूटिदूसक जातक (३२१) में यह कहानी आती है।

२ इस 'मोटिफ' की तुलना एक कोटा लोककथा के 'मोटिफ' से की जा सकती है। कोई लड़का ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिए जगल में जाता है। तीन दिन तक वहाँ वैठा रहता है। चौथे दिन उसकी मृत्यु हो जाती है। उसका शरीर फूल जाता है। एक वडा चूहा जमीन की मिट्टी खोदकर उसके सारे शरीर पर एक विल वना लेता है। देखिए, एम वी० एमेनियन (M B Fmenean) का जरनल आफ अमेरिकन ओर्रि-टिएल सोसाइटी (६७) में स्टडीज इन द फोकटेल्स आफ इडिया, लेख।

३ वसुदेवहिंडी, पृ० १६८। यहाँ कौओं को ससारी जीव, हस्ति के शरीर मे उनके प्रवेश को मनुष्ययोनि का लाभ, अदर रहते हुए मास-भक्षण को विषयों की प्राप्ति, मार्ग-निरोध को भवप्रतिवध, जलप्रवाह के कारण शरीर वियोग को मरणकाल तथा कौओं के वाहर निकल आने को परभवसक्रमण कहा गया है। हेमचन्द्र के परिशिष्टपर्व (२ ५ ३८०–४०५) में भी यह कथा आती है। तुलनीय लोहजघ ब्राह्मण की कथा से। गीदड़ों द्वारा भीतर से खाई हुई हाथी की खाल में पैरो की तरफ से उसने प्रवेश किया। वर्षा के कारण हाथी की यह लाश वहती हुई समुद्र मे पहुँच गई, साथ में लोहजंघ भी। कथासरित्सागर, ४. २. ११८–२४

अन्य कहानियाँ

पर्वत और मेघ

एक बार पर्वत और मेघ में वाक्‌युद्ध ठन गया।

मेघ—मै तुझे अपनी एक जरासी धार मे बहा सकता हूँ, तू समझता क्या है?

पर्वत—यदि तू मुझे तिलभर भी हिला दे तो मेरा नाम पर्वत नहीं।

यह सुनकर मेघ को बहुत क्रोध आया। वह लगातार सात दिन और सात रात मूसलाधार जल की वृष्टि करता रहा।

उसने सोचा—अब देखता हूँ पर्वत कहाँ जायेगा? अब तो उसके होश-हवाश ठिकाने आ जायेगे।

लेकिन सुबह उठकर देखा तो पर्वत और उज्ज्वल होकर चमक रहा था।[1]

शेखचिल्ली

एक बार किसी भिखारी को बहुत भूख लगी। वह एक गोशाला में गया जहाँ ग्वालो ने उसे सकोरा भरकर दूध पिलाया।

दो-चार दिन बाद वह फिर गोशाला में पहुँचा। अब की बार ग्वालो ने उसे हंडी भरकर दूध दिया।

भिखारी हडी को सिरहाने रखकर लेट गया।

वह सोचने लगा—इस दूध का दही जमाऊँगा। दही बेचकर मुर्गी खरीदूँगा। मुर्गी अण्डे देगी। अण्डे बेचकर बकरी मोल लूँगा। बकरी बेचकर गाय खरीदूँगा। गाय से बहुत से बैल हो जायेंगे। बैल बेचकर बहुत-सा धन कमा लूँगा। धन को व्याज पर चढा दूँगा और सेठ बन जाऊँगा। मेरा विवाह हो जायेगा। छमछम करती घरवाली आयेगी। यदि वह कभी अपमान करेगी तो मार-पीटकर उसकी अक्ल ठिकाने लगा दूँगा।

खाट पर लेटे-लेटे भिखारी ने जो 'घरवाली' को मारने के लिए हाथ उठाया,

1 बृहत्कल्पभाष्य ३३४ और वृत्ति (आवश्यक निर्युक्ति १३९, तथा आवश्यकचूर्णी, पृ० १२१, आवश्यक हारिभद्रीयवृत्ति (पृ० १००) भी देखिये। यहाँ शैल को ऐसा शिष्य बताया है जो गर्जन-तर्जन करते हुए आचार्य के समीप शास्त्र का एक पद भी नहीं सीखना चाहता। आचार्य लज्जित होकर बैठ जाता है। आवश्यक निर्युक्ति १३९ मे शिष्यों को शैल, कुट, छल्नी, परिपूणक (घी–दूध छानने का छन्ना), हस, महिष, मेष, मशक, जोख, बिलाड़ो, सेही मेरी और आभीरी के समान बताया है। देखिये जगदीशचन्द्र जैन, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ० २८८–९१

वह हाथ हंडी में लगा। हंडी फूट गयी और सारा दूध बिखर गया![1]

एक व्यापारी

कोई वणिक् माल की बहुत-सी गाडियाँ भरकर सार्थ के साथ व्यापार के लिए चला। एक खच्चर पर उसने उपयोगी समझकर कुछ पण (एक छोटा सिक्का) लाद लिये थे। ऊबड-खाबड़ मार्ग पर चलने के कारण खच्चर की झल फट गयी और पण जमीन पर बिखर गये। यह देखकर वणिक् ने माल की गाडियाँ रोक दीं और लोगो को पणो को चुगने के लिए कहा।

वहाँ से कुछ मार्गदर्शक जा रहे थे। उन्होने कहा—आप लोग कौड़ी के लिए करोडो का क्यो नुकसान कर रहे है? गाडियो को आगे जाने दे। क्या आप को चोरो का डर नहीं है?

वणिक् ने उत्तर दिया भविष्य की कौन जाने? जो मौजूद है, उसे तो पहले ले लें।

व्यापारी आगे बढ गये। वणिक् पीछे रह गया। उसका माल चोरो ने लूट लिया।[2]

१ व्यवहारभाष्य और वृत्ति, उद्देश ३ २९ पृ० ८७। पचतंत्र (अपरीक्षित कारक) में मन के लड्डू खाने वाले सोमशर्मा के पिता की कहानी आती है। सत्तू के घड़े को देखकर वह सोचता है—अकाल पडने पर सत्तू का यह घडा सौ रुपये मे बिकेगा। उससे बकरिया आयेगी, फिर गाये, भैसे, घोड़ियाँ और घोडे हो जायेगे। घोडे बेचकर सोना, सोने से चौमजला मकान बनेगा। फिर विवाह होगा। पुत्र का जन्म होगा। पुस्तक पढने में वह बाधा डालेगा। पुत्र के पढने में बाधा डालने के कारण वह अपनी ब्राह्मणी को मारने के लिए लात उठाता है और सत्तू का घडा फूट जाता है। तथा देखिए भवदेवसूरि कृत पार्श्वनाथचरित (२ १०२५-२६) विनोदात्मककथा सग्रह कथा ३३, धम्मपद-अट्ठकथा, पृ० ३०२, हितोपदेश (४ ८)। यह कथा विश्व कथा साहित्य में पाई जाती है।

२ वसुदेवहिंडी, पृ० १५। यहाँ वणिक् की तुलना विषयसुख के लोभ के वशीभूत, मोक्षसुख के साधनों की उपेक्षा कर ससार में रचे-पचे मनुष्य से की गयी है। ऐसा मनुष्य पश्चात्ताप का भागी होता है। आवश्यकचूर्णी पृ० ३७२ में भी यह कहानी आती है। धनदेव वणिक् पाच सौ गाड़ियाँ माल भरकर चलता है। रास्ते में वेगवती नदी पार करते समय एक बैल थककर वहीं गिर पडता है। धनदेव उसके सामने घास-चारा और पानी रखकर आगे बढ जाता है। पचतत्र (मित्रभेद) मे वणिक्पुत्र वर्धमानक सजीवक और नन्दक नामक दो बैलों को रथ मे जोड़, व्यापार के लिए मथुरा रवाना होता है। सजीवक यमुना नदी पार करते हुए दलदल में फंस जाता है। वर्धमानक तीन रात उसके पास बैठा रहता है। तत्पश्चात् वहाँ से जाने वाले व्यापारियों के कहने पर सजीवक के लिए रखवाले नियुक्त कर आगे बढता है। कालान्तर मे सजीवक की पिंगलक सिंह से मित्रता हो जाती है।

सोचा था कुछ, हुआ कुछ !

वसुभूति नाम का एक दरिद्र ब्राह्मण अध्यापन का काम करता था। उसकी भार्या का नाम था यज्ञदत्ता। उसके सोमशर्म नाम का पुत्र और सोमशर्मा नाम की पुत्री थी। उसकी गाय थी रोहिणी।

किसी धर्मात्मा ने उसे खेती करने के लिए थोडी-सी जमीन दे दी। इस जमीन मे उसने शालि बो दिये।

एक दिन उसने अपने पुत्र से कहा—बेटा ! मै शहर जा रहा हूँ। चन्द्र-ग्रहण लगने वाला है। साहूकारो से दान-दक्षिणा माँग कर लाऊँगा। मेरे पीछे तू खेत की रखवाली करना। खेत मे जो शालि पैदा होगे और मै जो कुछ रुपया-पैसा माँगकर लाऊँगा, उससे तेरी और तेरी बहन की शादी कर देगे। तबतक रोहिणी भी विया जायेगी।

यह कहकर ब्राह्मण चला गया।

एक दिन गाव में कोई नट आया। सोमशर्म नटी के ससर्ग से नट बन गया। सोमशर्मा को किसी धूर्त से गर्भ रह गया। रोहिणी का गर्भ गिर गया। खेती की देखभाल न होने से शालि सूख गये।

उधर ब्राह्मण को भी कुछ प्राप्ति न हुई। वह खाली हाथ घर लौटा। ब्राह्मणी दीन-हीन दशा में बैठी दिखायी पडी।

ब्राह्मणी ने उठकर उसका स्वागत किया।

ब्राह्मण ने पूछा—यह सब क्या ?

ब्राह्मणी ने उत्तर दिया—हमारा भाग्य ही ऐसा है। सोचा कुछ था और हुआ कुछ ![1]

पारखी इभ्यपुत्र

किसी नगर में एक रूपवती गणिका रहती थी। उसके पास अनेक धनाढ्य राजपुत्र, मन्त्रीपुत्र और इभ्यपुत्र आते और धन-सम्पति लुटाकर लौट जाते। उन्हें विदा देते समय गणिका कहती—यदि आप मुझे छोडकर जा ही रहे है तो कम-से-कम मुझ निर्गुनिया की याद के लिए कुछ तो लेते जाये।

१ सालीरुत्तो तणो जातो, रोहिणी न वियाइया
सोमसम्मो नडो जाओ, सोमसम्मा वि गब्भिणी ॥

वसुदेवहिंडी, पृ० ३१

गणिका के अनुरोध पर कोई उसका पहना हुआ हार, कोई अर्धहार, कोई कडा, और कोई बाजूबद लेकर जाता ।

एक बार कोई इभ्यपुत्र गणिका को छोडकर जाने लगा । गणिका ने उससे भी कुछ लेने को कहा ।

इभ्यपुत्र रत्नो का पारखी था । उसकी नजर गणिका के पंचरत्नो से जटित वहुमूल्य सोने के पादपीठ की ओर गयी ।

उसने कहा— यदि कुछ लेना ही है तो अपने पादस्पर्श से मनोहर इस पादपीठ को मुझे दे दो । इसे देखकर मै तुम्हारी याद कर लिया करूँगा ।

गणिका——इस जरा-सी चीज को लेकर क्या करोगे ? कोई कीमती चीज माँगो ।

लेकिन इभ्यपुत्र ने पादपीठ ही लेने की इच्छा बतायी ।

इभ्यपुत्र पादपीठ लेकर चला गया और उसने रत्नविनियोग द्वारा वहुत-सा धन कमाया ।[१]

एक लड़की के तीन वर ?

किसी लडकी के तीन स्थानो से मंगनी आई । एक जगह की मगनी उसकी माता ने, दूसरी जगह की उसके भाई ने और तीसरी जगह की मंगनी उसके पिता ने ली ।

विवाह की तिथि निश्चित हो गयी । तीनो स्थानो से वारात आ पहुँची । दुर्भाग्यवश जिस रात को भाँवर पडने वाली थी, उस रात को लड़की को साँप ने काट लिया । वह मर गयी ।

लडकी के तीनों वरो में से एक तो उसी के साथ चिता में जल गया । दूसरे ने अनशन आरंभ कर दिया । तीसरे ने देवाराधना से सजीवन मन्त्र प्राप्त किया । इस मन्त्र से उसने उस लडकी और उसके वर को पुनः उज्जीवित कर दिया ।

अव तीनो वर उपस्थित होकर लड़की माँगने लगे । बताइए, तीनो में से किसे दी जाये ?

१ वही, पृ० ४ । यहाँ गणिका की तुलना धर्मश्रवण, राजपुत्र, आदि की देवमनुष्य सुखभोगी प्राणियों, हार आदि आभरणों की देशविरति सहित तपोपधान, इभ्यपुत्र की मोक्ष के इच्छुक, परीक्षाकौशल की सम्यग्ज्ञान, रत्नजटित पादपीठ की सम्यग्दर्शन, रत्नों की महाव्रत और रत्नविनियोग की निर्वाण सुख से की गयी है ।

जिस वर ने लडकी को जिलाया, वह उसका पिता हुआ और जो उसके साथ जीवित हुआ, वह भाई कहलाया। अतएव लडकी का हकदार वही समझा जायेगा जो अनशन कर रहा था। उसी को लडकी मिलनी चाहिए[१]।

पति की परीक्षा

किसी ब्राह्मणी के तीन कन्याएँ थीं। उसके मन में विचार आता कि विवाह के पश्चात् वे कैसे सुखी बनेगी।

उसने उन्हे सिखा दिया कि विवाह के पश्चात् प्रथम दर्शन में तुम लोग पादप्रहार से पति का स्वागत करना।

ब्राह्मणी की जेठी कन्या ने अपनी माँ का आदेश पालन किया।

१ आवश्यकचूर्णी २ पृ० ५८। वेतालपचविंशतिका की पाँचवीं कहानी मे हरिवश मत्री की कन्या प्रण करती है कि वह किसी ऐसे पुरुष से विवाह करेगी जो वीरता, विद्या अथवा मन्त्र-तन्त्र में सबसे बढकर होगा। कन्या का पिता वर की तलाश के लिए प्रस्थान करता है। वह एक ब्राह्मण की खोज करता है जो मन्त्रविद्या मे अत्यन्त कुशल है। कन्या का भाई एक विद्वान् ब्राह्मण को अपनी बहन के विवाह के लिए वचन देता है। कन्या की माता अपनी बेटी के लिए वाण चलाने में कुशल एक योद्धा को पसद करती है।

विवाह की तिथि निश्चित की जाती है। उसी दिन एक राक्षस कन्या का अपहरण कर लेता है।

विद्वान् ब्राह्मण उस स्थान का पता लगाता है जहाँ कन्या रहती है। मान्त्रिक वहाँ अपना हवाई-जहाज लेकर पहुँचता है। योद्धा राक्षस को मारकर कन्या को वापिस लाता है।

वेताल प्रश्न करता है कि तीनों मे से कन्या किसे दी जानी चाहिए?

राजा उत्तर देता है कि योद्धा कन्या का हकदार है, वही कन्या को राक्षस से छुड़ा लाया है।

बेन्फे आदि विद्वानों ने इस कहानी को विश्व साहित्य की कहानी में गर्भित किया है। विंटरनित्स, द हिस्ट्री आफ इडियन लिटरेचर, जिल्द ३, भाग १, पृ० ३६९ नोट। अरेबियन नाइट्स की शहजादे के ढग की यह कहानी है।

जान हर्टेल ने वेतालपचविंशतिका और पचतन्त्र के जैन सस्करण मे पाई जाने वाली सूक्तियों की अनुक्रमणिका प्रकाशित की है, वी०एम० जी०डब्ल्यू० (१९०२ पृ० १२३) नामक जर्मन पत्रिका मे, विण्टरनित्स, द हिस्ट्री आफ इडियन लिटरेचर, जिल्द ३, भाग, १, पृ० ३६८ फुटनोट। सिंहासनद्वात्रिंशिका और भरटकद्वात्रिंशिका को जैन विद्वानों की रचनाएँ बताया गया है। विंटरनित्स, जैनाज इन इडियन लिटरेचर नामक लेख, इडियन कल्चर, जुलाई १९३४–अप्रैल १९३५, पृ० १५०।

लात खाकर उसका पति अपनी प्रिया के पैर दवाते हुए कहने लगा—प्रिये ! तुम्हारे पैर में कहीं चोट तो नहीं लग गयी !

कन्या ने अपनी माँ से यह वात कही। माँ ने उत्तर दिया—वेटी ! तू निश्चिंत रह, तेरा पति तेरा गुलाम वनकर रहेगा।

मंझली कन्या ने भी ऐसा ही किया। उसके पति ने लात खाकर पहले तो अपनी पत्नी को बुरा-भला कहा, लेकिन शीघ्र ही शान्त हो गया।

माँ ने कहा—वेटी ! तू भी आराम से रहेगी, चिन्ता मत कर।

अव सवसे छोटी कन्या की वारी आई। पति ने लात खाकर उसे पीटना शुरू किया, और वह उसके कुल को अपशब्द कहने लगा।

माँ ने कहा—वेटी तुझे ! सव से श्रेष्ठ पति मिला है। तू उसकी आज्ञा में सदा रहना और उसका साथ कभी न छोडना।[1]

नाइन पंडिता

कोई नाइन खेत में भोजन लिये जा रही थी। रास्ते मे चोरो ने उसे पकड़ लिया।

वह वोली—चलो, अच्छा ही हुआ, मुझे भी आप लोगो की तलाश थी।

लेकिन इस समय तो आप मुझे जाने दे। रात को मेरे घर आइए, आपके साथ रुपये लेकर चलूंगी।

रात के समय जव चोर उसके घर में धुसे तो नाइन ने उनकी नाक काट ली। चोर डरकर भाग गये।

अगले दिन चोरो ने फिर उसे खेत में जाते हुए देखा। चोरो ने नाइन को पकड लिया।

उन्हे देखते ही वह अपना सिर पीटने लगी और वोली—अरे ! यह किसने काट ली ?

नाइन उनके साथ चल दी।

आगे चलकर चोरो ने उसे एक कलाल के घर वेच दिया। रुपये लेकर वे चम्पत हुए।

नाइन वहाँ से आकर रात मे एक वृक्ष पर छिपकर वैठ गयी।

चोर भी सयोगवश उसी वृक्ष के नीचे आकर ठहरे। मांस पकाकर वे खाने लगे।

---

१. वृहत्कल्प भाष्य २६२ और वृत्ति, आवश्यकचूर्णी, पृ० ८१ अप्रशस्त भावोपक्रम का यह दृष्टान्त है। आवश्यक, हारिभद्रीय टीका, पृ० ५५।

उनमें से एक चोर मांस लेकर वृक्ष पर चढा। उसने चारो तरफ देखा तो एक औरत को बैठे हुए पाया।

औरत ने उसे रुपये निकालकर दिखलाये। रुपयो के लालच से चोर ज्योही उसके पास पहुँचा, औरत ने जोर से अपने दांतो से उसे काट लिया।

चोर डरकर भागा। वह कहने लगा—अरे! यह तो वही है!

नाइन चोरो की चोरी का सब माल लेकर चपत हुई।[1]

नूपुरपंडिता

कोई सेठानी अपने पति के रहते हुए भी किसी अन्य पुरुष से प्रेम करने लगी थी।

स्त्री के श्वसुर ने अपने वेटे से यह बात कही, लेकिन उसे विश्वास न हुआ।

१ आवश्यकचूर्णी, पृ० ५२३। कथासरित्सागर (२, ५, ९२–१११) मे सिद्धि सेविका का रूप धारण कर उत्तरापथ से आये हुए एक वणिक्पुत्रक के यहाँ रहने लगी। एक दिन वह उसका सारा सोना लेकर चलती वनी। रास्ते मे एक डोम मिला। सिद्धि का धन छीनने के लिए डोम ने उसका पीछा किया।
सिद्धि ने एक पीपल के पेड़ के नीचे पहुँचकर वड़ी दीनतापूर्वक उससे निवेदन किया—आज मै अपने पति से कलह करके घर से भाग आई हूँ। मै मरना चाहती हूँ, तुम मेरे लिए फासी का फदा वाध दो।

डोम ने वृक्ष से फदा वाधकर लटका दिया।

सिद्धिकरी ने डोम से कहा—इस फदे में गला कैसे फसाया जाता है? जरा गला फंसाकर तो दिखाओ।

डोम ने पैरों के नीचे ढोलक रखकर अपने गले को फदे मे डालकर दिखा दिया।

लेकिन सिद्धिकरी ने झट से डोम के पैरों के नींचे से ढोलक हटा ली और वह फदे में लटक कर मर गया।

उस समय अपनी स्त्री को ढूँढता हुआ अपने नौकर के साथ उसका पति वहाँ आया।

उसे देख वह वृक्ष के पत्तों में छिपकर वैठ गयी।

उसका नौकर वृक्ष पर चढकर उसे ढूँढने लगा।

सिद्धिकरी ने उसे देखकर कहा—आओ, मेरे पास आओ। तुम वहुत सुन्दर हो तुम पर मै मोहित हूँ। लो, यह भी ले लो और मेरे शरीर का उपभोग करो।

यह कहकर, ज्योंही वह नौकर उसके पास आया, उसका चुवन लेने के वहाने, सिद्धिकरी ने उसकी जीभ काट ली।

उसका पति अपने नौकर के साथ वहाँ से जल्दी से भाग गया।

सिद्धिकरी वृक्ष से नीचे उतर धन की गठरी उठाकर चपत हुई।

परीक्षा के लिए स्त्री को यक्षमंदिर में भेजा गया।

स्त्री ने मंदिर के पिशाच (जो पिशाच के रूप में स्त्री का प्रेमी था) को सम्बोधित करके कहा—

हे पिशाच! जिस पुरुष के साथ मेरा विवाह हुआ है, उसे छोडकर यदि मैने अन्य किसी से प्रेम किया हो तो तुम साक्षी हो।

यक्षमदिर का नियम था कि यदि कोई अपराधी होता तो वह वहीं रह जाता और निर्दोषी वाहर निकल जाता।[1]

स्त्री का उक्त सम्वोधन सुनकर पिशाच सोच में पड गया कि इसने तो मुझे भी ठग लिया।

पिशाच क्षणभर के लिए सोच में पडा रहा और इस वीच स्त्री मंदिर से झट से वाहर निकल आई।[2]

६ वौद्धों की जातक कथाएँ

वौद्धो की जातक-कथाएँ भी कथा-कहानियो का समृद्ध कोप है। श्रीलका, वर्मा आदि प्रदेशो मे ये कथाएँ इतनी लोकप्रिय है कि लोग रात-रातभर जागरण कर इन्हे वडी श्रद्धापूर्वक सुनते है। जातक-कथाओ मे वुद्ध के पूर्वभवो की कथाएँ है जिनके अनेक दृश्य साची, भरहुत आदि के स्तूपो की भित्तियो पर अकित है। इनका समय ई०पू० दूसरी शताव्दी माना जाता है। जातक-कथाएँ ई०पू० पाँचवीं शताव्दी के पूर्व से लेकर ईसवी सन् की प्रथम या द्वितीय शताव्दी में रची गयी है। कतिपय विद्वानो की मान्यता है कि जातक की अनेक कथाएँ महाभारत और रामायण में विकसित रूप में पायी जाती है।

---

१ शुद्धतापरीक्षा (चैस्टिटी टैस्ट) मोटिफ' के लिये देखिये स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोकलोर माइथोलोजी एण्ड लीजेण्ड, जिल्द १ मारिया लीच, न्यूयार्क १९४९, चैस्टिटी टैस्ट' और 'ऐक्ट ऑफ ट्रुथ' नामक लेख, पेन्जर, ओशन ऑफ स्टोरी, 'चैस्टिटी इण्डेक्स' मोटिफ, भाग १, पृ० १६५-६८ रुथ नॉरटन (Ruth Nortan), द लाइफ इण्डेक्स ए हिन्दू. फिक्शन मोटिफ, स्टडीज़ इन आनर आफ मौरिस व्लूम फील्ड येल यूनिवर्सिटी प्रेस, १९२०।

२ दशवैकालिक चूर्णी, पृ० ८९-९१। परिशिष्ट पर्व (२८४४६-६४०) भी देखिये। तुलना कीजिए शुकसप्तति की १५वीं कहानी के साथ।

जातक-कथाओ में बुद्ध के पूर्व जीवन सबंधी कथाओ का सग्रह है। बुद्धत्व प्राप्त करने के पूर्व गौतम बुद्ध ने अनेक योनियो में जन्म लिया, जहाँ वे बोधिसत्व की अवस्था में रहे। कभी पशु-पक्षी, कभी मनुष्य और कभी देवयोनि में जन्म धारण कर वे अपने जीवन का लोकहित सबधी कोई शिक्षाप्रद आख्यान सुनाते है। ये मनोरंजक आख्यान कभी दृष्टांतो, कभी उपमाओ, कभी सूक्तियो, कभी प्रश्नोत्तरो, कभी प्रहेलिकाओ और कभी हास्य एवं व्यंग्य कथाओ के रूप में हमारे सामने आते है। इन कथाओ मे से यदि बोधिसत्व का नाम हटा दिया जाये तो ये कथाएँ शुद्ध लौकिक कथा के रूप मे रह जाती है।

जैन कथाओं और जातक-कथाओं की तुलना

जैन कथाओ और बौद्धो की जातक-कथाओ की तुलना करते हुए डाक्टर हर्टल ने जैन कथाओ को श्रेष्ठ बताया है। इस सबध में उनका निम्न वक्तव्य ध्यान देने योग्य है—"जातक की कहानी का आरंभ अधिकाश रूप में नगण्य होता है। अमुक-अमुक घटना अमुक-अमुक भिक्षु के साथ हुई। भगवान बुद्ध आते है। बौद्ध भिक्षु उनसे प्रश्न करते है वर्तमान परिस्थिति के संबंध में, बुद्ध उस भिक्षु के पूर्व भव को कथा सुनाकर उत्तर देते है। यही पूर्वभब की कथा जातक की मुख्य कथा है (जब कि जैन कहानियो में कहानी के निष्कर्ष में यह बात कही जाती है)। बोधिसत्व अथवा भावी बुद्ध इस कहानी मे अपनी भूमिका अदा करते है, अवश्य ही वह भूमिका उनके अनुरूप होनी चाहिए। फिर, इस समस्त कहानी का शिक्षा-प्रद होना आवश्यक है। जातक-कथाओ के जहाँ तक मनोरजक होने का संबंध है, यह बौद्धो की खोज नहीं है, वे भारत मे जगह-जगह बिखरे हुए कथा-कहानियो के विशाल भंडार से ली गयी है। इनमे से कितनी ही जनप्रिय कहानियाँ पटुतापूर्ण है, विचित्र है अथवा किसी रूप में मनोरजक भी, लेकिन शिक्षाप्रद वे नहीं है। अतएव बौद्ध भिक्षु, जिनकी जातक कथाएँ हर हालत में शिक्षाप्रद और बोधिसत्व के अनुरूप होनी चाहिए, लोकप्रिय कथाओ में अपने उद्देश्य के अनुसार परिवर्तन करने के लिए बाध्य होते है, और इसका दुःखद परिणाम प्राय यह होता है कि इस प्रकार की कथा नीरस बनकर रह जाती है, जिसमें से उसका चमत्कार ही नष्ट हो जाता है, और इसका विकास प्राय' मनोवैज्ञानिक सभाव्यता के विपरीत होता है। बौद्ध लोग अपने सिद्धांतो का सीधा उपदेश देने के लिए बोधिसत्व का उदाहरण प्रस्तुत करते है कि मनुष्य को बुद्धधर्म की नैतिकता की धारणा के

अनुसार किस प्रकार आचरण करना चाहिए। तथा यदि बौद्धजातक कथा के लिए पसद की गयी किसी कहानी मे इस प्रकार का नैतिक आचरण नहीं है तो कहानी मे तदनुसार परिवर्तन करना पडेगा। बौद्धो के अनुसार, अर्थशास्त्र के पठन-पाठन को पापाचरण कहा गया है। लेकिन भारत की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ इसी शास्त्र मे विकसित हुई पाई जाती है। बौद्ध साधु ऐसी कितनी ही कथाओं को अपने कथासंग्रह मे स्थान देते हैं, किन्तु अपने सिद्धान्त के अनुसार, कहानी के उन्हीं मुद्दो को—और फलस्वरूप इन कहानियो की अत्यन्त आवश्यक विशेषताओ को परिवतित करने के लिए वे बाध्य होते है, और इस तरह अपरिहार्य रूप से स्वय कहानियाँ ही नष्ट हो जाती है। यह केवल एक संयोग की बात नहीं कि पंचतंत्र के अनेकानेक संस्करणो का बौद्धो का एक भी संस्करण उपलब्ध नहीं होता।"[1]

७. श्रमण संस्कृति की पोषक वैराग्यवर्धक जैन कथाएँ

श्रमण संस्कृति में निवृत्ति की प्रधानता

उत्तराध्ययन के कापिलीय अध्ययन में कहा है—"अध्रुव, अशाश्वत और दुखो से परिपूर्ण इस संसार मे मैं कौनसा कर्म करूँ, "जिससे दुर्गति को प्राप्त न होऊँ ?"

उत्तर—"पूर्व परिचित सयोग का त्याग करके, जो कहीं किसी वस्तु में स्नेह नहीं करता, और स्नेह करने वालो के प्रति स्नेहशील नहीं होता, वह भिक्षु दोष और प्रदोषो से मुक्त होता है।"[2]

यह संसार अनेक दुखो और कष्टो से पूर्ण है। मनुष्य को कर्म का फल भोगना ही पडता है। कर्म के वश हुआ वह असंख्य योनियो में अनंतकाल तक भ्रमण करता रहता है। धन, धान्य और बंधु-बांधव उसकी रक्षा नहीं कर सकते। आकाश के समान विस्तार वाली तृष्णा से उसकी तृप्ति नहीं होती। ऐसी अवस्था में जबतक मनुष्य जरा से जर्जरित और आधि-व्याधि से पीडित नहीं हो, तब तक आत्मस्वरूप को पहचान कर उसे धर्म का आचरण करना चाहिए। मनुष्य जन्म की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य जन्म पाकर जो परलोकहित में रत नहीं रहता,

---

१ आन द लिटरेचर आफ द श्वेताबराज आफ गुजरात, पृ० ७-८

१ अधुवे असासयम्मी ससारम्मी दुक्खपउराए।
किं नाम होज्ज त कम्मय, जेणाह दोग्गइ न गच्छेज्जा ॥
विजहित्तु पुव्वसजोय, ण सिणेह कहिंचि कुव्वेज्जा।
असिणेह सिणेहकरेहिं, दोसपओसेहिं मुच्चए भिक्खू ॥ उत्त० ८ १-२

वह मरणकाल के समय शोकाभिभूत होता है। जो दशा जल में पड़े हुए हाथी, कांटे से पकडे हुए मत्स्य और जाल में फसे हुए पशु-पक्षियो की होती है, वही दशा जरा और मृत्यु से अभिभूत इस जीव की होती है। उस समय अपने त्राता को न प्राप्त करता हुआ, कर्मभार से प्रेरित होकर वह शोक से व्याप्त होता है। आत्मदमन करने, अपनी इच्छाओ पर नियंत्रण करने और संसार के माया-मोह का त्याग करने से ही शाश्वत, अव्यावाध और अनुपमेय निर्वाणसुख की प्राप्ति हो सकती है।

संक्षेप में यही निवृत्तिप्रधान श्रमण संस्कृति है जो वैदिक धर्म की प्रवृत्ति-प्रधान ब्राह्मण संस्कृति से मेल नहीं खाती।

त्याग और वैराग्यप्रधान कथाएँ

श्रमण संस्कृति की पोषक कथाओ में केवल सामान्य स्त्री-पुरुष ही संसार का त्याग कर श्रमण दीक्षा स्वीकार नहीं करते, बल्कि विद्वत्ता, शूरवीरता और धन-ऐश्वर्य से सपन्न उच्चवर्गीय विद्वान् ब्राह्मण, राजे-महाराजे, सेनापति और धनकुवेर भी निर्वाण सुख की प्राप्ति के लिए इस मार्ग का अवलवन ग्रहण करते है। कोई अपने सिर के श्वेत केश को धर्मदूत का आदेश समझकर, कोई बाडे में वध हुए निरीह पशुओ की चीत्कार सुनकर, कोई मुद्रिकाशून्य अपनी उगली, फलरहित आम्र वृक्ष, और मांसखड के लिए लडते हुए दो गीधो को देखकर, कोई किसी उत्सव की समाप्ति पर सर्वत्र शून्यता का अनुभव कर और कोई दीपशिखा पर गिरकर जलते हुए पतिगे को देखकर, जल के बुद्बुदो और ओसकण के समान क्षणभगुर संसार का परित्याग कर सयम, तप और त्याग का अवलम्बन लेते हुए आत्महित में संलग्न होते है।

इस सवध में नमि राजर्षि और शक्र का संवाद उल्लेखनीय है। राजपाट का त्यागकर वन की शरण लेते हुए मिथिलानरेश नमि से शक्र प्रश्न करता है—

महाराज! यह अग्नि और यह वायु आपके भवन को प्रज्वलित कर रही है। अपने अन्त:पुर की ओर आप क्यो ध्यान नहीं देते?

नमि - हे इन्द्र! हम तो सुखपूर्वक है, किसी वस्तु में हमारा ममत्व भाव नहीं है। अतएव मिथिला के प्रज्ज्वलित होने से मेरा कुछ भी प्रज्वलित नहीं होता।[1]

१ विदेह के राजा जनक ने भी महाभारत (शातिपर्व १७८) में कहा है

अनन्त वत मे वित्त यस्य मे नास्ति किञ्चन।
मिथिलाया प्रदीप्ताया न मे दहति किञ्चन॥

बौद्धों के धम्मपद का तण्हावग्ग भी देखिए।

शक्र—हे राजर्षि ! अपने नगर में प्राकार, गोपुर, अट्टालिका, खाई, और शतघ्नी आदि का प्रबंध करने के पश्चात्, निराकुल होकर संसार का त्याग करें।

नमि—श्रद्धारूपी नगर का निर्माण कर, उसमें तप और सवर के अर्गल (मूसले) लगा, क्षमा का प्राकार बना, त्रिगुप्तिरूपी अट्टालिका, खाई और शतघ्नी का प्रबंध कर, धनुषरूपी पराक्रम चढ़ा, ईर्यासमितिरूपी प्रत्यंचा बांध, धैर्यरूपी मूठ लगा और तप के बाण से कर्मरूपी कंचुक को भेद, मैंने संग्राम में विजय प्राप्त की है, अतएव अब मै ससार से छुटकारा पा गया हूँ।[1]

अस्पृश्य समझी जाने वाली जाति में उत्पन्न लोग श्रमणदीक्षा स्वीकार कर मैत्री, कारुण्य आदि का उपदेश देते है। अनेक आख्यानो में यज्ञ-याग मे होने वाली हिंसा की गर्हणा कर परमधर्म अहिंसा का प्रतिपादन किया गया है।

श्रमण सस्कृति में अहिंसा, सयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्य, आत्मदमन, कर्म-सिद्धान्त और जातिविरोध की मुख्यता प्रतिपादित की गयी है। अत श्रमण सस्कृति सबधी कथाएँ ब्राह्मणो के पौराणिक साहित्य पर आधारित न होकर सामान्य जीवन की लोकगाथाओ पर आधारित है।

विण्टरनित्स ने इस प्रकार के साहित्य को श्रमणकाव्य नाम से अभिहित कर, समान रूप से महाभारत, जैन एव बौद्ध साहित्य पर उसके प्रभाव को स्वीकार-किया है।[2]

महाभारत के शांतिपर्व (मोक्ष धर्म) में ऐसे कितने ही आख्यान और नीति-वचन समाविष्ट है जिनकी तुलना जैन और बौद्धो के अहिसा और मैत्री के सिद्धान्तों से की जा सकती है। एक आख्यान देखिए—

१ उत्तराध्ययन सूत्र ९। तुलना कीजिए महाभारत, शातिपर्व (१२ १७८) तथा सोनक जातक (५२९), पृ० ३३७–३८ के साथ।

२ देखिए 'सम प्रोब्लम्स आफ इडियन लिटरेचर' में 'एसेटिक लिटरेचर इन एशियेट इडिया', कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, १९२५, पृ० २१–४०। यहाँ पितापुत्र सवाद (महाभारत, सभापर्व),विदुरहितवाक्य (महाभारत ५ ३२–४०), धृतराष्ट्रशोकापनोदन (स्त्रीपर्व २–७), धर्मव्याध के उपदेश (वनपर्व २०७–१६), तुलाधारजाजलिसंवाद (शातिपर्व २६१–६४), यज्ञनिन्दा (महाभारत १२ २७२), गोकपिलीय अध्ययन (१२, २६९–७१) व्याध और कापोत (शातिपर्व १४३–४९) आदि प्रकरणों के सवादों और नीतिवचनों की तुलना जैन और बौद्ध उपदेशों के साथ की गयी है।

कबूतर और बाज

एक बार राजा मेघरथ अपनी पौषधशाला में बैठे थे कि वहाँ डर से काँपता हुआ एक कबूतर आकर गिरा। शरण में आये हुए कबूतर को राजा ने अभय दिया।

कबूतर के पीछे-पीछे एक बाज़ भी वहाँ आया। वह कहने लगा—

"यह कबूतर मेरा भक्ष्य है, मुझे दीजिए।"

मेघरथ—यह मेरी शरण आया है, तुम्हे कैसे मिल सकता है?

बाज़—यदि आप इसे न देंगे तो बुभुक्षित अवस्था मे, आप ही कहिए, मै किसकी शरण जाऊँ?

मेघरथ—जैसा जीवन तुझे प्रिय है, वैसा समस्त जीवो को भी है।

बाज—बुभुक्षित अवस्था मे धर्माचरण में मेरा मन कैसे लग सकता है? आप ही बताये।

मेघरथ—मै तुझे दूसरे किसी का मांस देता हूँ, इस कबूतर को तू छोड दे।

बाज—मैं मरे हुए जीव का मास भक्षण नहीं करता, स्वय मारकर ही भक्षण करता हूँ।

मेघरथ—यदि ऐसी बात है तो जितना वजन इस कबूतर का है, उतना मांस मेरे शरीर में से ले ले।

यह कहकर राजा तराजू के एक पलडे में कबूतर को बैठा, दूसरे पलडे में अपना मांस काट-काटकर चढ़ाने लगा।[1]

वैराग्यप्रधान एक दृष्टान्त देखिए जो महाभारत तथा जैन और बौद्धो के धार्मिक कथाग्रन्थो के अलावा विश्व के अन्य साहित्यो में भी पाया जाता है—

मधुबिन्दु दृष्टान्त

देश-देशान्तर मे पर्यटन करने वाले किसी पुरुष ने सार्थ के साथ अटवी में प्रवेश किया। चोरो ने सार्थ को लूट लिया। अपने साथियो से भ्रष्ट हुए इस पुरुष पर एक जगली हाथी ने आक्रमण किया। हाथी के डर से भागते हुए उसे

१ वसुदेवहिंडी, पृ० ३३७। पचतत्र (काकोलूकीय) में यह कहानी पद्यरूप मे दी हुई है। यहाँ कोई शिकारी कबूतरी को अपने जाल में पकड़ लेता है। मूसलाधार वर्षा होने लगती है। शिकारी सर्दी से ठिठुरता हुआ एक वृक्ष के नीचे जाकर खड़ा हो जाता है। उस वृक्ष पर रहने वाला कबूतर अपनी कबूतरी के वियोग से अत्यत दुखी था। शिकारी के पिंजड़े में बद कबूतरी ने शिकारी को अतिथि समझ उसका सत्कार करने का अनुरोध किया। इसपर कबूतर ने अग्नि में प्रवेश कर अपने शरीर का माँस शिकारी को समर्पित किया। यह कथा महाभारत (शातिपर्व १४३–४९), सिविजातक, कथासरित्सागर (१ ७ ८८–१०७) तथा पूर्णभद्रसूरि के पचाख्यान में भी मिलती है।

तृण और डाभ से आच्छादित एक जीर्ण कूप दिखायी दिया। इस कूप के तट पर एक महान् वट का वृक्ष खडा था। वृक्ष की शाखाएं कूप में लटक रही थीं। डर के मारे वह पुरुष वृक्ष की शाखाएं पकडकर कूप में लटक गया।

उसने नीचे की ओर देखा तो जान पड़ा कि एक महाकाय अजगर अपना मुंह बाये उसे निगल जाने के लिए तैयार था। चारो दिशाओ में चार भीषण सर्प फुकार मार रहे थे। शाखाओ के ऊपर कृष्ण और शुक्ल दो चूहे बैठे हुए शाखाओ को कुतर रहे थे। हाथी अपनी सूड़ को उसके केशो पर बार-बार घुमा रहा था। वृक्ष पर एक मधुमक्खी का बडा छत्ता लगा हुआ था। वृक्ष के हिलने पर पवन से चंचल हुए मधु की बूँदे उसके मुँह में टपकती थीं। इन बूंदो का आस्वाद क्षणभर के लिए उसे तृप्त कर देता था। मधुमक्खियां उसके चारों ओर भिनभिना रही थीं।

इस दृष्टांत में पुरुष को ससारी जीव, अटवी को जन्म-जरा-रोग और मरण से व्याप्त ससार, वनहस्ती को मृत्यु, कूप को देव और मनुष्य योनि, अजगर को नरक और तिर्यंच गति, चार सर्पों को दुर्गति में ले जाने वाली क्रोध-मान-माया-लोभ चार कषाऍ, वट वृक्ष की शाखा को जीवनकाल, कृष्ण और शुक्ल मूषक को रात्रि और दिवस रूपी अपने दाँतो से जीवन को कुतरने वाले कृष्ण और शुक्ल पक्ष, वृक्ष को कर्मबन्ध के कारणरूप अविरति और मिथ्यात्व, मधुको शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गंध रूप इंद्रियो के विषय, और मधुमक्खी को शरीर से उत्पन्न व्याधि प्रतिपादित किया है। भला इस प्रकार भय से व्याकुल पुरुष को सुख की प्राप्ति कहाँ से हो सकती है? मधुबिन्दु के रस का आस्वादन केवल सुख की कल्पना मात्र है।[1]

इसी प्रकार का एक अन्य आख्यान देखिए—

कुडंग द्वीप के तीन मार्गभ्रष्ट व्यापारी—

पाटलिपुत्र के धन नामक वणिक् ने व्यापार के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में उनका जहाज फट गया। एक पट्ट की सहायता से वह कुडग द्वीप नामक

१ वसुदेवहिंडी, पृ० ८। समराइच्चकहा, भव २, पृ० १३४–१३९ में यह दृष्टात किंचित परिवर्तन के साथ कुछ विस्तार से मिलता है। अमितगति की धर्मपरीक्षा और हेमचन्द्राचार्य के परिशिष्टपर्व (२ १) में भी उपलब्ध है। महाभारत (स्त्रीपर्व २–७) के धृतराष्ट्रशोकापनोदन अध्ययन मे, धृतराष्ट्र के पुत्रों की मृत्यु हो जाने पर विदुर उसे सान्त्वना देते हुए ससारजन्य दुखों का वर्णन करता है। मृत्यु एवं भाग्य की बलवत्ता का परिचय देते हुए यहाँ मधुबिन्दु दृष्टात का आश्रय लिया गया है। बौद्धों के अवदान साहित्य में भी यही दृष्टान्त पाया जाता है। इस्लाम, यहूदी और ईसाइयो के ग्रथों मे भी इस दृष्टान्त का उपयोग किया गया है। विण्टरनित्स ने इसे प्राचीन भारतीय श्रमण काव्य की उपज कहा है। देखिए. एसेटिक लिटरेचर इन एशियेंट इंडिया पृ० २८ ३०।

द्वीप में पहुँचा। क्षुधा और तृषा से व्याकुल हुआ जब वह इधर-उधर परिभ्रमण कर रहा था तो उसे एक पुरुष मिला। वह भी जहाज फटने के कारण वहाँ आकर उतरा था। दोनो भोजन-पानी की खोज में घूमने लगे। इतने में वहाँ एक और आदमी दिखाई दिया। उसकी भी यही दशा थी। तीनो मे मित्रता हो गयी।

उन्होने एक ऊँचे वृक्ष पर वृक्ष की छाल की ध्वजा बनाकर लटका दी। यह ध्वजा यात्रियो के जहाज फट जाने का चिह्न था। इसका मतलब था कि यदि कोई पोतवणिक् उस मार्ग से गुजरे तो उस द्वीपवासी मार्गभ्रष्ट पुरुषो को वहाँ से निकालकर ले जाने मे सहायता करे।[1]

तीनो पुरुष भोजन की खोज करते-करते इधर-उधर घूमते-फिरते रहे, लेकिन कोई फलवाला वृक्ष उन्हे दिखायी न दिया।

कुछ समय बाद उन्हे घर के आकार के बने हुए तीन कुण्ड दिखायी पडे। प्रत्येक कुण्ड में काकोदुबरी का एक-एक वृक्ष लगा हुआ था। तीनो ने उन कुण्डो को बांट लिया। लेकिन इन वृक्षो पर फल नहीं थे।

कुछ समय बाद उनपर कच्चे और कर्कश फल लगे। पक्षियो से उन वृक्षो की वे रखवाली करने लगे।

इस बीच में किसी पोतवणिक् ने वृक्ष पर लगी हुई ध्वजा को देखा और अपने नाविको को कुडग द्वीपवासी उन पुरुषो को लाने के लिए भेजा।

पहले पुरुष ने उत्तर दिया—यहाँ हमें दुख ही कौनसा है? यह देखो हमारा घर। हमारे वृक्ष पर फल लग गये है। भविष्य मे भी इसपर फल लगा करेंगे। वर्षा ऋतु में हमें भोजन-पान का कोई कष्ट न होगा। अतएव यहाँ से जाने की इच्छा मेरी नहीं है।

दूसरे पुरुष ने भी वहाँ से जाने की अनिच्छा व्यक्त की। उसने कहा कुछ समय बाद वह चल सकता है।

तीसरे पुरुष ने आगन्तुको का स्वागत किया। वह उनके जहाज पर सवार हो, घर पहुँच अपने सगे-सबधियो से जा मिला।[2]

१ बुधस्वामी के बृहत्कथाश्लोकसग्रह (१८ ३१५-१६) में भिन्न पोत होने पर, नाविकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए वृक्ष पर ध्वजा लगाने और अग्नि जलाने का उल्लेख है।

२ कुवलयमाला, १६६, पृ० ८९। इस आख्यान द्वारा यहाँ तीन प्रकार के जीवों की ओर लक्ष्य किया गया है—अभव्य, कालभव्य और तत्क्षणभव्य। ये तीनों सयोगवश मनुष्यजन्म रूपी एक द्वीप में पहुँच गये। यहाँ रहने के लिए उन्हें घर मिल गया जिसमें काकोदुबरी रुपी स्त्रियों का निवास था। धर्मोपदेशकों के रूप मे आये हुए नाविक उनकी रक्षा करना चाहते हैं। पहला पुरुष जाने की अनिच्छा व्यक्त करता है। दूसरा कहता है कि कुछ समय बाद वह चलेगा। तीसरा फौरन उनके साथ चलने को तैयार हो जाता है।

अन्यत्र (पृ० ४५-८०) क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह—इन पाँच महामल्लों के उदाहरण स्वरुप क्रोध के आख्यान मे चडसोम, मान के आख्यान में मानभट, माया के आख्यान मे मायादित्य, लोभ के आख्यान में लोभदेव और मोह के आख्यान में मोहदत्त की कथाएँ दी गयी हैं। पात्रों के नाम ध्यान देने योग्य हैं।

इस प्रकार के सैकडो आख्यान प्राकृत जैन कथाग्रंथों में मिलते है जिनका उपयोग जैनधर्म के उपदेश के लिए किया जाता था।

वैराग्योत्पादक लघु आख्यान

एक आख्यान—हाथी पर सवार हो शत्रु पर आक्रमण करने जाते समय राजा सिंहराज ने देखा कि एक महाकाय सर्प ने मेंढक को पकड रक्खा है, कुरल पक्षी सर्प को पकडकर खींच रहा है और कुरल को एक अजगर ने कसकर पकड रक्खा है। जैसे-जैसे अजगर कुरल को खींचता है, वैसे-वैसे कुरल सर्प को, और सर्प मेंढक को पकडकर खींचता है।

इस हृदयद्रावक घटना को देखकर राजा के मन में वैराग्य हो आया।[1]

1 समराइच्चकहा, २ पृ० १४८–९। कुवलयमाला (२९९, पृ० १८८–८९) में चित्रकला द्वारा पशु पक्षियों के दृश्य चित्रित किये गये हैं। सिंह हाथी का और हाथी सिंह का वध कर रहा है। सिंह ने मृग को मार दिया है। व्याघ्र ने आक्रन्दनपूर्वक वृषभ का वध कर दिया है। वृषभ ने अपने सींग से व्याघ्र का भेदन कर दिया। भैंसों का युद्ध हो रहा है। हरिण भी परस्पर युद्ध कर रहे हैं। एक सर्प दूसरे सर्प को, एक मत्स्य दूसरे मत्स्य को और एक मगर दूसरे मगर को निगले जा रहा है। एक पक्षी दूसरे पक्षी को मार रहा है। मोर सर्प को खा रहा है। मकडी के जाले में फँसी हुई मकड़ी को दूसरी मकड़ी ने पकड़ लिया है। भूखी छिपकली ने एक कीड़े को पकड़ रक्खा है। श्यामा ने छिपकली को पकड़ लिया है। यह श्यामा एक कीड़े को चोंच मे दबाये आकाश में उड़ रही थी कि इसे दूसरे पक्षी ने पकड़ लिया। जब यह पक्षी जमीन पर गिरा तो इसे एक जगली विलाव ने पकड़ लिया। विलाव को जगली सूअर ने, सूअर को चीते ने, चीते को तेंदुए ने, तेंदुए को व्याघ्र ने, व्याघ्र को सिंह ने और सिंह को शरभ ने पकड रक्खा है।

उत्तराध्ययन (२५ वा अध्ययन, शान्त्याचार्य, बृहद्वृत्ति) में इसी तरह का अन्य आख्यान आता है। जयघोष जब गङ्गास्नान करने जा रहे थे तो उन्होंने देखा कि मेंढक को एक साप ने डस रक्खा है और उस साप को एक मार्जार ने, तथा चींचीं करते हुए मेंढक का साप भक्षण कर रहा है और तड़फड़ाते हुए साप को मार्जार। यह देखकर जयघोष ब्राह्मण को वैराग्य उत्पन्न हो गया और गगा पार पहुँचकर उसने साधु के पास श्रमणदीक्षा ले ली। उत्तराध्ययन निर्युक्ति (४६५–६७) में मार्जार के स्थान पर कुरल का उल्लेख है।

कोरमगल के वस्वेश्वर मदिर (इस जैन मंदिर का निर्माण होयसलराज वल्लाल द्वितीय के राज्याभिषक के समय सेनापति वूचिराज द्वारा ११७३ ई० में किया गया था) में एक दूसरे का नाश करने वाले जानवरों की यह श्रृङ्खला चित्रित है। यहा गुण्डभेरुण्ड शरभ को, शरभ सिंह को, सिंह हाथी को, हाथी सर्प को और सर्प हरिण को निगल रहा है। इसी श्रृङ्खला मे एक साधु का चित्र है। एम०वी० एमेनियन के अनुसार, इस प्रकार की श्रृङ्खला के माध्यम से धर्म की ओर प्रवृत्त करने का उल्लेख सर्वप्रथम जैन ग्रन्थों में पाया जाता है। देखिए, जरनल आफ अमेरिकन ओरिंटिएल सोसायटी (६७) में 'स्टडीज इन फोकटेल्स आफ इण्डिया, ३' नामक लेख।

प्रतीकों द्वारा अटवी पार करने का आख्यान—

एक सार्थवाह ने किसी नगर में प्रस्थान करते समय घोषणा कराई कि जो कोई उसके साथ चलना चाहे और उसके आदेश का पालन करे, वह उसे निर्विघ्न रूप से अटवी से पार कराकर इष्ट स्थान पर पहुँचा देगा। सार्थवाह की घोषणा सुनकर बहुत से व्यापारी एकत्र हो गये। सार्थवाह ने उन्हे मार्गों के गुण-दोष समझाये :

मार्ग दो प्रकार के होते है—एक सरल, दूसरा वक्र। वक्र मार्ग द्वारा सुखपूर्वक गमन किया जाता है, इसमे बहुत समय लग जाता है। सरल मार्ग से पहुँचने मे कष्ट होता है, इससे जल्दी पहुँच जाते है। सरल मार्ग अत्यन्त विषम और सकटापन्न है। इसमें दो व्याघ्र और सिंह रहते है। इन्हे भगा देने पर फिर से आकर ये रास्ता रोक लेते है। यदि कोई उन्मार्ग से गमन करे तो उसे मार डालते है, जो सीधे मार्ग से जाये, उसे कुछ नहीं करते। इस मार्ग में शीतल छाया वाले अनेक मनोहर वृक्ष है। कुछ वृक्ष अमनोहर भी है, जिनके फूल-पत्ते झड़ गये है। मनोहर वृक्षो की शीतल छाया के नीचे विश्राम करना विनाश का कारण है। अतएव जिनके फूल-पत्ते झड गये है, उन वृक्षो के नीचे थोड़े समय के लिए विश्राम करना चाहिए। मार्ग के किनारे खडे हुए मनोहर रूपधारी पुरुष मधुर वचनो से आमत्रित करते है—हे यात्रियो! आओ, इस रास्ते से जाओ। उनकी बात पर ध्यान न देना चाहिए। अपने साथियो से थोडी देर के लिए भी अलग न होना चाहिए। उनके अकेले रह जाने पर भय निश्चित है। मार्ग में जाते हुए अटवी आग से जलती हुई दिखाई देगी, सावधानीपूर्वक इस आग को बुझा देना चाहिए। आग न बुझाने से स्वय जल जाने की आशंका है। आगे चलकर एक दुर्ग और ऊँचा पर्वत पडेगा, उसे लाघ कर चले जाना चाहिए। ऐसा न करने से मृत्यु निश्चित है। उसके बाद बांस का गहन जगल पडेगा, उसे भी जल्दी से पार कर लेना चाहिए। वहाँ ठहरने से अनेक उपद्रवो की आशंका है। उसके बाद एक छोटा-सा खड्ड पडेगा। वहाँ मनोहर नामक ब्राह्मण रहता है। वह कहेगा—तुम लोग इस खड्ड को किंचित् भरकर आगे बढना। उसकी बात अनसुनी कर आगे बढ जाना चाहिए। यदि उस खड्ड को भरने की कोशिश करोगे तो यह और बडा हो जायेगा, और तुम मार्ग से भ्रष्ट हो जाओगे। आगे चलकर सुन्दर किंपाक फल दिखायी देगे। उनकी ओर न देखना चाहिए और न इन्हे चखना ही चाहिए। अनेक प्रकार के पिशाच प्रत्येक क्षण यहाँ उपद्रव करते है, उनकी परवा

न करनी चाहिए। भोजन-पान यहा वहुत थोड़ा मिलेगा और जो मिलेगा, वह अत्यन्त नीरस होगा। उससे दुखी न होना चाहिए। सदा आगे वढते जाना चाहिए। रात में भी दो याम नियम से चलना चाहिए। इस प्रकार गमन करने से शीघ्र ही अटवी को पार किया जा सकता है और एकान्त दुर्गति से रहित निर्वृत्तिपुर (मोक्ष) में पहुँचा जा सकता है। वहाँ किसी प्रकार का क्लेश और उपद्रव नहीं है।

यहाँ सार्थवाह को अर्हन्त, उसकी घोषणा को धर्मकथा, सार्थ को निर्वृत्ति-पुर के लिए प्रस्थान करने वाले जीव, अटवी को संसार, सरल मार्ग को साधु धर्म, वक्र मार्ग को श्रावक धर्म, व्याघ्र-सिंह को राग-द्वेष, मनोहर वृक्षो की छाया को स्त्री-पशु आदि से युक्त वसति, अमनोहर वृक्षो को निर्दोष वसति, मार्ग पर खडे हुए पुरुषों को परलोकविरुद्ध उपदेष्टा, अच्छे सार्थ को शीलधारी श्रमण, जंगल की अग्नि को क्रोध, पर्वत को मान, वांस के जंगल को माया, खड्ड को लोभ, मनोहर ब्राह्मण को इच्छाविशेष, खड्ड के किंचित् भरने को अपर्यवसान-गमन, किंपाक फलो को शब्द आदि विषय, पिशाचों को परीषह, नीरस भोजन को निर्दोष भिक्षावृत्ति, प्रयाण न करने को सदा अप्रमाद, और दो याम गमन करने को स्वाध्याय वताया गया है। इस प्रकार ससार-अटवी को लाघकर मोक्षपुरी में पहुँचा जा सकता है।[1]

दीपशिखा पर गिरने वाला पतिंगा—

राजा रत्नमुकुट अपने वासगृह में अकेला वैठा हुआ दीवट की दीपशिखा की ओर देख रहा था। इतने मे एक पतिंगा आकर दीपशिखा पर गिरा। राजा ने अनुकंपा भाव से उसे पकड़ दरवाजे के वाहर छोड दिया। वह फिर से आ गया। उसने फिर पकड लिया और फिर से वाहर छोड दिया। इस तरह कई वार हुआ। राजा सोचने लगा—लोग कहते है, 'उपाय द्वारा रक्षित पुरुष सौ वर्ष तक जीवित रहता है', अव देखना है कि उपाय द्वारा जीव की मृत्यु से रक्षा भी की जा सकती है या नहीं। यह सोचकर उसने फिर से पतिंगे को पकड लिया। अव की वार उसे एक सदूकची में वन्द कर अपने सिरहाने रख कर सो

---

1 वही ५, पृ० ४७६–८०; आवश्यकचूर्णी, पृ० ५०९–१० में भी यह दृष्टात आता है। आवश्यकनिर्युक्ति (८९९–९००) में कहा है—'जैसे सार्थवाह के उपदेश से विघ्नों से पूर्ण अटवी को लाघकर इष्ट स्थान को प्राप्त किया जाता है, उसी प्रकार जीव जिन भगवान् के उपदेश से निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

गया। थोडी देर बाद सन्दूकची को खोलकर देखा तो वहाँ एक छिपकली दिखाई पडी। उसने चारो तरफ नजर दौडाई, लेकिन पतिगा कहीं दिखायी न दिया। राजा ने सोचा कि अवश्य ही यह छिपकली उसे चट कर गयी होगी।

उसके मन में विचार आया कि कर्म का भोग भोगे सिवाय छुटकारा नहीं। वैद्य लोग औषधि, मत्र-तंत्र और योगविद्या द्वारा रोगी की चिकित्सा कर उसे अच्छा कर देते है, किन्तु पूर्वजन्म कृत कर्मों से जीव की रक्षा करने में वे असमर्थ है।[1]

धान्य का दृष्टान्त

मनुष्य जन्म की दुर्लभता का प्रतिपादन करने के लिए धान्य के दृष्टांत द्वारा बताया गया है कि यदि समस्त भरत क्षेत्र के धान्यो को एकत्र कर उनमें एक प्रस्थ सरसो मिला दी जाये तो जैसे किसी दुर्बल और रोगी वृद्धा के लिए उस सरसो को समस्त धान्यो से पृथक् करना अत्यत कठिन है, वैसे ही अनेक योनियो में भ्रमण करते हुए जीव को मनुष्य जन्म की प्राप्ति दुर्लभ है।[2]

झुंटणक पशु का दृष्टान्त

कोई श्रेष्ठिपुत्र धन—सम्पति के नष्ट हो जाने से दरिद्र हो गया। उसकी पत्नी ने उसके मायके जाकर झुटणक पशु लाने को कहा जिससे कि उसके रोमो से वे कीमती कबल तैयार कर आजीविका चला सके। लेकिन पत्नी का कहना था कि रात-दिन तुम्हे उस पशु के साथ ही रहना पडेगा, नहीं तो वह मर जायेगा। पत्नी के कहने पर वह अपनी ससुराल से झुटणक को ले आया। उसे एक बगीचे में छोड़कर वह अपनी पत्नी से मिलने आ गया। पत्नी ने पूछा—झुटणक कहाँ है? उसने उत्तर दिया—बगीचे में। यह सुनकर उसकी पत्नी ने सिर धुन लिया।

इस दृष्टात से यहाँ लक्ष्य किया है कि जैसे श्रेष्ठीपुत्र अपनी पत्नी के उत्साह-पूर्ण वचन सुनकर अपनी ससुराल में से झुटणक पशु को लाता है, उसी प्रकार ससारी जीव गुरु के वचनो से धर्म को प्राप्त करता है। लेकिन जैसे श्रेष्ठीपुत्र लोकोप-

---

१ कुवलयमाला, २३०, पृ० १४०

२ उपदेशपद, गाथा ८, पृ० २२। आवश्यकनिर्युक्ति (८३३) में मनुष्य जन्म की दुर्लभता का प्रतिपादन करने के लिए चोल्लक, पाशक, धान्य, द्यूत, रत्न, स्वप्न, चक्र, चर्म, युग और परमाणु—ये दस दृष्टान्त दिये गये हैं। हरिषेण के बृहत्कथाकोश (३५-४०) में भी कतिपय दृष्टान्त पाये जाते हैं।

ह्रास के कारण पशु को प्राप्त करके भी छोड़ देता है। उसी प्रकार ससारी जीव दीर्घ ससारी होने से अज्ञान के कारण धर्म को छोड देता है[1]।

आगम साहित्य में दृष्टांतों द्वारा धर्मोपदेश

आगमकालीन कथा-साहित्य मे ज्ञातृधर्मकथासूत्र का उल्लेख किया जा चुका है। अडक नामक अध्ययन में यहाँ मयूरी के अडो के दृष्टात द्वारा, तथा कूर्म नामक अध्ययन मे अपने अंगो की रक्षा करने वाले कछुओ के दृष्टांत द्वारा सयम की रक्षा का उपदेश दिया है। रोहिणी नामक अध्ययन में धन्य सार्थवाह की पतोहू रोहिणी के दृष्टात द्वारा अपने आचरण में सदा जागरुक और उद्यम शील रहने का उपदेश है।[2] नौवें अध्ययन में जिनपालित और जिनरक्षित नाम के माकंदीपुत्रो के माध्यम से प्रलोभनो पर विजय प्राप्त कर सयम मे दृढ रहने का उपदेश है[3] अन्यत्र दावद्रव नामक वृक्ष, परिखा का जल, मेंढ़क, नंदीफल वृक्ष, कालिय द्वीपवासी अश्व आदि दृष्टातो द्वारा धर्मकथा का प्ररूपण किया गया है। कालियद्वीप अश्वो के सवध में कथन है कि साधु स्वच्छन्द विहारी अश्वो कि भाँति आचरण करते है, शब्द आदि विषयो से आकृष्ट होकर पाशवधन में वे नहीं पडते। सूत्रकृताग में कमलो से अच्छादित सुंदर पुष्करिणी के दृष्टांत द्वारा धर्मोपदेश दिया है। चार पुरुष चारो दिशाओ से कमल को तोड़ने आते है, लेकिन सफल नहीं होते। इस समय तटवर्ती एक मुनि इस कमल को तोड़ लेता है। यहाँ पुष्करिणी को ससार, कमल को राजा, चार पुरुषो को चार परमतावलंवी साधु तथा तटवर्ती मुनि को जैन साधु वताया है। विपाकसूत्र नामक वारहवें अंग में कर्मों के विपाक सवंधी कथाएँ दी हुई है।

उत्तराध्ययन के विनय अध्ययन में वताया है कि जैसे मरियल घोड़े को वार-वार कोड़े लगाने की जरूरत होती है, वैसे ही मुमुक्षु को पुनः पुनः गुरु के उपदेश की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। औरभ्रीय अध्ययन में कहा है कि जैसे खूव खिला-पिलाकर पुष्ट किये गये मेंढ़े का अतिथि के आने पर वध

---

१ उपदेशपद, भाग२ गाथा५५१, पृ० २७२अ।

२ देखिए, 'दो हजार वरस पुरानी कहानियाँ' में 'चावल के पाँच दाने' कहानी। सर्वास्तिवाद के विनयवस्तु (पृ० ६२) तथा वाइविल (सेंट मेथ्यू की वार्ता २५, सेंट ल्यूक की सुवार्ता १९) में यह कहानी कुछ रूपान्तर के साथ उपलब्ध है।

३ देखिए, 'दो हजार वरस पुरानी कहानियाँ' में 'प्रलोभनों को जीतो' नामक कहानी।

कर दिया जाता है, उसी प्रकार विषय भोगो में रचा-पचा मनुष्य मरणसमय आने पर शोक का भागी होता है। द्रुमपत्र के दृष्टात द्वारा मनुष्य जीवन की असारता व्यक्त करते हुए क्षणभर के लिए भी प्रमाद न करने का उपदेश है। सडियल बैल के दृष्टान्त द्वारा बताया है कि जो दशा सडियल बैलो को गाडी में जोतने से होती है, वही दशा धर्मपालन के समय कुशिष्यो की होती है।

प्राकृत कथाओ की दृष्टि से आगमो पर लिखा हुआ निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीका साहित्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। निर्युक्तियो के रचयिता भद्रबाहु, निशीथ, कल्प और व्यवहार भाष्य के प्रणेता सघदासगणि, चूर्णियो के कर्ता जिनदासगणि महत्तर तथा टीकाकार हरिभद्रसूरि, मलयगिरि, शांतिचन्द्रसूरि, देवेन्द्रगणि (नेमिचन्द्रसूरि) के नाम यहाँ उल्लेखनीय है। इस साहित्य मे भरत, सगर, राम, कृष्ण, द्वीपायनऋषि, द्वारकादहन, गङ्गा की उत्पत्ति आदि अनेक पौराणिक आख्यानो का वर्णन है।

आगमोत्तर कथा साहित्य में धर्मकथाएँ

आगमोत्तर कालीन कथाग्रन्थो में वसुदेवहिंडी के अन्तर्गत इंद्रियविषयप्रसक्ति में वानर[1], गर्भावास की दु:ख प्राप्ति में ललिताग[2], स्वकृत कर्मविपाक में कोकण ब्राह्मण[3], स्वच्छन्दता में रिपुदमन नरपति[4], परलोकप्रत्यय और धर्मफलप्रत्यय मे राजकुमारी सुमित्रा[5], परदारदोप में विद्याधर वासव[6] तथा पचाणुव्रत[7] आदि संबधी आख्यान उल्लेखनीय है।

हरिभद्रसूरि की धर्मकथा समराइच्चकहा मे निदान की मुख्यता बतायी गयी है। अग्निशर्मा पुरोहित राजा गुणसेन द्वारा अपमानित किये जाने पर निदान बाधता है कि यदि उसके तप में कोई शक्ति हो तो वह आगामी भव में गुणसेन का शत्रु बनकर उससे बदला ले। परिणामस्वरूप अग्निशर्मा एक नहीं, नौ भवो में गुणसेन से बैर का बदला लेता है। दोनो के पूर्वजन्मो की कथाएँ यहाँ वर्णित है। मूलकथा के अन्तर्गत अनेक अन्तर्कथाएँ और उपकथाएँ है जिनमें निर्वेद, वैराग्य, ससार की असारता, कर्मो की विचित्र परिणति, मन की विचित्रता, लोभ का परिणाम,

१ वसुदेवहिंडी, पृ० ६
२ वही, पृ० ९
३ वही, पृ० २९
४ वही, पृ० ६१
५ वही, पृ० ११५
६ वही, पृ० २९२
७ वसुदेवहिंडी, पृ० २९४-९७

माया-मोह, श्रमणत्व की मुख्यता आदि विषय प्रतिपादित किये गये है। पूर्वकृत कर्मदोष के संबध में उक्ति है—मनुष्य को पूर्वकृत कर्मों का ही फल मिलता है। अपराधो अथवा गुणो में दूसरा व्यक्ति केवल निमित्त मात्र होता है।[1]

कुवलयमाला में मनोनुकूल धर्मकथाएँ उल्लिखित है। कुवलयमाला और कुवलयचन्द्र की कथा के माध्यम से यहाँ संसार का स्वरूप, चार गतियाँ, जातिस्मरण, पूर्वकृत कर्म, चार कषाय, पाप का पश्चात्ताप, धनतृष्णा, जिनमार्ग की दुर्लभता, प्रतिमापूजन, पच नमस्कार मत्र, तीर्थंकर धर्म, संसारचक्र, मोक्ष का शाश्वत सुख, सम्यक्त्व, व्रत, द्वादश भावनाएँ, लेश्या, वीतराग की भक्ति आदि का सोदाहरण वर्णन है। कथाकार ने अलंकारो से विभूषित, सुदर, ललित पदावलि से सम्पन्न, मृदु एवं मजुल संलापो से युक्त, सहृदय जनो को आनन्द प्रदान करने वाली कथाओ का यहाँ समावेश किया है।

जिनेश्वरसूरि के कहाणयकोस (कथाकोषप्रकरण) में जिनपूजा, साधुदान, जैनधर्म में उत्साह आदि, णाणपंचमीकहा (ज्ञानपचमीकथा) में ज्ञानपंचमीव्रत का माहात्म्य, कथामणिकोष (आख्यानमणिकोष) में सम्यक्त्व, जिनविवदर्शन, जिनपूजा, जिनवंदन, साधुवंदन, जिनागमश्रवण, स्वाध्याय, रात्रिभोजनत्याग, जीवदया आदि, गुणचन्द्रगणि के कहारयणकोस (कथारत्नकोष) में नागदत्त, शंख, रुद्रसूरि आदि अपूर्व कथानको में लोकव्यवहार संबंधी विविध विषय, कालिकायरियकहाणय (कालिकाचार्यकथानक) में युग प्रवर्तक कालिकाचार्य की कथा, नम्मयासुदरीकहा (नर्मदासुंदरीकथा) में महासती नर्मदासुदरी का आख्यान, कुमारपाल प्रतिबोध में अहिंसा आदि द्वादश व्रत, देवपूजा, गुरुसेवा, शीलसरक्षण आदि, और प्राकृतकथासंग्रह में दान, शील, तप, भावना, सम्यक्त्व, नवकार मंत्र, ससार की अनित्यता आदि से संवन्ध रखने वाली कथा-कहानियो का वर्णन किया गया है। प्राकृतकथासंग्रह में कर्म की प्रधानता बताते हुए कहा है—"अथवा किसी को कभी भी दोष न देना चाहिए, सुख और दुख पूर्वोपार्जित कर्मो का ही फल है।"[2] सिरिवालकहा (श्री-

१. सव्वो पुव्वकयाण कम्माण पावए फलविवागं।
अवराहेसु गुणेसु य निमित्तमत्त परो होइ॥

—भव २, पृ० १६०

२. अहवा न दायव्वो दोसो कस्सवि केण वइयावि।
पुव्वज्जियकम्माओ हवति ज सुक्ख दुक्खाइ॥

—प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४७६

पालकथा) में सिद्धचक्र के माहात्म्य से श्रीपाल का कोढ नष्ट होने, तथा रयणसेहरी-कहा (रत्नशेखरीकथा) में जैनधर्म के प्रभाव से राजा रत्नशेखर के विजय प्राप्त करने की कथा वर्णित है।

इनके अतिरिक्त, पूजाष्टककथा, सुव्रतकथा, मौनएकादशीकथा, अंजनासुदरी-कथा, अनन्तकीर्ति कथा, सहस्रमल्लचौरकथा, हरिश्चन्द्रकथानक आदि कथाग्रन्थो के नाम लिये जा सकते है।

औपदेशिक कथा-साहित्य

आगे चलकर धर्मदेशना जैन कथा साहित्य का एक प्रमुख अग बन गया। यहाँ सयम, शील, तप, त्याग और वैराग्य आदि की भावनाओ को प्रमुख बताया गया। फलस्वरूप प्राकृत मे धर्मदास की उपदेशमाला, हरिभद्रसूरि का उपदेशपद, जयसिंहसूरि का धर्मोपदेशमालाविवरण, मलधारी हेमचन्द्रसूरि का भवभावना और उपदेशमालाप्रकरण (पुष्पमालाप्रकरण), वर्धमानसूरि का धर्मोपदेशमाला-प्रकरण, जयकीर्ति का शीलोपदेशमाला, मुनिसुदर का उपदेशरत्नाकर, शातिसूरि का धर्म-रत्न, आसड का उपदेशकंदलि और विवेकमजरीप्रकरण, जिनचन्द्रसूरि का सवेग-रगशाला, आदि अनेक कथा-ग्रन्थो की रचना की गयी।[1]

शांत रसप्रधान संवेगरगशाला मे संवेग की प्रधानता प्रतिपादित की गयी है–

जैसे-जैसे भव्यजनो के लिए सवेगरस का वर्णन किया जाता है, वैसे-वैसे उनका हृदय द्रवित हो जाता है- जिस प्रकार मिट्टी के बने हुए कच्चे घडे पर जल छिडकने से वह टूट जाता है। चिरकाल तक यदि तप का आचरण किया हो, चारित्र का पालन किया हो, शास्त्रो का स्वाध्याय किया हो, लेकिन यदि सवेग रस का परिपाक नहीं हुआ तो सब धान के तुष की भाँति निस्सार है।[2]

चरित-ग्रंथों में कथाएँ

प्राकृत मे चरित-ग्रंथो की भी रचना की गयी। तरेसठ शलाकापुरुषो के चरितो मे २४ तीर्थङ्करो, १२ चक्रवर्तियो, ९ वासुदेवो, ९ बलदेवो, और ९ प्रतिवासुदेवो के चरित लिखे गये। कल्पसूत्र में ऋषभ, अरिष्टनेमि, पार्श्व और महा-

१. देखिए, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४९०–५२४

२ जह जह सवेगरसो वण्णिज्जइ तह तहेव भव्वाण।
भिज्जति, खित्तजलमिम्मयामकुभ व्व हिययाइ॥
सुचिर वि तवो चिण्ण चरण सुय पि बहुपढिय।
जइ नो सवेगरसो ता त तुसखडण सव्व॥

वीर आदि तीर्थंकरो के चरितो का वर्णन किया गया। वसुदेवहिंडी में ऋषभ आदि तीर्थंकरो एवं भरत आदि चक्रवर्तियो के चरित और उनके पूर्वभवो के आख्यान दिये गये।[1] शीलांकाचार्य ने चउपन्नमहापुरिसचरिय में चौवन शलाकापुरुषो का जीवनचरित लिपिबद्ध किया। विमलसूरि के पउमचरिय में जैन रामायण और हरिवंसचरिय (अनुपलब्ध) मे कृष्ण की कथा वर्णित की गयी। उद्योतनसूरि ने अमृतमय, सरस एव स्पष्टार्थ की द्योतक विमलसूरि की प्राकृत भाषा को प्रशंसनीय कहा है।

स्वतत्र रूप से भी चरित ग्रथो की रचना हुई। गुणपाल मुनिकृत जम्बूचरित , गुणचन्द्रगणिकृत पार्श्वनाथचरित और महावीरचरित, लक्ष्मणगणिकृत सुपार्श्वनाथचरित, मानतुगसूरिकृत जयतीचरित, देवेन्द्रसूरिकृत कृष्णचरित, जिनमाणिक्यकृत कुम्मापुत्तचरिय, हेमचन्द्र आचार्य के गुरु देवचन्द्रसूरिकृत सतिनाहचरिय (शांतिनाथचरित), मलधारि हेमचन्द्रकृत नेमिनाहचरिय (नेमिनाथचरित), सोमप्रभसूरिकृत सुमतिनाथचरित, चन्द्रप्रभमहत्तरकृत विजयचन्दकेवलीचरिय, वर्धमानसूरिकृत मनोरमाचरिय, शांतिसूरिकृत पुहवीचन्दचरिय, आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है। शलाका पुरुषो के साथ-साथ जैनधर्म के उन्नायक प्रभव, जबू, शय्यंभव, भद्र बाहु, स्थूलभद्र, महागिरि, सुहस्ति, पादलिप्त, कालिक, वज्रस्वामी, आर्यरक्षित, हेमचन्द्र आदि आचार्यों तथा राजीमती, चन्दनबाला, तरंगवती, नर्मदासुन्दरी, सुभद्रा आदि आर्यिकाओ के चरित मुख्य है।

पौराणिक आख्यानों मे बुद्धिगम्य तत्त्व

जैन आचार्यों की यह विशेषता रही है कि उन्होने अपने सिद्धांतो के प्रचार के लिए केवल जनसामान्य की बोली प्राकृत को ही नहीं अपनाया, अपि तु पौराणिक आख्यानो की श्रद्धागम्य अलौकिकता के स्थान पर युक्तियुक्त बुद्धिगम्य तत्त्वो को भी प्रतिष्ठित किया।

राम और कृष्ण के लोकोत्तर चरितो का प्रणयन करते समय जैन विद्वानो का यही दृष्टिकोण रहा। रामचरित लिखते समय वाल्मीकि की रामायण का अनुकरण उन्होने नहीं किया। घोषित किया गया कि वाल्मीकिरामायण विरोधी और अविश्वसनीय बातो से भरी है। यहाँ रावण आदि को राक्षस और मासभक्षी के

1 आवश्यकचूर्णी में महावीर के और हेमचन्द्रीय परिशिष्ट पर्व के प्रथम सर्ग में जम्बूस्वामी के पूर्वभवों का वर्णन है।

रूप में चित्रित किया गया है। कुभकर्ण के विषय में उल्लेख है कि वह छह मास तक सोता था और भूख लगने पर हाथी भैस आदि को चटकर जाता था। इन्द्र को पराजित कर रावण उसे श्रृंखला में बांधकर लंका मे लाया था। जैन विद्वानो ने इस प्रकार की घटनाओ को बुद्धि द्वारा अग्राह्य बताकर असंभव घोषित किया।[1]

हरिभद्रसूरि का धूर्ताख्यान[2] भी महाभारत, रामायण और पुराणो की अतिरंजित कथाओ पर व्यंग्यस्वरूप लिखा गया है। मूलश्री (मूलदेव), कंडरीक, एलाषाढ, शश और खडपाणा नामक पाच धूर्तशिरोमणि उज्जैनी के उद्यान मे बैठे गपशप कर रहे है। पांचो में शर्त लगी कि सब अपने-अपने अनुभव सुनायें और जो इन अनुभवो पर विश्वास न करे, वह सबको भोजन दे, तथा जो अपने कथन को रामायण, और पुराणो के कथन से प्रमाणित कर दे, वह धूर्तों का शिरोमणि माना जाये।

सभी ने अपने-अपने आख्यान सुनाये, रामायण, महाभारत और पुराणो के प्रमाण देकर सिद्ध किया। खण्डपाणा ने अपनी चतुराई से एक सेठ से रत्नजटित मुद्रिका प्राप्त की और उसे बेचकर सबको भोजन खिलाया।

प्रवचन-उड्डाह होने पर उसकी रक्षा करने के लिए हिंगुशिव नाम की एक कथा देखिए—

किसी नगर में कोई माली बगीचे में से पुष्प तोड कर उन्हे बेचने के लिए मार्ग पर बैठ गया। इतने में उसे टट्टी की हाजत हुई। उसने जल्दी-जल्दी टट्टी फिर-कर उसे पुष्पो के ढेर से ढंक दिया। लोगो ने पूछा—यहाँ पुष्प क्यो डाल रक्खे है। माली ने उत्तर दिया—मुझे प्रेत-बाधा हो गई है। हिंगुशिव की मनौती करने के लिए उसे पुष्प चढ़ाये है।[3]

आश्चर्य नहीं कि जब ब्राह्मणो की अतिरञ्जित कल्पनाओ से पूर्ण पौराणिक कथाओ से पाठको का मन ऊब रहा था, पौराणिक आख्यानो को बुद्धिगम्य बना-

१. देखिए, विमलसूरि, पउमचरिय की प्रस्तावना।

२ निशीथभाष्य (२९४–९६) और चूर्णी की पीठिका में सस, एलासाढ, मूलदेव और खडा नाम के चार धूर्तो की कथा दी है। हरिभद्रसूरि ने इसी को धूर्ताख्यान मे विकसित किया।

३ दशवैकालिकचूर्णी, पृ० ४७। ढोंढ शिवा के कथानक के लिए देखिए, आवश्यक चूर्णी, पृ० ३१२, बृहत्कल्पभाष्य ५, ५९२८।

कर जैन विद्वानो ने कथा-साहित्य को एक नया मोड़ दिया ।[1]

ईसवी सन् की लगभग पहली-दूसरी शताब्दी से ही प्राकृत में कथा-साहित्य की रचना आरंभ हो गयी थी। पादलिप्त की तरंगवती, मलयवती, मगधसेना, और सघदासगणिवाचकविरचित वसुदेवहिंडी, धूर्ताख्यान आदि कथाग्रन्थो का पाँचवीं शताब्दी मे रचे गये छेदसूत्रो के भाष्यो में उल्लेख मिलता है। उद्योतनसूरि की कुवलयमाला (७७९ ई०) की प्रस्तावना मे पादलिप्त, शालवाहन, गुणाढ्य, विमलांक, देवगुप्त, हरिवर्ष, जटिल, रविषेण, और हरिभद्र आदि के नामो के साथ उनकी रचनाओं का भी उल्लेख है। इनमे पादलिप्त की तरंगवईकहा, गुणाढ्य की बृहत्कथा, विमलांक का हरिवंश, देवगुप्त का त्रिपुरुषचरित, हरिवर्ष की सुलोचना आदि रचनाएँ अनुपब्ध है। किन्तु सघदासगणिवाचक का वसुदेवहिंडी (प्रथम खण्ड), धर्मसेन महत्तर का वसुदेवहिंडी (मध्यम खण्ड), विमलांक का पउमचरिय, हरिभद्रसूरि की समराइच्चकहा, शीलाक का चउप्पन्नमहापुरिसचरिय, भद्रेश्वर की कहावली जैसी प्राकृत की प्राचीन महत्त्वपूर्ण कृतियाँ उपलब्ध है। उपदेशपद, उपदेशमाला, धर्मोपदेशमाला आदि औपदेशिक साहित्य भी इसमे जोडा जा सकता है। इन सबकी रचना ईसवी सन् की दसवीं शताब्दी तक में हो चुकी थी। तत्पश्चात् ११–१२ वीं शताब्दी मे गुजरात और राजस्थान के श्वेतांबर आचार्यो के हाथो प्राकृत कथा-साहित्य उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच गया। इस समय गुजरात मे चालुक्य, मालवा में परमार तथा राजस्थान में गुहिलोत और चाहमान राजाओ ने जैनधर्म को प्रश्रय दिया जिससे राजदरबारो में जैन महामात्यो, दण्डनायको, सेनापतियो, और श्रेष्ठियो का प्रभाव बढा और ये प्रदेश जैन विद्वानो की प्रवृत्ति के केन्द्र बन गये। इसके फलस्वरूप कहाणयकोस, णाणपंचमीकहा, कथामणिकोष, कहारयणकोस, कालिकायारिय कहाणय, नम्मयासुन्दरीकहा, कुमारवालपडिबोह, प्राकृतकथासग्रह, जिनदत्ताख्यान, सिरिवालकहा, रयणसेहरीकहा, महीवालकहा आदि सैकड़ो प्राकृत कथा ग्रन्थो की रचना की गयी।[2]

१ प्रबधचिंतामणिकार ने लक्ष्य किया है—

भृश श्रुतत्वान्न कथा पुराणा । प्रीणन्ति चेतासि तथा बुधानाम् ॥

—पौराणिक कथाओं के बार–बार श्रवण करने से पडितजनो का चित्त प्रसन्न नहीं होता ।

२ डॉ हर्टल के अनुसार, मध्यकाल से लगाकर आजतक जैन विद्वान् ही मुख्य कथाकार रहे है। इस विशाल कथा साहित्य में जो सामग्री सन्निहित है, वह लोक वार्ता के अध्येता विद्यार्थियों के लिये अत्यत उपयोगी है। वही, पृ० ११।

७ काव्य के विविध रूपों का प्रयोग

इन विद्वानो ने परम्परागत जैनकथा-साहित्य को अपनी कृतियो का आधार वनाया। सघदासगणिवाचक ने गुरु परम्परागत रचनाओ के आधार पर लिखित वसुदेवहिडी मे विष्णुकुमारचरित के प्रसग में विष्णुगीतिका की उत्पत्ति बतायी है।[1] हरिभद्रसूरि ने समराइच्चकहा में प्रश्नोत्तरपद्धति[2] एवं समस्यापूर्ति[3] का प्रयोग किया है।

१ यह साधुओं के गुणकीर्तन करते समय गायी गयी है—

उवसम साहुवरिट्ठया ! न हु कोवो वण्णिओ जिणिंदेहिं।
हुति हु कोवणसील्या, पावति वहूणि जाइयव्वाइ॥

—हे साधुश्रेष्ठ ! शात होओ ! जिनेन्द्र भगवान् ने भी कोप को उत्तम नहीं कहा। जो कोपशील होते हैं, वे ससारभ्रमण को प्राप्त होते है। पृ० १३१

एक अन्य गीत देखिए—

अट्ठ नियठा सुरट्ठ पविट्ठा, कविट्ठस्स हेट्ठा अह सन्निविट्ठा।
पडिय कविट्ठ भिण्ण च सीसं, अव्वो ! अव्वो ! वाहरति हसति सीसा॥

—आठ निर्ग्रंथों ने सौराष्ट्र में प्रवेश किया। कैथ के वृक्ष के नीचे वे बैठ गये। वृक्ष पर से कैथ टूटकर गिरा, उनका सिर फट गया। शिष्य आहा ! आहा ! करके हसने लगे।

२ प्रश्नोत्तर शैली देखिए—

प्रश्न – किं देति कामिणीओ ? के हरपणया ? कुणति किं भुयगा ? कच मऊहेहि ससी धवलइ ?

१–कामिनियाँ क्या देती हैं ?
२–शिवको कौन प्रणाम करता है ?
३–सर्प क्या करते है ?
४–चन्द्रमा अपनी किरणों द्वारा किसे धवल करता है ?

उत्तर – नहगणाभोय

—(१) नख, (२) गण, (३) भोग (फण), (४) नभ के आँगन का विस्तार। (८, पृ ७४४)

सरस्वतीकण्ठाभरण (२, १४८) में प्रश्नोत्तर का निम्नलिखित लक्षण किया है—

यस्तु पर्यनुयोगस्य निर्भेद क्रियते बुधै।
विदग्धगोष्ठ्या वाक्यैर्वा तद्धि प्रश्नोत्तर विदु॥

३ आचारागनिर्युक्ति में एक ही समस्या की पूर्ति परिव्राजक, तापस, बौद्ध और जैन साधु से कराई गई है। गूढचतुर्थगोष्ठी मे चतुर्थ पद की पूर्ति की गई है—

सुरयमणस्स रइहरे नियंबिंवभमिर वहू धुयकरग्गा।
तक्खणवुत्तविवाहा
समस्यापूरक चतुर्थ पद —— वरयस्स कर निवारेइ।

—रतिघर मे, अभिनवपरिणीता, सुरतमन वाली वधू अपने नितम्बों को घुमाती हुई, उगलियों को नचाती हुई वर के हाथ को रोकती है। (८, पृ० ७५२)

हेमचन्द्र के काव्यानुशासन (५, ४, पृ० ३२२–२३) मे क्रिया, कारक, सबन्ध और पाद के भेद से गूढ के चार प्रकार बताये हैं।

हरिभद्र के शिष्य उद्द्योतनसूरि ने अपनी प्रसादपूर्ण चम्पूशैली में लिखी हुई कुवलयमाला मे विदग्ध पुरुषो द्वारा बुद्धिचातुर्य से परिकल्पित विनोदोत्पादक (१) प्रहेलिका,[1] (२) वूढा (?), (३) अंत्याक्षरी,[2] (४) बिन्दुमती,[3] (५) अट्ठाविडओ (अष्टपिटक),[4] (६) प्रश्नोत्तर,[5] गूढ़ उत्तर,[6] (७) पट्ठट्ठ,[7] (८) अक्षरच्युत,[8]

१ दण्डी के काव्यादर्श (३, ९७) में प्रहेलिका का निम्न लक्षण किया गया है—

क्रीडागोष्ठीविनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्णमन्त्रणे ।
परव्यामोहन चापि सोपयोगा प्रहेलिका ॥

हेमचन्द्र आचार्य ने प्रश्नोत्तर, प्रहेलिका और दुर्वच आदि को कष्टकाव्य बताकर उसमें काव्यत्व को अस्वीकार किया है । काव्यानुशासन की टीका (५, ४, पृ० ३२३) में प्रहेलिका का निम्न उदाहरण दिया है—

पयस्विनीना धेनूना ब्राह्मण प्राप्य विंशतिम् ।
ताभ्योऽष्टादश विक्रीय गृहीत्वैका गृह गत ॥

(यहाँ धेनूना में समास करना चाहिए—धेन्वा ऊनाम्)

श्रावकप्रतिक्रमणसूत्र की अर्थदीपिकावृत्ति (पृ० १२७) के मन्त्रीपुत्रीकथानक में किसी वादी ने मन्त्रीपुत्री के ५६ प्रश्नों का उत्तर प्राकृत भाषा के चार अक्षरो मे दिया है । देखिए, ज्ञानाञ्जलि (पृ० ५७) में सकलित मुनि पुण्यविजयजी का लेख, वडोदरा, १९६९ ।

२. अत्याक्षरी प्रहेलिका मे कविता के अत्य अक्षर को लेकर उससे नयी कविता बनायी जाती है ।

उद्योतनसूरि ने उक्त तीनों को गोपालों के बालकों में भी प्रसिद्ध बताया है ।

३ आदि और अतिम अक्षर छोडकर बाकी अक्षरों के स्थान पर केवल बिन्दु दिये जाते हैं, फिर उसका अर्थ लगाया जाता है, उसे बिन्दुमती कहते हैं ।

४. बत्तीस कोठों में व्यस्त-समस्त रूपसे श्लोक का एक-एक अक्षर लिखना अट्ठाविडअ है ।

५ दो, तीन अथवा चार प्रश्नों का उत्तर एक ही पद मे दिये जाने को प्रश्नोत्तर कहते हैं । प्रश्नोत्तर के अनेक भेद हैं, जैसे एक समान अर्थ वाला, भिन्न-भिन्न अर्थ वाला, मिश्र, आलापक, लिंगभिन्न, विभक्तिभिन्न, कालभिन्न, कारकभिन्न, वचनभिन्न, सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, पैशाची, मागधी, राक्षसी, मिश्र, आदि-उत्तर, बाह्य-उत्तर ।

६. प्रश्नोत्तर का ही भेद है । प्रश्न के अदर ही गूढ उत्तर छिपा रहता है, इसे गूढ उत्तर कहते हैं । परबुद्धिवंचन मे यह पटु है ।

७. कोई प्रश्न किया जाये और उसका उत्तर दिया जाये, फिर भी उसे न समझ सकें, ऐसी प्रकट और गूढ रचना को पट्ठट्ठ (पृष्ठार्थ) कहते हैं ।

८ जहाँ एक अक्षर के उड़ जाने से श्लेष नहीं रहे, किंतु उसमें अक्षर जोड़ने से वह ठीक हो जाय उसे अक्षरच्युत कहते हैं । उदाहरण के लिए—

कुर्वन्दिवाकरश्लेष दधच्चरणडम्बरम् ।
देव ! यौष्माकसेनाया करेणु प्रसरत्यसौ ॥ (कादम्बरी, पीटर्सन, बम्बई १९००)

यहाँ 'करेणु' शब्द में से 'क' निकाल देने से द्वितीय अर्थ की प्रतीति होती है ।

(९) मात्राच्युत,[1] (१०) बिन्दुच्युत, (११) गूढ़चतुर्थपाद,[2] (१२) भाणियव्विया (भणितव्यता), (१३) हृदयगाथा, (१४) पोम्ह (पद्म), (१५) सविधानक (१६) गाथार्ध, (१७) गाथाराक्षस और (१८) प्रथमाक्षररचना आदि महाकवियो द्वारा कल्पित कवियो के लिए दुष्कर प्रयोगो का वर्णन किया है।

इसके अतिरिक्त कहारयणकोस,[3] जिनदत्ताख्यान,[4] सिरिवालकहा,[5] उपदेशपद,[6] धर्मोपदेशमालाविवरण,[7] सुरसुंदरीचरियं[8] आदि कथा-ग्रन्थो में मध्य-उत्तर, बहि-उत्तर, एकालाप और गतप्रत्यागत नामक प्रश्नोत्तर तथा समस्यापूर्ति, पादपूर्ति, प्रहेलिका, वक्रोक्ति, व्याजोक्ति और गूढोक्ति आदि के उदाहरण पाये जाते है।

१ जिसमें क्रिया का लोप हो और मात्रा के सद्भाव से तद्भाव रहे, वह मात्राच्युत है। उदाहरण—

मूलस्थितिमध कुर्वन् मात्रैर्जुष्टो गताक्षरैः।
विट सेव्य कुलीनस्य तिष्ठत पथिकस्य स॥

यहाँ 'विट' मे से 'इ' मात्रा हटा देने से 'वट' की प्रतीति होती है।

इसी प्रकार विन्दुच्युत समझना चाहिए। हेमचन्द्र ने मात्राच्युत, अर्धमात्राच्युत, बिंदुच्युत और वर्णच्युत—ये च्युत के चार प्रकार बताये हैं। इनके उदाहरण भी दिये हैं। (काव्यानुशासन, ५, ४, पृ० ३१५–२२)।

२ जिसमे प्रथम तीन पादों मे चतुर्थ पाद गूढ रहता है, उसे गूढचतुर्थपाद कहते हैं।

इसी प्रकार भाणियव्विया (भणितव्यता), हृदयगाथा, पोम्ह (पद्म), गाथार्ध, सविधानक, गाथाराक्षस और प्रथमाक्षररचितगाथा के लक्षण समझने चाहिए। प्रथमाक्षररचितगाथा का उदाहरण—

दाणदयादक्खिण्णा सोम्मा पयईए सव्वसत्ताण।
हसि व्व सुद्धपक्खा तेण तुम दसणिज्जासि॥

—दान और दया में कुशल, स्वभाव से समस्त जीवों के प्रति सौम्य और हसिनी के समान तुम शुद्ध पक्ष वाली हो, अतएव दर्शनीय हो।

इस गाथा के तीनों चरणों के प्रथम अक्षर लेने से 'दासो ह' (अर्थात्, मै दास हूँ) रूप बनता है।

३ प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४५५

४. वही, पृ० ४७८

५ वही, पृ० ४८०

६ औत्पत्तिकी, वैनियिकी, कर्मजा और पारिणामिकी बुद्धियों के उदाहरणों के लिए देखिए, पृ० ४८–९७।

७. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ५०२

८. वही, पृ० ५४०–४१

सुभाषित

प्राकृत में सुभाषित ग्रंथों की अलग से रचना की गयी। इनमें जिनेश्वरसूरि (११९५ ई०) कृत गाथाकोष, लक्ष्मणकृत गाथाकोष, मुनिचन्द्रकृत रसाउल, तथा रसालय, विद्यालय, साहित्यश्लोक और सुभाषित का उल्लेख किया जा सकता है।[1] कथा-ग्रन्थों में भी अनेक रोचक सुभाषित भी मिलते हैं। कुछ सुभाषितों पर ध्यान दीजिए-

(क) वरि हलिओ वि हु भत्ता अनन्नभज्जो गुणेहि रहिओ वि।
मा सगुणो बहुभज्जो जइ रायाचक्कवट्टी वि॥
—गुणों से विहीन एक पत्नीवाला हालिक (किसान) अनेक भार्या वाले गुणवान् चक्रवर्ती राजा की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

(ख) उप्पण्णाए सोगो वड्ढंतीए य वड्ढए चिंता।
परिणीयाए दइतो जुवइपिया दुक्खिओ निच्च॥
—उसके पैदा होने पर शोक होता है, बड़ी होने पर चिन्ता होती है और विवाह कर देने पर कुछ न कुछ देते ही रहना पड़ता है। इस प्रकार युवती का पिता सदा दुख का भागी बना रहता है।[2]

(ग) उच्छूगामे वासो सेयं वत्थं सगोरसा साली।
इट्ठा य जस्स भज्जा पिययम! किं तस्स रज्जेण॥
—हे प्रियतम! ईखवाले गांव में वास, श्वेतवस्त्रों का धारण, गोरस और शालि का भक्षण तथा इष्ट भार्या जिसके मौजूद है, उसे राज्य से क्या प्रयोजन?[3]

(घ) पढ़म हि आवयाणं चिंतेयव्वो नरेण पडियारो।
न हि गेहम्मि पलित्ते अवड खणिउ तरइ कोई॥
—विपत्ति के आने से पहले ही उसका उपाय सोचना चाहिए। घर में आग लगने पर क्या कोई कुआ खोद सकता है?[4]

(ङ) राईसरिसवमित्ताणि, परछिद्दाणि पाससि।
अप्पणो बिल्लमित्ताणि, पासतो वि न पाससि॥
—दूसरो के तो राई और सरसो के समान क्षुद्र छिद्रो को भी तू देखता है, और बेल जितने बडे अपने छिद्रों को देखता हुआ भी नहीं देखता।[5]

1. प्राकृत साहित्य, पृ० ५८४-८५
2. णाणपचमीकहा, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४४२
3. जिनदत्ताख्यान, प्राकृत साहित्य, पृ० ४७९
4. भवभावना, प्राकृत साहित्य, पृ० ५१३
5. उत्तराध्ययन, शान्त्याचार्य टीका, २ १४०, पृ० १३८अ

३.

वसुदेवहिंडी और गुणाढ्य की बृहत्कथा

वसुदेवहिंडी और बृहत्कथा

डाक्टर एल० आल्सडोर्फ ने वसुदेवहिंडी की भाषा-संबंधी विशेषताओ पर प्रकाश डालते हुए इस ग्रन्थ को गुणाढ्य की अनुपलब्ध बड्डकहा (बृहत्कथा)[1] का जैन संस्करण बताया है। उनकी मान्यता है कि वसुदेवहिंडी नष्ट हुई बृहत्कथा की पुनर्रचना मे अत्यन्त उपयोगी है। वे लिखते है—"वसुदेवहिंडीकार की योजना के क्षेत्र की तुलना आगमबाह्य जैन साहित्य के किसी ग्रन्थ से नहीं की जा सकती। इस ग्रन्थ की शैली न संक्षिप्त है और न शुष्क। यह सजीवता एवं लाक्षणिकता लिए हुए है तथा तत्कालीन जीवित भाषा का अत्यन्त मनोरजक चित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है। अलंकृत वर्णनो से यह भाषा सजीव हो उठी है। इस प्रकार के वर्णन भारतीय कवियो को बहुत प्रिय रहे है।"[2]

उधर फ्रेंच विद्वान् प्रोफेसर एफ० लाकोत ने गुणाढ्य की बृहत्कथा के रूपान्तर बुधस्वामीकृत बृहत्कथाश्लोकसग्रह, क्षेमेंद्रकृत बृहत्कथामजरी तथा सोमदेवभट्ट-कृत कथासरित्सागर का तुलनात्मक अध्ययन कर बृहत्कथाश्लोकसग्रह को बृहत्कथा के अधिक निकट बताया है। लाकोत की मान्यता है कि बृहत्कथामंजरी और कथा-

१ भोजकृत सरस्वती कण्ठाभरण के टीकाकार आसड के मतानुसार, हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण (८ ४ ३२६) में उद्धृत पैशाची गाथा बृहत्कथा का आदि नमस्कार है—

पनमथ पनय—पकुप्पित—गोली—चलनग्ग—लग्ग-पति—बिंब ।
तसमु नख—तप्पनेसु एकातस—तनु-थल लुद्द ॥

नच्चन्तस्स य लीला-पातुक्खेवेन कंपिता वसुधा ।
उच्छल्लन्ति समुद्दा सइला निपतन्ति त हल नमथ ॥

(भारतीय विद्या ३ १, पृ० २२८—३० १९४५)

२ बुलेटिन आफ द स्कूल आफ ओरिंटिअल स्टडीज, जिल्द ८, पृ० ३४४—४९, १९३५—३७ मे 'द वसुदेवहिंडी, ए स्पेसिमेन आफ आर्किक जैन महाराष्ट्री' नामक लेख, तथा १९वीं अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्य विद्या परिषद्, रोम, १९३५ में Eine new Version der velorenen Brihatkatha of Gunadhya (a new Version of the lost Brihatkatha of Gunadhya) नामक जर्मन लेख इसके गुजराती और हिन्दी अनुवाद के लिए देखिए क्रमश प्रोफेसर भोगीलाल जे० साडेसरा कृत वसुदेवहिंडी का गुजराती अनुवाद, पृ० ९—१३, तथा कथासरित्सागर (१) भूमिका, पृ० १२—१७, बिहार राष्ट्रभाषापरिषद्।

सरित्सागर वृहत्कथाश्लोकसग्रह का ही संक्षिप्त संस्करण है।'

उक्त दोनो विद्वानो के कथनो की सार्थकता की सिद्धि में, गुणाढ्य की वृहत्कथा पर आधारित स्वीकार किये जाने वाले वसुदेवहिंडी और वृहत्कथाश्लोकसग्रह का सक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

वसुदेवहिंडी और वृहत्कथाश्लोकसंग्रह

वृहत्कथाश्लोकसग्रह, जो वृहत्कथा का नेपाली सस्करण कहा जाता है, की रचना सस्कृत मे लगभग पाँचवीं शताब्दी में हुई। लेकिन गुणाढ्य की वृहत्कथा

१ वृहत्कथाश्लोकसग्रह कथासरित्सागर और वृहत्कथामजरी की अपेक्षा अधिक सरल है। श्लोकसग्रह के लेखक ने प्राप्त सामग्री को सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया है। विषय वस्तु अत्यन्त सीमित है। उक्त दोनों रचनाओ की तुलना में यहाँ कथाएँ अधिक विस्तारपूर्वक दी गयी हैं। लेखक सामान्य जनता के रीतिरिवाजो और रहन-सहन से पूर्णतया परिचित जान पड़ता है। वृहत्कथाश्लोकसग्रह का शब्दकोष अत्यन्त समृद्ध है, कितने ही शब्द निश्चित रूप से प्राकृत से लिये गये हैं, और वहुत से शब्द केवल कोषकारो के कोषों में ही सग्रहीत हैं, अनेक शब्द नये भी घडे गये हैं। अनेक शब्दों को हेमचन्द्राचार्य ने उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। भाषा प्राचीन है; अप्रचलित शब्दों का प्रयोग मिलता है। शैली रोचक और सरल है। देखिये Essai sur Gunadhya at la Brihatkatha (पेरिस, १९०८) का क्वार्टर्ली जरनल आफ द मिथिक सोसायटी, वंगलूर सिटी, १९२३ में प्रकाशित अग्रेजी अनुवाद। वृहत्कथाश्लोकसग्रह का देवनागरी लिपि में मूल सस्करण और उसका फ्रेंच अनुवाद १९०८ में पेरिस से प्रकाशित हुआ है।

विटरनित्स ने लाकोत के उक्त कथन की पुष्टि की है। उनकी मान्यता है कि यद्यपि गुणाढ्य और वुधस्वामी के समय मे काफी अन्तर है, फिर भी क्षेमेन्द्र और सोमदेव के काश्मीरी सस्करणों की अपेक्षा वृहत्कथाश्लोकसग्रह वृहत्कथा के निकट होने की प्रभावशाली छाप मन पर डालता है। उदाहरण के लिए, वृहत्कथाश्लोकसग्रह में गोमुख को एक मनोरजक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है जबकि काश्मीरी सस्करणों में वह केवल एक कथक के रूप मे आता है। फिर, ५ वें सर्ग में यवन देश के कारीगरों का उल्लेख हैं जो आकाशयत्र के निर्माण करने मे कुशल थे, भारत के निवासी इस कला से अनभिज्ञ थे। १८ वे सर्ग में राजगृह के सार्थवाह की पुत्री एक यवनी से पैदा हुई थी। इससे हमें उस प्राचीनकाल का सकेत मिलता है जबकि यवन देश के कारीगरो ने उत्तर भारत में ख्याति प्राप्त की थी। भारतीय साहित्य मे वहुत ही कम ग्रन्थ ऐसे मिलेंगे जिनमे हास परिहास की मात्रा इतने विशद् रूप मे पायी जाती हो जितनी कि प्रस्तुत रचना में। सामान्यजनों का जीवन यहाँ खुशहाली और हँसी खुशी के जीवन के रूप में चित्रित है। हिस्ट्री आफ इडियन लिटरेचर, जिल्द ३, भाग १, पृ० ३५०–५१। ए०वी० कीथ और जे० हर्टेल ने इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं।

का रूपान्तर होने से इसकी सामग्री ईसा की प्रथम शताब्दी की मानी गयी है। यही बात सघदासगणिवाचक के वसुदेवहिंडी के समय के सबंध मे कही जा सकती है। आवश्यकचूर्णीकार जिनदासगणि महत्तर (६७६ ई०) ने ऋषभदेव के चरित्रवर्णन-प्रसग तथा वल्कलचीरी और प्रसन्नचंद्र के कथावर्णन मे वसुदेवहिडी को आधार रूप में उद्धृत किया है। इससे इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता का अनुमान लगाया जा सकता है।

वसुदेवहिडी में अधकवृष्णि वंशोत्पन्न कृष्ण के पिता वसुदेव और बृहत्कथा-श्लोकसग्रह में वत्सराज उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त—दोनो देश-देशान्तरो मे परि-भ्रमण कर विद्याधरो और राजकन्याओ से विवाह करते है। सघदासगणिवाचक के वसुदेवहिडी मे वसुदेव के २९ और धर्मसेनगणि के मध्यम खण्ड में उसके ७१ विवाहो का वर्णन है।[1] वसुदेवहिडी की भाँति बृहत्कथाश्लोक-सग्रह भी अपूर्ण है और यहाँ लेखक २८ विवाहो मे से केवल ६ का वर्णन कर सका है। वसुदेवहिडी में छह प्रकरण है—कथोत्पत्ति, धम्मिल्लहिडी, पेढिया, मुख, प्रतिमुख और शरीर। कथोत्पत्ति, पीठिका और मुख मे कथा का प्रस्ताव, प्रतिमुख में वसुदेव की आत्मकथा और शरीर में २९ लंभको की कहानियाँ है। अंतिम लभक त्रुटित तथा १९ और २० लभक अनुपलब्ध है। बृहत्कथाश्लोकसग्रह जिसका केवल एक चतुर्थांश ही उपलब्ध है—मे तीसरे सर्ग का नाम कथामुख है। वसुदेवहिडी के तीसरे लंभक में गंधर्वदत्तालंभक तथा तेरहवे और पद्रहवें लभको में वेगवतीलभक का वर्णन है। बृहत्कथाश्लोकसग्रह में तेरहवें और चौदहवें सर्गो में वेगवतीदर्शन और पंद्रहवें में वेगवतीलाभ, तथा सोलहवें सर्ग में गधर्वदत्तालाभ, व चपाप्रवेश और सत्रहवे सर्ग मे गधर्वदत्ताविवाह नामक प्रकरण है। दोनो ही रूपान्तरो मे गंधर्वदत्ता वणिक् की

१ धर्मसेनगणि महत्तर ने वसुदेवहिंडी के मध्यम खड की प्रस्तावना मे सूचित किया है—"वसुदेव ने १०० वर्ष तक परिभ्रमण करके १०० कन्याओ से विवाह किया। सघदासगणि वाचक ने श्यामा से लेकर रोहिणी तक २९ लभकों में २९ विवाहों का वर्णन किया है। शेष ७१ विवाहा को विस्तार भय से उन्होंने छोड़ दिया है। लौकिक शृङ्गार कथा की प्रशसा को सहन न करके मैने, आचार्य के समीप निश्चय करके प्रवचन के अनुराग से, आचार्य के आदेश से, मध्यम के लभको के साथ कथासूत्र को जोड़ा है।" मुनि पुण्यविजय-जीकी सशोधित हस्तलिखित प्रति, पृ ४-५। इसका मतलब है कि धर्मसेन ने वसुदेवहिंडी के २९वे लभक के बाद से अपने कथासूत्र का आरम्भ नहीं किया। उन्होंने एणीपुत्रक नामक राजा की पुत्री प्रियगुसुदरी नामक लभक के साथ अपने ७१ लभकों को जोड़ा है। यही कारण है, यह ग्रन्थ मध्यम खड नाम से कहा जाने लगा।

पुत्री है। वसुदेवहिंडी में कालिंदसेना की गणिकापुत्री सुहिरण्या और बृहत्कथाश्लोक-सग्रह में कलिंगसेना महागणिका की पुत्री मदनमंजुका के वर्णन में बहुत समानता है। काश्मीरी रूपान्तरों में मदनमंजुका को एक बौद्ध राजा की दौहित्री बताया है। दोनों ही संस्करणों में गोमुख नायक के मित्र के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है और बृहत्कथाश्लोकसग्रह (२५ वा सर्ग) में तो उसके विग्रह का आख्यान वर्णित है। वसुदेवहिंडी में बृहत्कथा की काव्यशक्ति और बृहत्कथाश्लोकसग्रह की लाक्षणिकता के दर्शन होते हैं।

विद्याधरों के पराक्रम

वसुदेवहिंडी और बृहत्कथाश्लोकसग्रह दोनों ही रचनाओं में विद्याधर जाति के लोगों का वर्णन है।

कथासरित्सागर के रचयिता सोमदेवभट्ट ने गुणाढ्य की बृहत्कथा को अपनी रचना का मूलाधार बताते हुए कैलाश पर्वत पर विराजमान शिव और पार्वती के सवाद का उल्लेख किया है। पार्वती शिवजी से कोई रम्य कथा सुनाने का अनुरोध करती है। अपनी पत्नी का अनुरोध स्वीकार कर वे विद्याधरों की कथा सुनाते है, देवतागण सदा सुख में और मानव जाति के लोग सदा दुःख में डूबे रहते है, अतएव दोनों के ही चरित उत्कृष्ट रूप से मनोहर नहीं होते। यह जानकर शिवजी सुख-दुःख से मिश्रित विद्याधरों के अपूर्व और अद्भुत चरित सुनाना ही पसन्द करते हैं।[1]

गुणाढ्य के पूर्व भी लेखकों ने देवी-देवताओं के चरितों की रचनाएँ की होगी लेकिन कालान्तर में पाठक इन चरितों को सुनते-सुनते ऊब गये। अतएव गुणाढ्य ने प्राचीन आख्यानों की परम्परा से हटकर विद्याधरों के अद्भुत चरित्रों का वर्णन करना हितकारी समझा। वत्सराज उदयन के पुत्र और विद्याधरों के अधिपति नरवाहनदत्त के साहसिक कार्यों का यहाँ वर्णन किया गया है।

प्राचीन जैन कथा-साहित्य में विद्याधरों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वे आकाशगामी (खेचर) होने के कारण श्रेष्ठ विमानों द्वारा यात्रा किया करते है। जैनधर्म के उपासक होने के कारण वे नदीश्वर या अष्टापद (कैलाश) की यात्रा

१ एकांतसुखिनो देवा मनुष्या नित्यदुःखिता।
दिव्यमानुषचेष्टा तु परभागे न हारिणी॥
विद्याधराणा चरितमतस्ते वर्णयाम्यहं। १ १. ४७-८

के लिए गमन करते है। वे श्रमणदीक्षा भी स्वीकार करते है। तीर्थंकर ऋषभदेव को विद्याधरो का पालक बताया गया है। अनेक विद्याएँ उन्होने विद्याधरो को प्रदान कीं।

मानवो से साथ विद्याधरो के सहानुभूतिपूर्ण सम्बन्ध बताये गये है।[1] दोनो में सौहार्द था और शादी–विवाह तक होते थे। यदि कोई विद्याधर किसी अनगार (जैनसाधु), या दम्पति को कष्ट पहुँचाये अथवा किसी परयुवति का जबर्दस्ती से अपहरण करे तो उसके विद्या से भ्रष्ट हो जाने की आशंका रहती थी। विद्याधरगण जब धरण नामक नागेंद्र का कोप शान्त करने उसके पास पहुँचे तो धरण ने उन्हे फटकारते हुए कहा—"देखो, आज से विद्याओ के सिद्ध करने से ही वे तुम्हारे वश में होगी। लेकिन यदि विद्यासिद्ध होने पर जिनगृह, अनगार अथवा किसी दम्पति का अपराध करोगे तो विद्याओ से भ्रष्ट हो जाओगे। इस विज्जुदाढ़ नामक विद्याधर नरेश के वश में पुरुषो को महाविद्याएँ सिद्ध नहीं होगी, स्त्रियो को भी सोपसर्ग और दुखपूर्वक सिद्ध होगी अथवा देव, साधु और महापुरुष के दर्शन से सुखपूर्वक सिद्ध हो सकेगी।[2]

कथा-प्रसगों की समानता

१ कोक्कास बढई

(अ) **वसुदेवहिंडी** ताम्रलिप्ति में धनद नामक बढई। पुत्रोत्पत्ति। दरिद्रता के कारण माता-पिता की मृत्यु, धनपति सार्थवाह के घर पुत्र का पालन। कंडिकशाला में कुक्कुस (अथवा कुकुस) भक्षण करने के कारण कोक्कास नाम।[3] धनपति सार्थवाह के पुत्र धनवसू का यवन देश की यात्रा के लिए यान-पात्र सज्जित। कोक्कास भी साथ में। यवनदेश पहुँचकर व्यापार। कोक्कास पडोस के एक बढई के घर दिन व्यतीत करता। अपने पुत्रो को वह अनेक प्रकार के शिल्प कर्म की शिक्षा देता लेकिन वे न सीखते। कोक्कास बीच-बीच में उनकी सहायता करता। आचार्य ने कोक्कास को काष्ठकर्म की शिक्षा दी।

१ सर्प से दष्ट सामदत्ता ने विद्याधर युगल के स्पर्श मात्र से चेतना प्राप्त की।
वसुदेवहिंडी पृ० ४७

२ वही पृ० २६४, २२७। कथासरित्सागर में अपनी विद्या की शेखी बघारने के कारण विद्याभ्रष्ट हुए जीमूतवाहन की कथा आती है। भरहुत के शिलालेखों (२०९, में विद्याधरों का उल्लेख है। विद्या और विद्याधरो के लिये देखिए, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ० ३४३–५२, कुवलयमाला २१७, २१८, पृ० १३१–३२,

३. कुक्कुस, कुक्कस कुक्कास, कोक्कस, कोकस, कोक्कास, कोकास कोक्कोस और कोक्कास पाठान्तर है। वृहत्कथाश्लोकसग्रह में पुक्कस।

कोक्कास का ताम्रलिप्ति-आगमन। ताम्रलिप्ति में दुष्काल। कोक्कास ने अपनी आजीविका चलाने और राजा को अपनी शिल्पकला का ज्ञान कराने के लिए कपोत युगल सज्ज किये। ये कपोत प्रतिदिन राजा के कलमशालि लेकर आ जाते। कोक्कास के यंत्रमय कपोत युगल शालि चुग जाते हैं, इस बात का पता लगने पर शिल्पी को राजदरबार में उपस्थित किया गया। राजा ने सतुष्ट होकर उसका सम्मान किया। राजा की आज्ञा से आकाशगामी यंत्र सज्जित किया गया। आकाश की सैर करते हुए दोनोंका कालयापन। राजा के साथ सैर करने की महारानी की इच्छा। कोक्कास ने निवेदन किया कि यंत्र तीसरे आदमी का भार वहन नहीं कर सकता। रानी का पुन: अनुरोध। राजा रानीको साथ लेकर चला। कुछ दूर उडने पर यत्र के बिगड़ जाने से वह पृथ्वी पर आ गिरा। तोसलि नगर मे कोक्कास यत्र को ठीक करने के औजार लने गया। बढ़ई के घर पहुँच उसने बासी मांगी। बढई ने कहा कि वह राजा के लिए रथ बना रहा है, वासी नहीं मिल सकती। कोक्कास ने कहा—लाओ, तुम्हारा रथ मैं बना दूँ। बढ़ई समझ गया कि वह कोक्कास होना चाहिए। उसने काकजंघ राजा को कोक्कास के आने का समाचार दिया। काकजघ ने राजा और रानी को कैद कर लिया। कोक्कास से राजकुमारो को शिल्पकला की शिक्षा दिलवायी। कोक्कास ने आकाशगामी दो घोटक-यंत्रो का निर्माण किया। एक बार कोक्कास सोया हुआ था, तो राजकुमार घोटकयत्र लेकर आकाश में उड गये। उनके पास यत्र को वापिस लौटाकर लाने की कील नहीं थी, अत. मरण अवश्यभावी था। राजा ने कोक्कास के वध की आज्ञा सुनायी। एक राजकुमार ने कोक्कास को यह दुखद समाचार सुनाया। कोक्कास ने चक्रयत्र सज्जित किया। कुमारो को उस पर सवार हो जाने को कहा। उसने बताया कि जब वह शख फूके तो शख की ध्वनि सुनकर वे बीच की कील पर प्रहार करे। ऐसा करने से यान आकाश में उड जायेगा। राजकुमार यान मे सवार हो गये। वध के लिए ले जाते समय कोक्कास ने शख की ध्वनि की। राजकुमारो ने बीच की कील पर प्रहार किया और वे चक्रयत्र की शूली में बिधकर मर गये। कोक्कास का वध कर दिया गया।[1]

---

1 पृ० ६१–६३। आवश्यक निर्युक्ति, ९२४ मे शिल्पसिद्धि मे कोक्कास बढई का दृष्टात दिया है। आवश्यकचूर्णी पृ० ५४१ मे यह कहानी कुछ हेरफेर के साथ मिलती है। कोक्कास को यहाँ शूर्पारक का निवासी बताया है जो उज्जयिनी मे आकर रहने लगा था। यवन देश में जाकर शिल्प सीखने की बात का यहाँ उल्लेख नहीं है। राजा अपनी महारानी के साथ आकाश की सैर करता इसलिये अन्य रानियों ने ईर्ष्यावश यत्र की कील छिपा दी जिससे यत्र जमीन पर गिर पड़ा। देखिये, दो हजार बरस पुरानी कहानियाँ (प्रथम सस्करण) 'कोक्कास बढई' कहानी।

(आ) बृहत्कथाश्लोकसंग्रह . उदयन की रानी पद्मावती ने विमान में सवार हो पृथ्वी के भ्रमण की इच्छा व्यक्त की। उदयन के मंत्री रुमण्वत ने शिल्पियो को बुलाकर आकाशगामी यंत्र तैयार करने का आदेश दिया। शिल्पियो ने उत्तर दिया कि वे केवल जलयत्र, अश्मयंत्र, पाशुयंत्र और काण्डराशिकृत यत्र—इन चार प्रकार के यंत्रो[1] का ही निर्माण करना जानते है, आकाशयंत्र यवनदेशवासी ही बना सकते है।[2] महासेन का पुक्कस नामक बढई सेना के साथ सौराष्ट्र गया हुआ था। वहाँ विश्विल नामक एक कुशल शिल्पी से उसकी भेट हुई। पुक्कस ने सर्वगुणसम्पन्न अपनी रत्नावली नाम की कन्या का उसके साथ विवाह कर दिया। विश्विल ने जंगल मे से लकडियाँ काटकर उनसे यवनयत्रो (यावनानि यंत्राणि) का निर्माण किया। आरोग्य प्रदान करने वाले और भोजन बनाने के उपकरण तैयार करके उनसे जो धन की प्राप्ति होती, उसे अपने श्वसुर को दे देता। एक बार विश्विल काशी देश के राजा का आदेश पाकर देवकुल के निर्माण के लिए वाराणसी गया। विश्विल वहाँ से कुक्कुटयत्र में बैठकर रात्रि के समय चुपचाप अपनी पत्नी से मिलने आता और सुबह होने के पूर्व ही लौट जाता। एक बार दूतो ने उसे देख लिया। उनके पाँव पडकर विश्विल ने उसके आकाशयत्र द्वारा आगमन की बात किसी से न कहने की प्रार्थना की, क्योकि यह विज्ञान यवनदेश के लोगो के सिवाय और किसी को ज्ञात नहीं था।[3] कुछ दिनो बाद विश्विल आकाशयत्र मे

---

१ कथासरित्सागर ६ ३ १७ २२ मे अनेक प्रकार के मायायत्रो का उल्लेख है। काष्ठ की बनी हुई यत्र पुत्तलिका चाबी घुमाने से आकाश मे उड जाती थी, कोई नाचने लगती थी और कोई वार्तालाप करने लगती थी। अपने पति की सेवा के लिए सोमप्रभा ने आकाशमार्ग से उडकर अपने घर गमन किया। बृहत्कल्पभाष्य (४ ४९१५) में यवन देश में यन्त्रमय प्रतिमाओं के निर्माण करने का उल्लेख है।

२ इससे यवन देश के साथ भारत के सबंधों और सास्कृतिक आदान-प्रदान का होना सूचित होता है। वसुदेवहिंडी (पृ० ३८–३९) में कौशाम्बी मे यवनदेश के अधिपति द्वारा भेजे हुए दूत के आगमन का उल्लेख है। कौशाम्बी के राजा ने उसका आदर-सत्कार किया। राजा के पुत्र आनन्द को रुग्ण देखकर यवनदूत ने उसके विषय मे प्रश्न किया। उसने कहा कि क्या उस देश में औषधियाँ नहीं मिलतीं अथवा वैद्य नहीं हैं जो राजपुत्र की यह दशा है। उसने नव उत्पन्न अश्वकिशोर के रक्त में थोड़ी देर के लिए रोगी को रखने के लिए कहा।

३ यवनों के 'खट्वाघटनविज्ञान' का भी यहाँ उल्लेख है। लाकोत के अनुसार, यूनानी लोग अपनी खाट को मेज के रूप में परिवर्तित कर सकते थे।

सवार हो वाराणसी से लौट आया। पुक्कस ने विश्विल को बताया कि राजा चाहता है कि जो आकाशयंत्रविज्ञान उसने अपने जामाता को सिखाया है, उसे वह उसके शिल्पियों को भी सिखा दे। लेकिन पुक्कस ने कहा कि यह विज्ञान उसके जामाता ने यवन के शिल्पियों से सीखा है। इसपर राजा ने कुपित होकर पुक्कस को मृत्युदण्ड की धमकी दी। विश्विल ने अपनी पत्नी से कहा—"राजा आकाशयंत्रविज्ञान सीखना चाहता है, लेकिन इस विज्ञान को हमें इसी प्रकार छिपाकर रखना चाहिए जैसे कृपण धन को रखता है। इसकी रक्षा के लिए मैं तुम्हे तक छोडने को तैयार हूँ।" तत्पश्चात् रात्रि के समय अपनी भार्या के साथ कुक्कुटाकार यान में सवार हो विश्विल अपने स्थान को चला गया। उधर राजा के शिल्पियों को यत्र का निर्माण करने में असमर्थ देख सेनापति ने उनकी बहुत ताडना की। इस समय किसी आगन्तुक ने वहाँ उपस्थित हो गरुड़ाकार यंत्र का निर्माण किया। यंत्र की मदार के पुष्पो से पूजा की गयी। राजा ने रानी से कहा कि यत्र तैयार हो गया है, और वह इच्छानुसार आकाश की सैर कर सकती है। शिल्पी ने निवेदन किया कि वह यंत्र समस्त नगरवासियो का भार वहन करने में सक्षम है। राजा का समस्त अन्तःपुर, अपनी स्त्रियो सहित मत्रीगण, और पुरवासी यंत्र मे सवार हो पूर्व दिशा की ओर चल पडे। सारी पृथ्वी में घूमकर राजा अवन्ती नगरी में आया। महासेन राजा द्वारा विश्विल का बहुत सम्मान किया गया।[1]

२ पुरुषों के भेद

(अ) **वसुदेवहिडी** कृष्णपुत्र शब अपने सखा जयसेन और बुद्धिसेन नामक राजकुमारो के साथ रथ में सवार हुए जा रहे थे। तीनो मे वार्तालाप हो रहा है—

जयसेन—(शव को लक्ष्य करके) आर्यपुत्र! बुद्धिसेन बिचारा सीधा-सादा है, वह बात करने मे ही कुशल है। जो कष्ट सहन नहीं कर सकता, वह कुपुरुष है।

बुद्धिसेन—जैसे अधपुरुष को किसी रूप-रग का ज्ञान नहीं हो सकता, वैसे ही तुम भी पुरुषो के ज्ञान से वचित हो।

जयसेन—अच्छा, तू जानता है तो बता कि पुरुष कितने प्रकार के होते है? तेरी बुद्धि का पता चल जायेगा।

बुद्धिसेन—अर्थ, धर्म और काम की अपेक्षा पुरुषो के उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन भेद किये गये है। जो पिता और पितामह के द्वारा उपार्जित

---

१ ५ १९६-२९७ पृ० ६५-७५

धन का उपभोग करता हुआ भी उसमें वृद्धि करता है, वह उत्तम, जो उसे क्षीण नहीं होने देता, वह मध्यम और जो उसे खा-पटका कर खत्म कर देता है, उसे अधम पुरुष कहा जाता है। धर्म की अपेक्षा पुरुषो के उत्तम और मध्यम—ये दो भेद किये गये है। स्वयबुद्ध उत्तम और बुद्धो द्वारा बोधित पुरुष मध्यम है। काम की अपेक्षा पुरुषो के तीन भेद है। जो स्वयं कामना करता है और उसकी भी कामना की जाती है, वह उत्तम, जिसकी कामना की जाती है, लेकिन जो स्वय कामना नहीं करता वह मध्यम, तथा जो स्वय कामना करता है लेकिन उसकी कामना नहीं की जाती, उसे अधम कहा गया है।

जयसेन—आर्यपुत्र शव इन तीनो में से कौनसे है?

बुद्धिसेन—अर्थ और धर्म के बारे मे कुछ कह सकना कठिन है, हाँ, काम के बारे में उन्हे मध्यम कहा जा सकता है।

जयसेन—और स्वय तुम कौनसे हो?

बुद्धिसेन—उत्तम!

जयसेन—(क्रुद्ध होकर) अरे पडितमन्य! तू अपने आपको उत्तम और स्वामी को मध्यम कहता है! बस, यही तेरी शिक्षा है?

बुद्धिसेन—तुम समझते नहीं! जो दूसरो द्वारा कामना किये जाने पर स्वय कामना नहीं करता, उसे मध्यम कहते है।

जयसेन—अच्छा, बताओ, स्वामी की कौन कामना करता है?

बुद्धिसेन—नहीं बताऊँगा। यदि वे स्वयं पूछे तो कहूँगा।

शव—अच्छा कहो, मै ही पूछ रहा हूँ।[1]

(आ) **बृहत्कथाश्लोकसंग्रह** गोमुख, मरुभूतिक, तपन्तक और हरिशिख नामक मित्रो[2] के साथ रथ मे सवार हो नरवाहनदत्त ने यात्रा के लिए प्रस्थान किया। धर्म, अर्थ और काम मे इच्छासुखात्मक काम की मुख्यतापूर्वक कामशास्त्र के पंडितों ने चार प्रकार के पुरुषो का उल्लेख किया है—उत्तम, मध्यम, हीन और नकेचन। गोमुख को उत्तम और आर्यपुत्र को मध्यम कोटि का बताया गया। इसपर मरुभूति ने क्रुद्ध होकर गोमुख को फटकारा—

तुम बैल-के-बैल रहे जो तुम अपने आपको उत्तम और आर्यपुत्र को मध्यम कहते हो। अपने आपको अपने प्रभु से बढकर बताते हो?

---

१ पृ० १०१

२. वसुदेवहिंडी मे हरिशिख, वराह, गोमुख, तपतक और मरुभूतिक नाम आते हैं।

गोमुख ने उत्तर दिया---तुम वज्रमूर्ख हो मरुभूति । क्या कोई प्रभु होने मात्र से उत्तम कामुक हो जाता है? देखो, जिसकी कामना की जाती है और जो कामना करता है, वह उत्तम (जैसे-मै), जो कामना नहीं करता और उसकी कामना की जाती है, वह मध्यम (जैसे-आर्यपुत्र), और जो किसी की कामना करता है और उसकी कामना नहीं की जाती, वह अधम, तथा न जिसको कामना की जाती है और न वह किसी की कामना करता है, वह नकेचन पुरुष है । इनमे तुम नकेचन की श्रेणी में आते हो ।[1]

३ गणिकापुत्री की कथा

(अ) **वसुदेवहिंडी** कालिन्दसेना गणिका की पुत्री सुहिरण्या ' शव बुद्धिसेन, जयसेन और सुदारक के साथ वडा होने लगा । एक बार शंव को वासुदेव कृष्ण के पादवदन के लिए लाया गया । कृष्ण बालक को खिलाने लगे । कालिंदसेना भी अपनी कन्या सुहिरण्या को कृष्ण के पादवंदन के लिए लायी ।

वासुदेव ने पूछा—कालिंदसेना ! यह तुम्हारी कन्या है ?

कालिंदसेना—जी महाराज !

वासुदेव ने सुहिरण्या को कुमार शव के पास छोड देने को कहा ।

दोनो ने एक दूसरे को आलिंगन किया । कृष्ण ने मन्त्री की ओर देखा । मन्त्री ने कहा—ठीक ही है । कालिंदसेना बोली—महाराज ! यह कंचनपुर के अधिपति हेमांगद की कन्या है, इसे कुमार की सेविका बनाने का अनुग्रह करे ।

कृष्ण ने कौटुंवियो को आदेश दिया—देखो, सुहिरण्या मेरी पुत्रवधू है, कुमार की भाँति इसकी भी सभाल करना ।[2]

शव ने बुद्धिसेन आदि मित्रो के साथ कलाओ की शिक्षा प्राप्त की । युवा-वस्था को प्राप्त होने पर वह दूसरे वासुदेव के समान जान पडने लगा । कुमार द्वारा धारण किये हुए पुष्पशेखर को बुद्धिसेन उससे माँगकर कहीं ले जाता । इसी प्रकार उसके वदले हुए वस्त्र तथा खाने से वचे हुए मोदको को वह अन्यत्र ले जाता यह कहकर कि वह उन्हे खायेगा ।

---

१ य काम्यते च कामी च स प्रधानमहं यथा ।
अकामी काम्यते यस्तु मध्योऽसावर्यपुत्रवत् ॥
यस्तु कामयते कांचिदकामा सोऽधम स्मृत ।
ते नकेचन भण्यन्ते ये न काम्या न कामिन ।

२. पृ० ९८

बृहत्कथाश्लोकसग्रह १०, १५–२३, पृ० ११२

एक बार रत्नकरंडक उद्यान में सुहिरण्य और हिरण्या गणिकापुत्रियो का नृत्य होने वाला था। शंब अपने मित्रो के साथ रथ में सवार हो उद्यान में पहुँचा। सुदारक उसका सारथि बना। मार्ग मे रथ का पहिया ठीक करने के लिए रथ को खडा किया। एक कन्या ने आकर कुमार के मुकुट से लटकते हुए फुंदो को अपने दोनो हाथो से ऊपर कर दिया।[1] उद्यान मे पहुँच हिरण्या और सुहिरण्या का मनोहारी नृत्य देखा।[2] शब ने हिरण्या की ओर इस प्रकार दृष्टिपात किया जैसे कामदेव रति की ओर करता है। तत्पश्चात् शब ने मित्रो के साथ नगरी के लिए प्रस्थान किया।[3]

बुद्धिसेन ने हाथ में पोथी-पुस्तक लिए हुए[4] पुरुषो को देखा। आपस में वे कह रहे थे—"देव की आज्ञा है कि द्वारका में जितने मूर्ख हो और जितने पंडित हो, इन सब के नाम लिखकर भेजे जाये। यह बुद्धिसेन यदि रथ में सवार हो जाता है तो इसका नाम पंडितो की सूची में लिखा जायगा, अन्यथा मूर्खो की।" यह सुनकर बुद्धिसेन रथ पर सवार हो गया। मार्ग मे नयनाभिराम दृश्य देखता हुआ वह आगे बढा। आगे चलकर मत्त गज पर आरूढ एक महावत ने हाथी को वश में रख सकने की असमर्थता बताते हुए सारथि से रथ लौटाने का अनुरोध किया। रथ गणिकाओ के आवास में से होकर गुजरा। तरुणो के ईर्ष्या, प्रणयकोप और प्रसादन के वचन सुनते हुए बुद्धिसेन ने एक तोरण युक्त भवन में प्रवेश किया। वहाँ दासियो से परिवृत एक कन्या दिखायी दी। कन्या ने प्रणामपूर्वक उसका स्वागत किया और उसके पदो का प्रक्षालन कर आसन पर बैठाया। भोग-मालिनी परिचारिका को बुलाया गया। वह बुद्धिसेन को गर्भगृह में ले गयी। शयनारूढ़ होने पर वह उसके पादो का सवाहन करने लगी। फिर, उसने वक्ष-स्थल के सवाहन करने की इच्छा व्यक्त की। बुद्धिसेन ने सोचा कि दासी निपुण जान पडती है जो पादो का सवाहन कर वक्षस्थल का सवाहन करना चाहती है। अपने स्तनो द्वारा वह वक्षस्थल का सवाहन करने लगी। हाथो से सवाहन करने की अपेक्षा स्तनस्पर्श मे विशेषता होती है। जिस प्रकार हस्तिनी हाथी को रति कराती है, उसी प्रकार उसने भी कराई। बुद्धिसेन वहाँ बार-बार जाने लगा।

१ वृहत्कथाश्लोकसग्रह (१०, २६१) मे मुकुट को ऊपर करने का उल्लेख है।
२ तुलनीय वृहत्कथाश्लोकसग्रह १०, २७१, पृ० १३५, तथा ११वा सर्ग।
३ वसुदेवहिंडी, पृ० १०१।
४. मूलपाठ है 'पत्तलिवासणहत्थे'।

सुहिरण्या बचपन से ही शबकुमार को दे दी गई थी। क्रम से उसने यौवनावस्था को प्राप्त किया। वासुदेव कृष्ण ने कालिन्दसेना को उसकी कन्या को उसके अभ्यन्तरोपस्थान (गर्भगृह) में भेजने का आदेश दिया। एक बार वह अपनी माता के साथ चली। माता के मना करने पर भी न मानी। गर्भगृह में पहुँच सुहिरण्या ने गले मे फाँसी लगा ली। दैवयोग से भोगमालिनी वहाँ उपस्थित थी। उसने उसका रज्जुपास हटा दिया। जब वह होश में आई तो भोगमालिनी ने आत्मघात करने का कारण जानना चाहा। सुहिरण्या ने उत्तर दिया—"बाल्यावस्था से ही मै कुमार को दे दी गई हूँ। बड़ी होने पर देवोपस्थान में गये हुए कुमार को कभी-कभी देख लेती थी। लेकिन अब तो उनके दर्शन भी दुर्लभ हो गये है।" ये सब बाते भोगमालिनी ने उसकी माँ से कही। उसने मित्रो, हस्त्यारोहको और लेखको के साथ मत्रणा की। तत्पश्चात् रथिक, महावत और लेखको के साथ शंब के विश्वासपात्र बुद्धिसेन को कुमार के पास भेजा गया। बुद्धिसेन ने कुमार को समझाया कि वह सुहिरण्या को गणिका की पुत्री न समझे, और स्वीकार करने में कोई दोष नहीं है।[1]

गणिकाओं की उत्पत्ति—पूर्वकाल में भरत मंडलपति राजा था। वह एकपत्नीव्रत था। उसके सामतो ने इसके लिए अनेक कन्याएँ प्रेषित कीं। महारानी के साथ प्रासाद पर बैठे हुए राजा ने उन्हे देखा। महारानी ने प्रश्न किया—यह किसकी सेना चली आ रही है? राजा ने उत्तर दिया—मेरे सामन्तोने मेरे लिए कन्याएँ भेजी है। महारानी ने सोचा, अनागत की ही चिकित्सा करना ठीक है, कहीं राजा इनमे से किसी से प्रेम न करने लगे। उसने कहा—स्वामि! प्रासाद से गिरकर मै प्राणो का त्याग कर रही हूँ। यदि इनमें से किसी ने घर में पैर रक्खा तो मै शोकाग्नि में भस्म हो जाऊँगी। राजा ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो घर में इनका प्रवेश न होगा। महारानी ने कहा—बाहर सभामडप में ये आपकी सेवा मे उपस्थित रह सकती है। क्रमश. उन्हे गणो के सुपुर्द कर दिया गया। तब से ये गणिकाएँ कही जाने लगी।[1]

(आ) **बृहत्थकथाश्लोकसंग्रह** · कलिंगसेना गणिका की कन्या मदनमजुका : कलिंगसेना ने राजा को दूर से देखकर नमस्कार किया। राजा ने उसे आमन्त्रित किया। पर्यंक के मध्य में आकर वह बैठ गयी। सुन्दर वस्त्राभूषणो से वह

१. तुलनीय बृहत्कथाश्लोकसग्रह ११, ८६।

सज्जित थी (वर्णन)। उसके निकट दस वर्ष की वालिका बैठी हुई थी। राजा की दृष्टि उसकी ओर आकृष्ट हुई। वह भी राजा को मानो सहस्र नेत्रो से देखने लगी (वालिका का वर्णन)। कलिंगसेना ने बताया कि वह उसकी कन्या है और उसका नाम मदनमजुका है। राजा ने उसे स्नेहपूर्वक अपने उरू स्थल पर बैठाया। उसकी माता को वहुत-से वस्त्राभूषण प्रदान किये। मदनमजुका भी दीर्ध और उष्ण निश्वास छोडती हुई अपने घर चली गयी।[1]

नरवाहनदत्त जव गोमुख आदि मित्रो के साथ रथ में सवार होकर जा रहा था तो रास्ते मे लम्वकर्ण, विनीत और लम्बा चोगा पहने, मषीपात्र लिए, कान में लेखनी लगाये एक कायस्थ मिला।[2] उसने कहा—"हमारे स्वामी ने इस क्षुद्र श्ववृत्ति को सौंपकर हमें महान् कष्ट मे डाल दिया है। उसका आदेश है कि इस पृथवी पर जितने विवेकवान श्रेष्ठ पुरुष है और जो विवेकवान नहीं है, उन सबकी सूची तैयार की जाये।" इस समय दो पुस्तके हाथ मे लिए हुए उसके दूसरे साथी ने नरवाहनदत्त की ओर उगली से इशारा किया—इस अविवेकी पुरुष का नाम पुस्तक मे लिख लो यह विनीत होने पर भी रथ में सवार नहीं होना चाहता, और जो विना कहे रथ मे सवार हो जाता है, उसका नाम विवेकवान पुरुषो के रजिस्टर में लिखो। यह सुनकर नरवाहनदत्त शीघ्र ही रथ मे सवार हो गया। आगे चलने पर एक हाथी मिला। सारथि ने महावत से कहा कि वह रथ के सामने से हाथी को हटा ले। उसने उत्तर दिया—तुम्हीं अपने रथ को एक तरफ हटा लो, मै इसे ताडना[3] नहीं चाहता। नरवाहनदत्त ने सारथि से कहा कि यदि महावत(अघोरण)[4] हाथी को नहीं हटाता तो तुम अपने रथ को एक तरफ कर लो। आगे चलकर वणिक्-पथ दिखायी दिया। रम्य प्रासाद की पक्तियाँ दिखाई पडीं। मद से उन्मत्त प्रमदाएँ पुरुषो के साथ विविध प्रकार की क्रीडाएँ कर रही थीं। विटशास्त्रका अध्ययन किया जा रहा था। सारथि ने नरवाहनदत्त को वेश्यालय में प्रवेश कराया। नरवाहनदत्त ने

---

१ ७ ४–१७, पृ० ८३-६

२ वसुदेवहिंडी में 'पत्तलिवासणहत्थे पुरिसे' है।

३ वसुदेवहिंडी (पृ० १०२) में 'अविहेओ मे गओ' और वृहत्कथाश्लोकसग्रह में 'विहन्तु नेच्छामि' पाठ है। वसुदेवहिंडी की कालिन्दसेना और सुहिरण्यका क्रमश कलिगसेना और मदनमजुका वन गई हैं।

४ वसुदेवहिंडी (पृ० १०२) और वृहत्कथाश्लोक० दोनों मे इसी शब्द का प्रयोग किया गया है।

सारथि को रथ लौटाकर ले चलने को कहा। लेकिन सारथि ने उत्तर दिया कि भय की बात नहीं, यह कोई मातगो का मोहल्ला नहीं है? और किसी चीज के देखने मात्र से कोई दोप का भागी नहीं हो जाता। आगे बढ़ने पर एक उन्नत मंदिर दिखाई पड़ा। सुन्दर आभूपण धारण करने वाली अनेक कन्याओं ने रथ को घेर लिया। एक कन्या ने नरवाहनदत्त को निकट आने का आमंत्रण दिया। सारथि ने प्रणयीजन के प्रणय को सफल करने के लिए नरवाहनदत्त से उस गृह में प्रवेश करने का अनुरोध किया। तत्पश्चात् जैसे कोई जंगली हाथी शृखला द्वारा पकड़ लिया जाता है उसी प्रकार नरवाहनदत्त गणिकाओ द्वारा पकड लिया गया। पहले कक्ष में उसने नागकन्या को, दूसरे में शिविका को, तीसरे में अश्वो को, चौथे में पक्षियों के पंजरमडल को, पाचवे मे विविध आकार वाले सुवर्ण तारताम्रो को, छठे मे धूपानुलेपन से म्लान हुए वस्त्र-परिधान को, सातवे मे पट्ट, कौशेयक दुकुल वस्त्र को आठवे में मणिमुक्ता के छेदन आदि संस्कारो को देखा। सुवर्णकुण्डल धारण करने वाली स्त्रियो ने नरवाहनदत्त से निवेदन किया कि उसके चरण-कमलो से उनका घर पवित्र हो गया है। प्रासाद मे पहुँच नरवाहनदत्त अनुपम गुणो से युक्त एक सुन्दर कन्या के अनुपम सौन्दर्य को देखकर मूर्च्छित हो गया। उसके दिये हुए आसन पर वह बैठ गया। उसके अन्य मित्र भी उसके साथ थे। कन्या के प्रश्न करने पर नरवाहनदत्त ने बताया कि वह स्वयं गजनीति और गाधर्वज्ञान में, हरिशिख दण्डनीति मे, मरुभूतिक शास्त्रज्ञान में तथा तपन्तक रथ आदि यानविद्याओ मे कुशल है। इस गणिकाकन्या की ओर नरवाहनदत्त का आकर्षण न हुआ। अन्य गणिकाओ को भी उसने तुच्छ समझा। इतने में रूपदेवता की भाँति एक अन्य गणिका उपस्थित हुई। उसने बिछे हुए पर्यक की शरण ग्रहण कर रथ-सक्षोभजन्य खेद को दूर करने का अनुरोध किया। नरवाहनदत्त के पायतो बैठकर अपने हाथो से वह उसके पाद सवाहण करने लगी। कुछ क्षणो बाद उसने कहा—आपको वक्षस्थल में भी थकान का अनुभव होता होगा, आज्ञा हो तो यह दासी थकान दूर करे। नरवाहनदत्त ने सोचा कि उसके पादतल का स्पर्श कर अपने हाथो से वह अब उसके वक्षस्थल का स्पर्श करना चाहती है। नरवाहनदत्त के अभिप्राय को समझ गणिका ने कहा— कौन मूर्ख तुम्हारे वक्षस्थल को हाथो से स्पर्श करना चाहेगा? रथ के सक्षोभ से उत्पन्न वक्षस्थल की थकान दूर करने के लिए स्तनोत्पीडितक-सवाहन सबसे श्रेष्ठ बताया गया है। तत्पश्चात् सकपभाव से वह अपने स्तन युक्त उर से नरवाहनदत्त के वक्षस्थल का सवाहन करने लगी। नरवाहनदत्त क्रीडाघर से बाहर

निकला । वहाँ पहले वाली कन्या मिली । उसने कहा—यह घर आपका ही है, आते रहिए ।

गणिकाओं की उत्पत्ति—राजा भरत ने समुद्रपर्यंत मिलने वाली कान्ताओ को एकत्र कर, एकान्त मे उन सबके साथ विवाह किया । लेकिन जिस स्त्री का सर्वप्रथम उसने पाणिग्रहण किया, उसी से वह सतुष्ट हो गया । शेष को आठ गणो के सुपुर्द कर दिया । प्रत्येक गण में प्रमुख स्त्री को राजा ने आसन, छत्र और चामर की अनुज्ञा प्रदान की । जो गणो में अन्यो से महानतम थीं उन्हे महागणिका शब्द से सम्बोधित किया गया । गणमुख्य गणिकाओ के एक गण में कलिंगसेना उत्पन्न हुई । मदनमजुका उसी की कन्या है ।

मदनमंजुका की कहानी—एक दिन अपनी माता कलिगसेना को राजकुल में जाती देख मदनमंजुका ने भी जाने के लिए बार-बार अनुरोध किया । कन्या का बहुत आग्रह देख, उसे आभरणो से सज्जित कर वह राजदरबार में ले गयी । वहाँ से लौट आने पर उसके कपोल, नयन और अधरो में सतोष दिखायी दिया । अपनी सखियो के बीच बैठकर वह राजदरबार की कथाएँ सुनाती । अपनी माता को राजदरबार में जाती देख वह भी जाने के लिए उद्यत हो गयी । माता ने समझाया—बेटी ! राजाज्ञा के बिना वहाँ जाना ठीक नहीं, क्योकि राजा लोग क्षीण-स्नेही और कठोर होते है । माता के वचन सुनकर वह घर लौट आई । निद्रा और भोजन का त्यागकर उसने शैया की शरण ग्रहण की । नींद का बहाना कर अपनी सखियो को उसने बिदा कर दिया । वह राजकुल की तरफ मुँह कर, अंजलि बाँध, जन्मान्तर में वहाँ की वधू बनने की अभिलाषा करने लगी । गले मे दुकूल पाश बाँध उसने अपने आपको खूटी पर लटका दिया । मुद्रिकालतिका ने जल्दी से उसका वह कालपाश हटा दिया । शयनीय पर लिटाकर पंखे से हवा की जिससे वह होश में आ गयी । उसने बताया कि जब वह राजकुल में गयी थी तो राजा ने उसे आदरपूर्वक अपने दक्षिण उरु पर बैठाया था, उसके वाम उरु पर राजकुमार आसीन था । मेरी नजर राजकुमार पर पडी और वह मेरे हृदय में बैठ गया । तभी से निर्धूम अग्नि मेरे अन्तस्तल मे प्रज्वलित हो रही है । मेरे दुख का यही कारण है । मुद्रिकालतिका ने उसकी माता के पास पहुँचकर यह समाचार सुनाया । उपाय सोचा गया—राजकुमार के परम मित्र गोमुख[1] को वेश्यालय मे प्रवेश कराया जाय, जहाँ वह राजकुमार को भी साथ लेकर आयेगा ।

१. वसुदेवहिंडी में बुद्धिसेन है ।

स्वय नरवाहनदत्त ने मदनमंजुका के पास जाकर उसे ढाढ़स बंधाया और कहा कि राजकुमार स्वय शीघ्र ही उपस्थित हो उसे प्रणाम करेगा। नरवाहनदत्त कुमारवाटिका में पहुँच वहाँ से उच्छिष्ट मोदक[1] आदि लेकर लौटा। उससे कहा कि राजकुमार ने अपने हाथ के मोदक उसके लिए भेजे हैं। लेकिन मदनमंजुका को विश्वास न हुआ। मुद्रिकालतिका ने नरवाहनदत्त से कहा कि महानागरक होकर भी आप उस विचारी को ठगना चाहते है।[2] मदनमजुकालाभ नामक ११ वें सर्ग मे मदनमजुका का राजकुमार के साथ मिलाप हो जाता है।[3]

४ श्रेष्ठीपुत्र की कथा

(अ) **वसुदेवहिंडी** ' चारुदत्त की कथा : श्रमणोपासक भानू नामक श्रेष्ठी की भार्या का नाम भद्रा था। उसके कोई सतान नहीं थी। एक वार आकाशचारी चारु नामक अनगार का आगमन हुआ। भद्रा ने हाथ जोडकर विनय की महाराज ! हम लोगो के धन की कमी नहीं, लेकिन उसका भोगने वाला कोई पुत्र नहीं है। समय व्यतीत होने पर भद्रा ने पुत्र को जन्म दिया। चारु मुनि के कथन से वह पैदा हुआ था, इसलिए उसका नाम रक्खा गया चारुदत्त।[4]

चारुदत्त वडा हुआ। उसके पाँच मित्र थे—हरिशिख, वराह, गोमुख, तपतक और मरुभूतिक। उसने कलाओ की शिक्षा ग्रहण की। मित्रो के साथ वह समय व्यतीत करने लगा।

एक वार कौमुदी महोत्सव के समय श्रेष्ठीपुत्र चारुदत्त हरिशिख, वराह, गोमुख, तपतक और मरुभूति नामक अपने मित्रो को लेकर अगमदिर उद्यान में पहुँचा। वहाँ से सव रजतवालुका नदी के किनारे आये। मरुभूति ने नदी मे उतर कर चारुदत्त से कहा—तुम क्यो नहीं आते ? क्यो विलव कर रहे हो ? गोमुख ने उत्तर दिया—वैद्यो का कहना है कि रास्ता चलकर एकदम नदी के जल में प्रवेश नहीं करना चाहिए। सव लोग कमलपत्रो को तोडकर स्वच्छन्द भाव से पत्रच्छेद्य से क्रीडा करने लगे। क्रीडा करते-करते दूसरे नदी स्रोत पर

१ वसुदेवहिंडी में 'भुत्तसेसे मोदके' पाठ है।

२ १० ३८–२७४

३ ऐस ऐन दासगुप्ता ने मदनमजुका के प्रेम को उत्कृष्ट कोटिका वताते हुए उसकी तुलना मृच्छकटिक की वसन्तसेना के साथ की है। हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर, क्लासिक पीरियड, पृ० १००

४ बृहत्कथा श्लोकसग्रह १८–४–१० के अनुसार, सानुदास चपा निवासी मित्रवर्मा नामक-वणिक और उसकी भार्या मित्रवती का पुत्र था। एक दिन सानु नामक दिगम्बरमुनि भिक्षा के लिए आये। उन्होंने ऋषभभाषित धर्म का उपदेश दिया। भावी पुत्र के उत्पन्न होने की उन्होंने भविष्यवाणी की। सानु मुनि के आदेश से पुत्रोत्पत्ति होने के कारण पुत्र का नाम सानुदास रखा।

वसुदेवहिंडी पृ० १३३–३४

पहुँच गये। गोमुख ने दोने के आकार के पद्मपत्र को जल में तैरा दिया। इसमें थोडी रेत डाली, और यह नाव की भाँति तैरने लगा। मरुभूति ने दूसरा पद्म-पत्र लिया और उसमें बहुत-सा रेत भर दिया। भारी होने से पद्मपत्र की यह नाव डूब गयी। सब मित्र हंसने लगे। उसने दूसरा पद्मपत्र जल में डाला। लेकिन प्रवाह की शीघ्रता के कारण नाव के जल्दी चलने से गोमुख जीत गया। पद्मपत्र की नाव बहुत दूर चली गयी।

पुलिनतट पर, महावर से रंगे किसी युवती के पदचिह्न देखकर मरुभूति को आश्चर्य हुआ।

गोमुख—इसमे आश्चर्य की कौन बात? ऐसे जलप्रदेश अनेक हो सकते है?

मरुभूति—अरे, यह देखो, दो पैरो के निशान!

गोमुख—इसमें क्या हुआ? हमारे चलने-फिरने से भी तो पैरो के सैकडो निशान बन जाते हैं!

मरुभूति—लेकिन भई, हमारे पैरो के निशान तो आगे-पीछे पैरो के रखने से बनते हैं, और ये निशान बीच-बीच मे टूटे है! पता नहीं लगता, कहाँ से शुरू हुए है और कहाँ इनका अत हुआ है! जरा ध्यान से देखो!

हरिशिख—इसमे क्या? कोई पुरुष नदी तट पर खडे हुए वृक्ष पर चढ, एक शाखा से दूसरी शाखा पर पहुँच गया और जब उसने देखा कि वह शाखा कोमल है, तो उसपर से वह कूद पडा और फिर से वृक्ष पर चढ गया।

गोमुख—(कुछ विचार कर) यह नहीं हो सकता। यदि वह वृक्ष के ऊपर से कूदा होता तो उसके हाथ-पैर के सघर्ष के कारण नीचे गिरे हुए फूल और पत्ते नदीतट पर और जल मे बिखर जाते।

हरिशिख—तो फिर ये पैर किसके होने चाहिए?

गोमुख—किसके क्या? किसी आकाशगामी के होगे।

हरिशिख—आकाशगामी के किसके? किसी देव के? किसी राक्षस के? चारण मुनि के? या फिर किसी ऋद्धिधारी ऋषि के?

गोमुख—देवो के तो इसलिए नहीं हो सकते कि वे भूमि से चार अगुल ऊपर विहार करते है। राक्षसो का शरीर स्थूल होने के कारण उनके पैर भी

वडे होते है। पिशाच जलमय प्रदेश से डरते है।[1] ऋद्धिधारी ऋषियो के कृशगात्र होने के कारण उनके पैरो का मध्यभाग उठा हुआ होता है। चारण मुनि जलचर जीवो की रक्षा के लिए जलवाले प्रदेश में परिभ्रमण करते नहीं।

हरिशिख—तो ये फिर किसके है? किसी के तो होगे?

गोमुख—किसी विद्याधर के।

हरिशिख—विद्याधरी के क्यो नहीं?

गोमुख—पुरुष वलवान होता है, वह उत्साह से गमन करता है। उसका वक्षस्थल विशाल होने के कारण जव वह चलता है तो उसके पैर आगे से कुछ दवे होते है। स्त्रियो के नितंव भारी होने से चलते समय उनके पैर पीछे से दवे होते है। इसलिए ये पैर विद्याधरी के नहीं हो सकते।

गोमुख—लगता है, वह विद्याधर कोई वोझ लिये हुए था।

हरिशिख—कौनसा वोझ? किसी पर्वत का? वृक्ष का? अथवा पकडकर लाये हुए अपराधी शत्रु का?

गोमुख—यदि यह भार पर्वत का होता तो पर्वत के वोझ के कारण उसके पैर रेत मे धंस गये होते। यदि वृक्ष का होता तो नदी तट पर दूर तक फैली हुई शाखाओ के चिह्न बने होते। और फिर ऐसे रमणीक स्थान पर किसी शत्रु को कोई लायेगा ही क्यो?

हरिशिख—तो फिर यह वोझ किसका हो सकता है?

गोमुख—किसी स्त्री का?

हरिशिख—लेकिन स्त्री का इसलिए सभव नहीं कि विद्याधरियाँ आकाशगामिनी होती है।

गोमुख—विद्याधर की यह प्रिया भूमिगोचरी थी। उसके साथ वह रमणीय स्थानो मे विहार किया करता था।

हरिशिख—यदि वह उसकी प्रिया थी तो उसने उसे विद्याएँ क्यो नहीं सिखायीं?

गोमुख—वह ईर्ष्यालु था। सन्देहशील होने के कारण वह सोचता था कि विद्याएँ प्राप्त कर कहीं वह स्वच्छन्दाचारी न हो जाये।

हरिशिख—कैसे जानते हो कि वह विद्याधरी नहीं थी?

१. यक्ष राक्षस और पिशाचों का प्रभाव दिन मे सूर्य के तेज से पराभूत हो जाता है। जहाँ देवताओं और ब्राह्मणों का समुचित रूप से पूजन नहीं किया जाता और भ्रष्ट रूप से भोजन किया जाता है, वहाँ ये प्रबल हो जाते हैं। जहाँ निरामिष भोजी अथवा सती-साध्वी स्त्री रहती है, वहाँ वे नहीं जाते, तथा पवित्र, शूर और प्रबुद्ध व्यक्तियों को नहीं छेड़ते। कथासरित्सागर (१ ७ ३२–७)

गोमुख—स्त्रियो का अधोभाग भारी होता है और बायें हस्त से प्रणय चेष्टा करने में वे दक्ष होती है। इससे उसका बायाँ पैर कुछ ऊपर उठ गया है।

हरिशिख – यदि स्त्री उसके साथ थी तो उसके साथ रमण किये बिना वह कैसे चला गया ?

गोमुख—प्रकाश होने के कारण जल से घिरे हुए इस प्रदेश को उसने रति के योग्य नहीं समझा। और पैरो के अविकीर्ण होने से लगता है कि वह कहीं पास मे ही होना चाहिए। यह प्रदेश अत्यन्त रमणीय है, इसे छोडकर भला वह कहाँ जा सकता है। चलो, उसके पदचिह्नो से उसका पता लगायें।

कुछ दूर चलने पर चार पैर दिखायीं देते है।

गोमुख—देखो, पायल के अग्रभाग से चिह्नित ये पैर किसी स्त्री के जान पडते है। पुरुष के पैर अलग दिखायी दे रहे है।

कुछ दूर चलने पर उन्हे भ्रमरो से आच्छन्न सप्तपर्ण का वृक्ष दिखायी दिया।

गोमुख—देखो, यहाँ आकर स्त्री ने वृक्ष की शाखा पर लगा हुआ पुष्प गुच्छ देखा। उसे न पा सकने के कारण उसने अपने प्रियतम से गुच्छे को तोड-कर देने का अनुरोध किया।

चारुदत्त—यह तुमने कैसे जाना ?

गोमुख—यह देखो, पुष्पगुच्छ की इच्छा करती हुई, एडी बिना, स्त्री के पैर दिखायी दे रहे है। और जानते हो विद्याधर लंबा था, इसलिए बिना विशेष प्रयत्न के ही उसने पुष्पगुच्छ को तोड लिया। तट पर उसके अभिन्न रेखावाले ये पैर दिखायी दे रहे है। लेकिन इस गुच्छे को उसने अपनी प्रिया को नहीं दिया। और लगता है, उन्हे यहाँ से गये हुए बहुत समय नहीं हुआ है। क्योकि पुष्पगुच्छ के अभी हाल में तोडे हुए होने के कारण, पुष्प की डठल में रस टपक रहा है।

हरिशिख—ठीक है, पुष्पगुच्छ को अभी तोडा गया होगा। लेकिन यह कैसे जाना कि उसे विद्याधर ने अपनी प्रिया को नहीं दिया। प्रिया के मांगने पर तो देना ही चाहिए था।

गोमुख—काम प्रणय से चंचल हो उठता है। लगता है कि उस स्त्री ने अपने प्रियतम से पहले किसी चीज की याचना नहीं की। अतएव अपनी प्रिया को याचना से चंचल देख, विद्याधर को बडा अच्छा लगा। वह भी 'दो ना, प्रिय दो ना' कहती हुई उसके चारो ओर फिरकी की भाँति फिरने लगी। यह

देखो, विद्याधर के पैरो के चारो ओर उसके पैर दिखायी दे रहे हैं। चारुस्वामी! इससे वह अविद्याधरी कुपित हो गयी।

हरिशिख—इस बात का पता कैसे लगा?

गोमुख—यह देखो, क्रोध के आवेग मे उठे हुए उसके अस्तव्यस्त पैर। और देखो इसके पास ही ये पैर विद्याधर के है जो उसके पीछे-पीछे चल रहा है। यह देखो, जल्दी-जल्दी रक्खी-हुई उसकी पदपंक्ति उसका मार्ग रोक रही है। और देखो, वह अविद्याधरी अपनी हँसी रोककर इधर से गयी और उधर से वापिस लौटी। उसके गुस्सा हो जाने पर विद्याधर ने वह पुष्पगुच्छ उसे दे दिया। लेकिन उसने पुष्पगुच्छ को फेंककर विद्याधर की छाती पर मारा। और जानते हो उसके क्रोध के साथ ही वह गुच्छ भी बिखर गया! यह देखकर विद्याधर अपनी प्रिया के पैरो मे गिर पड़ा। यहाँ उसके पैरो के समीप विद्याधर के मुकुट से दबा हुआ रेत दिखायी दे रहा है। बस फिर क्या था? सुकुमार गुस्से वाली उसकी प्रिया जल्दी ही प्रसन्न हो गयी। यह देखो, नदीतट पर भ्रमण करते हुए उन दोनो के पैर! चारुस्वामी! और सुनिए, जब वह विद्याधर के मुख पर अपनी दृष्टि गडायी हुई थी तो उसके पैरमें ककडी चुभ गयी। विद्याधर ने जल्दी से उसका पैर ऊपर उठा लिया। वेदना के कारण उसने विद्याधर के कन्धे का सहारा लिया। यह देखो, यह एक पैर अविद्याधरी का है और ये दो विद्याधर के। विद्याधर ने उसके पैर मे से खून से गीला हुआ रेत निकाल कर फेंक दिया।

हरिशिख—जिसे तुम खून कह रहे हो, कहीं वह महावर तो नहीं?

गोमुख—भई, महावर का रस कडवा होता है, उस पर मक्खियाँ नहीं बैठती। यह तो हाल के लगे हुए घाव में से दुर्गंधि-युक्त, मधुर और माँस में से टपकने वाला खून है, इसलिए इस पर मक्खियाँ भिनभिना रही है। चारुस्वामी! और फिर वह विद्याधर उसे अपनी बाहुओ मे भरकर ले गया।

हरिशिख—यह कैसे पता चला?

गोमुख—देखो, स्त्री के पैर यहाँ दिखायी नहीं देते जबकि पुरुष के पैर साफ दिखायी दे रहे है। तथा चारुस्वामी! मेरा ख्याल है कि वह विद्याधर अपनी प्रेमिका के साथ सामने के लताघर मे होगा। आइए, हम यहीं ठहर जाये। एकांत वास करते हुए उन्हें देखना ठीक नहीं।

कुछ समय पश्चात् लतागृह में से अपनी सहचरी के साथ एक मोर बाहर निकला।

गोमुख—चारुस्वामी! देखिए, इस लतागृह में विद्याधर नहीं है।

हरिशिख—अब तक तो कहते आ रहे थे कि अपनी प्रिया के साथ विद्याधर इस लतागृह के अन्दर है, अब कहने लगे नहीं है।

गोमुख—देखो, यह मोर निःशक होकर अन्दर से निकला है। यदि कोई मनुष्य अन्दर होता तो वह ऐसा नहीं करता।

गोमुख के वचन को प्रमाण मान, चारुदत्त ने अपने मित्रो के साथ लतागृह में प्रवेश किया तो वहाँ थोडी देर पहले उपर्युक्त कुसुमो की शैया देखी।

गोमुख—विद्याधर को यहाँ से गये हुए बहुत समय नहीं हुआ है। ये उसके जाने के पैर दिखायी दे रहे है। वह यहाँ अवश्य लौटकर आयेगा। यह देखो, वृक्ष की शाखा में लटका हुआ चीते के चमड़े से बना हुआ उसका कोशरत्न (थैली) और खड्ग दिखाई दे रहे है। इन्हे लेने वह अवश्य आयेगा।

विद्याधर के पदचिह्नो को देखते हुए गोमुख ने कहा—चारुस्वामी! यह विद्याधर किसी महान् सकट में पड गया मालूम होता है। पता नहीं वह जीता भी है या नहीं?

चारुस्वामी—क्यो?

गोमुख—क्या तुम इन दो और पैरो को नहीं देखते? पता नहीं लगता कि ये पैर कहाँ से आये है, तथा पृथ्वी पर से आकाश में उड जाने के कारण रेत उडी हुई जान पड़ती है। लगता है यहाँ इस विद्याधर को किसी ने गिरा दिया है। यह देखो, उसे खींचकर नीचे डालने से उसके शरीर की आकृति बनी हुई है। यहाँ स्त्री के पैर भी नीचे पडे हुए दिखायी दे रहे है। आइए, हम लोग इन पदचिह्नो का अनुकरण करते हुए आगे बढ़ें।

आगे चलने पर इधर-उधर बिखरे हुए आभूषण तथा वायु से प्रकंपित पीले रंग का क्षौम वस्त्र दिखायी दिया।

गोमुख—चारुस्वामी! जब यह विद्याधर निश्चिंत भाव से बैठा हुआ था तो किसी शत्रु ने उसपर आक्रमण किया। भूमिगोचरी होने के कारण उसकी भार्या किसी प्रकार का प्रतिकार करने में असमर्थ थी।

चारुदत्त ने मरुभूति को क्षौम वस्त्र, आभूषण, चर्मरत्न और खड्ग उठाकर ले चलने को कहा जिससे कि विद्याधर की वस्तुएँ उसे वापिस लौटाई जा सके।

आगे चलने पर सेही के बिल में लटकते हुए बाल दिखायी पड़े।

गोमुख ने हरिशिख से उन्हे सूंघने को कहा। सूंघने पर पता लगा कि उनकी गंध स्थिर है और गर्मी में रहने के कारण उनमें से सुगध की मानो वर्षा हो रही है।

गोमुख—चारुस्वामी जो कोई दीर्घायु होता है, उसके केशो और वस्त्रो में ऐसी सुगंध होती है। यह विद्याधर दीर्घायु और उत्तम जान पडता है। यह राज्याभिषेक का अधिकारी होना चाहिए।

आगे बढने पर देखा कि वह विद्याधर कदब वृक्ष पर पाँच लोहे की कीलो से विंधा हुआ पडा है—एक कील उसके कपाल में, दो हाथो मे और दो उसके पैरो में। लेकिन फिर भी उसके मुख की कांति में कोई अतर नहीं दिखायी पड़ा, उसके शरीर की छवि सौम्य थी, हाथो और पैरो में से रक्त नहीं बह रहा था, और तीव्र वेदना होने पर भी उसका श्वासोच्छ्वास मद नहीं पड़ा था।

उसके चर्मरत्न को खोलकर देखा तो उसमें चार औषधियाँ मौजूद थीं। एक से शल्यो को निकाला (विशल्यकरणी) दूसरी से जिलाया (सजीवनी) और तीसरी से घावो को अच्छा किया (संरोहणी)।

विशल्यकरणी औषधि को उसके कपाल में चुपडने से कपाल मे ठोकी हुई कील बाहर निकलकर गिर पडी। फिर उसके दोनो हाथ और पैरो को छुडाया। पीताम्बर युक्त कदलीदल के पत्र पर उसे सुलाया। उसके घावो में संरोहणी छिडकी। कदलीपत्रो की वायु और जलकणो द्वारा उसे होश में लाया गया।

होश में आते ही विद्याधर एकदम दौडकर चिल्लाने लगा—अरे दुराचारी धूमसिंह! ठहर! तू भागकर कहाँ जायगा? लेकिन वहाँ कोई न था, इसलिए व्यर्थ ही गर्जना करने के कारण वह लज्जित होकर बैठ गया। तत्पश्चात् सरोवर में स्नान कर उसने वस्त्राभूषण धारण किये।

चारुदत्त और उसके साथियो के समीप आकर वह कहने लगा—अरे! मुझे मेरे शत्रु ने बाध दिया था, मुझे किसने छुडाया?

गोमुख ने उत्तर दिया—हमारे मित्र इभ्यपुत्र चारुस्वामी ने।

तत्पश्चात विद्याधर ने अपनी रामकहानी सुनाई—

मेरा नाम अमितगति है—शिवमंदिर नगर का निवासी, पिता महेंद्रविक्रम, माता सुयशा। एक बार धूमसिंह और गौरीपुंड नामक अपने मित्रो के साथ वैताढ्य पर्वत की तलहटी में सुमुख नामक आश्रम में गया। वहाँ मेरा मामा क्षत्रिय ऋषि हिरण्यलोम तापस रहता था। उसके अनुरोध पर उसकी रूपवती कन्या सुकुमालिका के साथ मैंने विवाह कर लिया। वह कभी स्वच्छदाचारी न बन जाये, इसलिए मैंने उसे विद्याओ की शिक्षा नहीं दी।

धूमसिंह मेरी अनुपस्थिति में सुकुमालिका को बहकाने का प्रयत्न करता। वह मुझसे सब बात कहती लेकिन मै विश्वास न करता, यद्यपि मेरा मन शंकित हो गया था।

एक बार की बात है, स्नान आदि करने के पश्चात् मेरी पत्नी और धूमसिंह मेरे केश सवार रहे थे। मेरे हाथ में दर्पण था। धूमसिंह हाथ जोडकर मेरी पत्नी से अनुनय-विनय कर रहा था। दर्पण सामने होने से मुझे पता चल गया। क्रोध में आकर मैंने धूमसिंह को ललकारा—यही तेरी मित्रता है! यहाँ से भाग जा नहीं तो मार डालूँगा।

धूमसिंह वहाँ से चला गया। उसे फिर मैंने नहीं देखा।

आज मै अपनी पत्नी के साथ इस सुन्दर नदी तट पर आया। नीचे उतरने पर इस स्थान को मैंने रति के योग्य नहीं समझा, इसलिए वहाँ से चला आया।

तत्पश्चात् प्रणयकोप और प्रसादन के रमणीय प्रसगो से लगाकर लतागृह से बाहर आने तक सारी कहानी सुना दी। विद्यारहित स्थिति में, मेरे शत्रु धूमसिंह ने मुझे बांध लिया और विलाप करती हुई सुकुमालिका को वह उठाकर ले गया।

अब तुम लोगो ने अपनी बुद्धि और औषधि के प्रभाव से मुझे जीवित किया है। अतएव चारुस्वामी! आप मेरे बंधु है। आज्ञा दीजिए, आप लोगो की क्या सेवा करूँ? मुझे शीघ्र ही जाने की आज्ञा दे। मै जाकर अपनी पत्नी की रक्षा करूँगा, कहीं वह मेरे जीवन की निराशा से अपने प्राणो को त्याग न दे।

इतना कहकर अमितगति वहाँ से चला गया।[1]

(आ) बृहत्कथाश्लोकसंग्रह : सानुदास की कथा गोमुख सरोजपत्र को अपने नाखूनो से छेदने लगा। पत्रच्छेद्य को नदी के जल में तैरा दिया। तत्पश्चात् गोमुख ने पत्रच्छेद्य के लक्षण प्रतिपादित किये (त्र्यस्र, चतुरस्र, दीर्घ और वृत्त।

१ पृ० १३३–४०

मरूभूतिक ने एकदम आकर कहा—आर्यपुत्र! कितना वडा आश्चर्य है ? देखा आपने ?

हरिशिख—कूप के कच्छप के समान मोटी बुद्धि वाले तुम जैसो को सब जगह आश्चर्य ही-आश्चर्य दिखायी देता है।

इसपर मरुभूतिक ने ऊंचे पुलिन के दर्शन कराये।

हरिशिख ने हँस कर कहा—उस चक्षुवान् पुरुष को नमस्कार है जिसे पुलिन भी आश्चर्यकारी लगता है! जल नीचे से वहता है और जो रेतीला स्थान है, वह पुलिन वन जाता है—यदि इसमे कोई आश्चर्य लगता है तो हे मूर्ख! तेरे जल में कौनसा दोष हुआ ?

मरूभूति—अरे भई! पुलिन को कौन आश्चर्यकारी कहता है। पुलिन पर जो आश्चर्यकारी है, उसे भी तो जरा देखो।

हरिशिख—पुलिन पर रेत है, और क्या ? क्या रेत का होना भी आश्चर्य है ?

यह सुनकर गोमुख वोला—अरे! भद्रमुख मरूभूतिक का क्यो मजाक उड़ाते हो ? पुलिन पर मैंने भी दो पैर देखे है।

हरिशिख—यदि दो पैरो का देखना आश्चर्य कहा जा सकता है तो चतुर्दश कोटि पदो का देखना तो और भी आश्चर्य की वात होगी।

गोमुख—एक के पीछे एक पडे हुए कोटि पदो का देखना कोई आश्चर्य की वात नहीं, लेकिन इन दोनों पैरो में अनुक्रम नहीं है, यही आश्चर्य है।

हरिशिख—हो सकता है कि पैरो के शेष चिह्नो को हाथ से मिटा दिया गया हो। नदी तट पर खड़े हुए वृक्ष की जो शाखा पुलिन तक आ रही है, सभवत: उसे पकड़ कोई नागरक ऊपर चढकर फिर नीचे उतर आया हो। उसी के ये पैर होंगे।

गोमुख—लेकिन दूर तक फैले हुए पत्तो वाली शाखा को पडकर यदि वह ऊपर चढकर नीचे उतरा होता तो पृथवी पत्तो से आकीर्ण हो जाती।

हरिशिख—तो फिर ये पैर किसके होगे ?

गोमुख—किसी दिव्य पुरुष के होने चाहिए ?

हरिशिख—दिव्य पुरुष के किसके ?

गोमुख—देखो, किसी देव के तो इसलिए नहीं हो सकते कि वे पृथिवी का स्पर्श नहीं करते। यक्ष और राक्षस स्थूल शरीर होते है, यदि ये पैर उनके

होते तो पुलिन पर अन्दर तक धंस जाते। तप के कारण कृश शरीर वाले सिद्धो और ऋषियों के पैरों की उगलियां स्पष्ट दिखायी नहीं पडतीं। अतएव ये पैर किसी मनुष्य के ही हो सकते है। पुरुषो के पैर आगे से और स्त्रियों के पीछे से दबे हुए होते है। और देखो लगता है कि जिस पुरुष के ये पैर है वह कोई भार उठाये हुआ था।

हरिशिख—वह कौनसा भार उठाये था? किसी शिला का? वृक्ष का? अथवा किसी शत्रु का वह भार था?

गोमुख—देखो, यदि वह भार शिला का होता तो उसके पैर अदर तक धॅस गये होते। यदि वृक्ष का होता तो पृथ्वी पर पत्ते फैल गये होते। शत्रु का भार इसलिए नहीं कि इतने रमणीय स्थान पर कौन शत्रु को लेकर आयेगा। अतएव असिद्ध विद्यावाली विद्याधरी का ही यह भार है। विद्याधर ने उसके जघन पर अपना दक्षिण हाथ रक्खा जिससे उस कामी विद्याधर का दक्षिण पैर अन्दर चला गया। तुम उसके सिर से गिरे हुए मालती के पुष्पो से अवकीर्ण स्थान को नहीं देख रहे हो?

इधर-उधर देखने से जल के समीप अन्यत्र भी स्त्री-पुरुष के पैर दिखायी दिये।

गोमुख ने कहा—वह नागरक यहीं कहीं होना चाहिए।

हरिशिख—क्यो?

गोमुख—दूसरे के चित्तानुवृत्ति और अपने चित्त के निग्रह को नागरकता कहा गया है। अतएव मथर गति से गमन करती हुई कामिनी का अतिक्रमण करके वह नहीं जा सकता।

उनके पादचिह्नो का अनुगमन करते हुए वे आगे बढे। भ्रमरो से गुजायमान सप्तपर्ण को उन्होने देखा। इस वृक्ष के नीचे उन दोनो के एकान्त विहार करते समय जो कुछ बीता उसका वर्णन गोमुख ने किया।

गोमुख— यहाँ विद्याधर की पत्नी जब कुपित हो गयी तो विद्याधर ने उसे प्रसन्न किया। कुसुमवाले पल्लवो द्वारा निर्मित इस विस्तर को देखो। श्रान्त होकर वह यहाँ बैठ गयी। उसके जघन के सचरण से पल्लव जर्जरित हो गये। विद्याधर ने गुरुत्रिक हाथ मे ले जघन मे स्थापित किया और उसे लगा कि मानो यह पृथ्वी उसके चरणो मे लौट रही है!

वहाँ से वह उठकर चली गयी। आइए, उन दोनो के पदचिह्नो का अनुगमन करते हुए आगे बढ़े।

उन दोनो ने कामिनियो के रम्य स्थान, चन्द्र, सूर्य, अग्नि और वायु से अस्पृष्ट माधवी लता के कुंज में प्रवेश किया। प्रच्छन्न एवं रमणीय इस स्थान को छोडकर वह कैसे जा सकता था? सुखपूर्वक आसीन उनका दर्शन करना उचित नहीं, इसलिए आइए, हम लोग यहीं ठहर जाये।

तत्पश्चात् लतागृह को देखकर सिर हिलाकर गोमुख ने कहा—वह कामी यहाँ नहीं है।

हरिशिख—अभी तो कहते थे वह है, अव कहते हो नहीं!

गोमुख—क्या तुम अन्धे हो जो माधवी लतागृह से निर्भयतापूर्वक मूक भाव से निकलते हुए शिखण्डिमिथुन को तुमने नहीं देखा? यदि कोई अन्दर होता तो वह आर्तस्वर करता हुआ उडकर वृक्षो के कुञ्ज में छिप जाता। देखो, यह पल्लवो का विस्तर विछा हुआ है। वृक्ष की शाखा पर हार, नुपूर, मेखला, अन्यत्र अरुण वर्ण का क्षौमवस्त्र और कहीं उसका चर्मरत्न दिखाई दे रहा है।

ये सव चीजे उन लोगो ने उठा लीं जिससे कि विद्याधर के मिलने पर उसे दी जा सकें।

गोमुख—अवश्य ही किसी शत्रु ने उसकी कान्ता का अपहरण कर लिया है। परवशता के कारण उन दोनो को अपने-आभूषण आदि छोडकर जाना पड़ा। वह विद्याधर दीर्घायु है क्योकि उसके केश स्निग्ध है और वृक्ष की शाखा पर लटके रहने पर भी उनमें सुगन्ध आ रही है।

तत्पश्चात् कुछ दूर चलने पर किसी कदंव वृक्ष के स्कध में लोहे के पाच कीलो से विंधे हुए विद्याधर को उन्होने देखा।

उसके चर्मरत्न में पाच औषधियां दिखाई दीं—विशल्यकरणी, मांसविवर्धनी, व्रणसरोहणी, वर्णप्रसादनी और मृतसजीवनी।

इतने में गोमुख ने आकर सूचना दी कि आर्यपुत्र (नरवाहनदत्त) के प्रसाद से विद्याधर जी उठा है।

औषधियो के प्रभाव से स्वस्थ होकर विद्याधर वोला—वंधन में वधे हुए मुझको किसने जिलाया है? गोमुख ने उत्तर दिया—हमारे आर्यपुत्र ने। विद्याधर ने मुक्तकण्ठ से कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित किया।

तत्पश्चात् उसने अपनी रामकहानी सुनाई—

मैं कौशिक मुनि का पुत्र अमितगति नाम का विद्याधर हूँ।

हिमालय पर्वत के शिखर पर कौशिक नाम का मुनि रहता था। नन्दन वन का त्याग करने वाली बिन्दुमती ने बहुत काल तक उसकी आराधना की। कौशिक मुनि ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया। उसके दो सताने हुई- एक मै और दूसरी मेरी बहन मत्सनामिका।

अंगारक और व्यालक नामक अपने मित्रो के साथ मै समय व्यतीत करने लगा। काश्यपस्थलक नामक नगर में मैने कुसुमालिका कन्या को देखा। सुन्दर होने के कारण वह मेरे मन मे बस गयी। अपने मित्रो के साथ कुसुमालिका को लेकर नदी किनारे पर्वत के वृक्षकुज मे रति के लिए गया। मैने देखा कि अंगारक टेढी गर्दन करके ताक रहा था। अगारक ताड गया और वह चुपके से भाग खडा हुआ।

मेरी समझ मे नहीं आया कि अपनी कान्ता को लेकर मै कहाँ जाऊँ। वहा से मै पर्वत से बहनेवाली इस नदी के पुलिन पर आया। वहाँ से सुरत के योग्य लतागृह मे प्रवेश किया। उसके आगे का वृत्तान्त आप लोगो को ज्ञात ही है।

आप लोग मुझे सकट के समय स्मरण करें—यह कहकर प्रणामपूर्वक वह विद्याधर अगारक का पीछा करने के लिए आकाश मे उड गया।[1]

५ गंधर्वदत्ता का विवाह

(अ) **वसुदेवहिंडी** · वसुदेव और चारुदत्त की कन्या गधर्वदत्ता का विवाह · वसुदेव ने कहा—मै मगध का निवासी गौतम गोत्रीय स्कदिल नाम का ब्राह्मण हूँ। यक्षिणियो से मेरा प्रेम है। एक यक्षिणी मुझे अपने इष्ट प्रदेश में ले गयी। इतने मे दूसरी ने ईर्ष्यावश उसे पकड़ लिया। दोनो मे कलह होने लगी, मै गिर पड़ा। इसलिए मै नहीं जानता कि यह प्रदेश कौनसा है।

अधेड उम्र के मनुष्य ने उत्तर दिया—इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं कि यक्षिणियाँ तुमसे प्रेम करती है।

पता चला कि नगरी का नाम चम्पा है। वहाँ एक मन्दिर था। पादपीठ पर नामाकित वासुपूज्य भगवान् की मूर्ति प्रतिष्ठित थी।

आगे चलने पर उसे हाथ मे वीणा लिये हुए सपरिवार एक पुरुष दिखाई दिया। वीणाओ को बेचने के लिए लोग वीणाओ को गाडी मे भरकर लिये जा

१. ९ १–१०८ (पुलिन दशन सर्ग), पृ० ९९–१०९

रहे थे। स्कदिल ने किसी आदमी से पूछा—क्या यह इस देश का रिवाज है कि सभी लोग वीणा का व्यापार करते है।

उसने उत्तर दिया—चारुदत्त श्रेष्ठी की परम रूपवती कन्या गधर्वदत्ता गधर्ववेद में पारगत है। गंधर्वविद्या में अनुरक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य उसे प्राप्त करने के लिए जी-जान से प्रयत्नशील है। इस विद्या में जो विजयी होगा, वह उसे पायेगा। प्रत्येक महीने विद्वत्सभा में प्रतियोगिता आयोजित की जाती है। कल प्रतियोगिता का दिन था, अब फिर से एक महीने बाद होगी।

पता लगा कि सुग्रीव और जयग्रीव नामक गंधर्वविद्या के महान् पंडित वहाँ रहते है।

सुग्रीव के घर पहुँच, स्कंदिल मूर्ख की भाँति विलाप करने लगा। उसने अपना परिचय देते हुए निवेदन किया कि वह गधर्वविद्या सीखने के लिए आया है।

उपाध्याय ने उसे मूर्ख कहकर उसकी अवज्ञा की।

स्कदिल ने ब्राह्मणी को प्रसन्न करने के लिए उसे रत्नो के कडे भेट किये। ब्राह्मणी ने आश्वासन दिया कि उसे भोजन, वस्त्र और रहने-सोने की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। स्कदिल ने गंधर्वविद्या सीखने की बात दोहरायी।

ब्राह्मणी ने अपने पति से उसे विद्या सिखाने की सिफारिश की। उपाध्याय ने कहा—वह वज्रमूर्ख है, विद्या क्या सीखेगा? ब्राह्मणी ने उत्तर दिया—हमें मेधावियो से क्या लेना-देना। यह देखो, यह कडा!

तुम्बुरन और नारद की पूजा की गयी और विद्यार्थी को एक वीणा दे दी गयी। उसे बजाने को कहा गया। किन्तु उसके करस्पर्श से आहात होकर वह टूट गयी। उपाध्याय ब्राह्मणी से कहने लगा—देख ली अपने पुत्र की कला! ब्राह्मणी ने कहा—इसकी तंत्रियां पुरानी और कमजोर थीं, दूसरी स्थूल तंत्रियो वाली वीणी मगाकर दो। धीरे-धीरे सब सीख जायेगा।

शिष्यो ने वीणा मे स्थूल तंत्रियां लगाई। उपाध्याय ने धीरे-धीरे बजाने को कहा। उसे एक गीत बजाने को दिया।

शिष्यो से स्कदिल ने पूछा—क्या वह इभ्यकन्या इस गीत को जानती है? उत्तर मिला—नहीं। वसुदेव ने कहा – तो इस गीत से मैं उसे जीत लूँगा। शिष्य हँसने लगे।

उत्सव का समय आ पहुँचा। उपाध्याय अपने शिष्यो को लेकर चले। स्कंदिल से फिर कभी जाने को कहा। स्कंदिल ने निवेदन किया—गुरुजी ! यदि इस प्रतियोगिता में कन्या को अन्य किसी ने जीत लिया तो फिर मेरा विद्या सीखना ही व्यर्थ जायेगा। मै भी जाना जाहता हूँ। लेकिन गुरुजी ने जाने नहीं दिया।

शिक्षार्थी ने दूसरा कडा ब्राह्मणी को भेंट किया। ब्राह्मणी ने कहा—चिता मत कर, तू उत्सव में सम्मिलित हो और विजयी बनकर लौट।

वस्त्राभूषणो से अलंकृत हो स्कदिल चारुदत्त की सभा में पहुँचा। सभा में विद्वान् आसनो पर विराजमान थे और शेष जन भूमि पर बैठे हुए थे।

शिष्यो समेत बैठे हुए उपाध्याय ने शकित मन से उसपर दृष्टिपात किया।

स्कंदिल ने सभा में प्रवेश किया। सभागार देखकर उसने कहा—विद्याधर लोक में ही ऐसा सभागार हो सकता है, इस लोक में तो सभव नहीं ! यह सुनकर उसे भी बैठने के लिए आसन दिया गया। लोग आश्चर्यचकित नयनो से उसे देखने लगे।

भित्ति पर चित्रित हस्तियुगल देखकर उसने चारुदत्त श्रेष्ठी से कहा—श्रेष्ठी ! चित्रकारो ने इसे अल्पायु क्यो चित्रित किया ?

श्रेष्ठी—क्या तुम चित्र देखकर चित्र की आयु की भी परीक्षा कर सकते हो ?

उसने परीक्षा करके अपनी बात प्रमाणित की। सभा के लोग आश्चर्यचकित रह गये। उपाध्याय भी विस्मित हुए बिना न रहा।

गंधर्वदत्ता यवनिका के पीछे बैठी। वीणा बजाने के लिए कोई आगे नहीं आ रहा था।

चारुदत्त ने घोषणा की यदि कोई गायन के लिए तैयार नहीं तो गधर्वदत्ता वापिस जा रही है।

कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद विद्वानो ने कहा—ठीक, जा सकती है।

इस समय शिक्षार्थी ने उठकर कहा—नहीं, उसे जाने की आवश्यकता नहीं। उसकी कला की परीक्षा की जाये।

दर्शकों ने उसपर दृष्टिपात किया। वे कहने लगे – यह कोई भूमिगोचर नहीं, कोई देव अथवा अति प्रगल्भ तेजस्वी रूपवान विद्याधर प्रतीत होता है।

श्रेष्ठी के आदेश से वीणा मंगवाई गई। उसे स्कदिल के हाथ मे दी। स्कदिल ने कहा—इसके गर्भ में कुछ है, वजाने के योग्य यह नहीं है।

उसने वीणा पानी में भिगोई और उसमें से वाल निकालकर दिखा दिया।

दूसरी मंगवाई गई। उसने कहा—जंगल की अग्नि से जले हुए काष्ठ से यह तैयार की हुई है, अतः इसे वजाने से इसमें से कर्कश आवाज निकलेगी।

तीसरी लाई गई। वह जल में डूबे हुए काष्ठ से तैयार की गयी थी, अतः वीणावादक ने कहा कि उसमें से गंभीर आवाज निकलेगी। उसे भी अस्वीकार कर दिया गया। परिषद् आश्चर्यचकित रह गयी।

तत्पश्चात् चंदन से चर्चित सुगंधित पुष्पो की माला से अलंकृत सप्त स्वर वाली तन्त्री मंगवाई गई। वीणावादक ने उसकी प्रशंसा की।

उसने कहा कि यह आसन मेरे योग्य नहीं।

वहुमूल्य आसन बिछाया गया। श्रेष्ठी ने विष्णुगीतिका वजाने का अनुरोध किया। उसने साधुओ के गुणकीर्तन में गायाजाने वाला विष्णुमाहात्म्य गीत सुनाना आरंभ किया।

विष्णुगीतिका की उत्पत्ति—हस्तिनापुर में राजा पद्मरथ और रानी लक्ष्मीमती के विष्णु और महापद्म नामक दो कुमार। विष्णुकुमार की प्रव्रज्या। महापद्म राजा का पुरोहित नमुचि। वह जैन साधुओ द्वारा वाद में पराजित। मन-ही-मन साधुओ से प्रद्वेष। राजा को प्रसन्न कर राजपद की प्राप्ति। हस्तिनापुर में साधुओ का चातुर्मास। नमुचि द्वारा उन्हे राज्य से वाहर चले जाने का आदेश। विष्णुकुमार को आकाशगामी विद्या की सिद्धि। सघ पर उपद्रव होने के कारण उन्हे आमन्त्रित किया गया। विष्णुकुमार ने नमुचि पुरोहित को वहुत समझाया, लेकिन उसने एक न सुनी।

विष्णुकुमार ने नमुचि से एकात स्थल में तीन विक्रम (पैर) भूमि माँगी। उन्होने कहा कि साधु इस प्रदेश मे रह कर प्राणत्याग कर देगे, क्योकि उनके लिए वर्षाकाल में गमन करना निषिद्ध है। इससे साधुओ के वध करने की नमुचि की प्रतिज्ञा भी पूरी हो जायेगी। नमुचि ने तीन पैर भूमि प्रदान करने की स्वीकृति दे दी।

रोष से प्रज्वलित विष्णुकुमार मुनि का शरीर वढने लगा। उन्होने अपना एक चरण उठाया। नमुचि पैरो मे गिर पडा। वह अपने अपराधो की क्षमायाचना करने लगा। विष्णुकुमार ने ध्रुपद पढा और क्षण भर मे दिव्य रूप धारण कर लिया। पृथ्वी कपित हो उठी। विष्णु ने अपना दाहिना पग मंदर पर्वत पर स्थापित किया। इसे उठाते समय समुद्र का जल क्षुब्ध हो उठा। इन्द्र का

आसन चलायमान हो गया। देवो को सम्बोधित कर के इन्द्र ने कहा—सुनो, नमुचि पुरोहित के अनाचरण के कारण प्रकुपित विष्णु मुनि त्रैलोक्य को भी निगल जाने में समर्थ है, अतएव इन्हें अनुनय-विनयपूर्वक गीत और नृत्य के उपहार से शीघ्र ही शान्त करना चाहिए। तुवरू और नारदजी ने विद्याधरो पर अनुग्रह करके उन्हें गंधर्वकला की ओर प्रेरित किया। विष्णु-गीतिका से उपनिबद्ध, सप्तस्वर तन्त्री से निःसृत और मनुष्य लोक में दुर्लभ गांधार स्वरसमूह को उन्हे धारण कराया—

"हे साधुओ में श्रेष्ठ! आप शान्ति धरे। जिनेन्द्र भगवान् ने क्रोध का निषेध किया है। जो क्रोधशील होते है, उन्हे बहुत समय तक ससार में परिभ्रमण करना होता है।"[1]

इस गीतिका को विद्याधरो ने ग्रहण किया।

गंधर्वदत्ता और वीणावादक ने वीणा बजाकर गांधार ग्राम की मूर्छना से, एकचित्त होकर, तीन स्थान और क्रिया से शुद्ध, ताल, लय और ग्रह की समता-पूर्वक विष्णुगीतिका का गान किया। नागरको ने भूरि-भूरि प्रशसा की। श्रेष्ठी ने प्रसन्न मन से इस कार्य के लिए नियुक्त आचार्यो से निर्णय सुनाने का अनुरोध किया। उन्होने कहा—जो इस बिटिया ने गाया है, वही इस ब्राह्मण ने बजाया है, और जो इस ब्राह्मण ने गाया है वही बिटिया ने बजाया है।

यवनिका हटा दी गयी।[2] नागरको ने उत्सव समाप्त होने की घोषणा की। प्रतियोगिता समाप्त हो गयी। गधर्वदत्ता को पति की प्राप्ति हुई। श्रेष्ठी ने नागरको का सम्मान कर उन्हे विसर्जित किया।

चारुदत्त श्रेष्ठी ने एकदिल से प्रार्थना की—आपने अपने दिव्य पुरुषार्थ के बल से गधर्वदत्ता को प्राप्त किया है, अब इसका पाणिग्रहण कर अनुगृहीत करे। लोकश्रुति[3] है—ब्राह्मण की चार भार्याएँ हो सकती है—ब्राह्मणी, क्षत्रियाणी, वैश्या और शूद्री। यह आपके अनुरूप है और कुछ बातो में विशिष्ट भी हो सकती है।

१ उवसम साहुवरिट्ठया ! न हु कोवो वण्णिओ जिणिदेंहि।
हुति हु कोवणसीलया, पावति बहूणि जाइयव्वाइ ॥
चित सभूत नामक मातग मुनियो की कथा मे उच्चवर्गीय लोगों से अपमानित हुए सभूत की क्रोधाग्नि को शात करने के लिए चित्त उसके पास पहुँचता है। उत्तराध्ययन टीका, १३, पृ० १८६ अ।

२ तुलनीय, उदयन और वासवदत्ता के आख्यान से।

३ बृहत्कथाश्लोकसग्रह मे यहाँ मनुस्मृति का प्रमाण उद्धृत है।

स्कंदिल का खूब आदर-सत्कार किया गया। राजा के अनुरूप बहुमूल्य वस्त्राभूषणो से उसे अलंकृत किया गया। गधर्वदत्ता शृङ्गार-प्रसाधन से सज्जित हुई। जैसे लक्ष्मी को कुबेर के समीप बैठाया जाता है, वैसे ही कुल वृद्धाओ ने गधर्वदत्ता को उसके समीप लाकर बैठाया।

श्रेष्ठी ने निवेदन किया—स्वामी! कुल-गोत्र जान कर आप क्या करेगे? या तो आप अग्नि में हवन करे या मेरी पुत्री को करने दे।

पाणिग्रहण की क्रिया संपन्न हुई। दोनोने गर्भगृह में प्रवेश कर रात्रि व्यतीत की।[1]

(आ) **बृहत्कथाश्लोक संग्रह** ' नरवाहनदत्त और सानुदास की कन्या गंधर्वदत्ता का विवाह : नरवाहनदत्त किसी अज्ञात देश में आया, जहाँ उसने घंटियो की आवाज करते हुए गोमंडल को देखा। पूर्व दिशा में सूर्य का उदय हो रहा था और भ्रमरो का गुजारव सुनाई पड रहा था। वह एक उद्यान मे आया। उद्यान में उच्च शिखरवाला एक मदिर था। द्वारपाल ने अन्दर जाने से उसे रोका। वीणा बजाते हुए उसने मंदिर में प्रवेश किया। वहाँ बैठा हुआ नागरको का अधिपति, अमितगति के वीणावादन के श्रवण में अनुरक्त था। उसने उठकर अमितगति को अपने शिलासन पर बैठाया। उसके पैरो का सवाहन किया और पाद प्रक्षालन पूर्वक अर्घ्य प्रदान किया।

नरवाहनदत्त ने अपना परिचय देते हुए कहा—वह वत्सदेश निवासी ब्राह्मण है। मंत्रवादियो के मुख से सुन कर उसने किसी यक्षी की साधना की। यक्षी के साथ वह पर्वत और वनो में भ्रमण कर रमण करने लगा। एक बार उसके मन मे विचार आया कि पातालमत्र की आराधना कर असुरी के साथ रमण करना चाहिए। यक्षी को इस बात का पता लगा तो ईर्ष्यावश उसने उसे भूमि पर ला पटका।

नागरकेश्वर ने कहा—यह प्रदेश अग जन-पद की राजधानी चपा है। मेरा नाम दत्तक है और वीणा प्रिय होने से मै वीणादत्तक नाम से प्रख्यात हूँ।

वत्सदेशवासी ब्राह्मण ने वीणादत्तक के साथ प्रवहण में सवार हो चपा के लिए प्रस्थान किया। मार्ग मे वीणावादन में अनुरक्त हलवाहो को देखा। वटवृक्ष के नीचे बैठे हुए ग्वाले बेसुरी वीणा बजा रहे थे। दोनो वणिक्पथ पर पहुँचे। नगरद्वार के पास वीणा के विभिन्न अवयवो से भरी हुई गाड़ियो को देखा। ये गाडियाँ वीणा—

---

[1] पृ० १२६–३३

अवयवो की विक्री के लिए लायी गयी थीं। वढ़ई, लुहार, कुम्हार और वरुड वीणा-वादन में व्यस्त थे।

यान से उतरकर ब्राह्मण ने वीणादत्तक के गृह में प्रवेश किया। वहाँ मर्दनगास्त्र के विशेषज्ञो और सूदगास्त्र में निष्णात रसोइयो ने उसकी सेवा-सुश्रूषा की। दत्तक के परिवार के साथ आनन्दपूर्वक उसने भोजन किया। ताम्बूल आदि से मुखशुद्धि की गयी।

ब्राह्मण ने दत्तक से पूछा—इस नगरी में वीणा के इतने अधिक रसिक लोग क्यो दिखाई देते है?

वीणादत्तक—यहाँ समस्त गुणो की खान त्रैलोक्यसुंदरी गधर्वदत्ता रहती है। उसका पिता सानुदास वणिक्पति उसे किसी को नहीं देना चाहता। उसने घोषणा की है कि जो कोई उसे वीणावादन में पराजित करेगा, वही उसके पाणिग्रहण का अधिकारी हो सकता है। चपा में कोई भी ऐसा नगरवासी न मिलेगा जो उसका पाणिग्रहण न करना चाहता हो। ६४ विद्वानो के समक्ष छह छह महीने वाद, नागरिको की गायन-प्रतियोगिता होती है। वहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी अभी तक कोई उसे वीणावादन में पराजित नहीं कर सका।

ये वातें हो ही रही थीं कि वेत्रधारी दो वृद्ध पुरुषो ने आकर निवेदन किया कि श्रेष्ठी ने कहलवाया है कि यदि मित्रो की गोष्ठी तैयार हो तो उत्सव का आयोजन किया जाये।

उत्सव की तैयारी शुरू हो गयी।[1]

वत्सदेगवासी ब्राह्मण ने जानना चाहा कि क्या वह गंधर्वदत्ता के दर्शन कर सकता है? उत्तर मे कहा गया है कि कोई अगान्धर्व उसे नहीं देख सकता और यदि देखना ही हो तो गाधर्व विद्या की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

कठोर स्वरवाले श्रुतिस्वरज्ञान से हीन भूतिक नामक दुर्भग वीणाचार्य को वुलाया गया, लेकिन इस विकृत नर-वानर के दर्शन कर ब्राह्मण को लगा कि न उसे गधर्वविद्या की शिक्षा प्राप्त करना है और न गन्धर्वदत्ता ही लेना है। इतना ही नहीं, इस प्रकार का शिष्यत्व प्राप्त कर सारे राज्य का लाभ भी निद्य है। खैर, वीणादत्तक ने वीणाचार्य को आसन पर बैठाकर निवेदन किया—महाराज! इस यक्षीपति ब्राह्मण को नारदीय (गाधर्व) विद्या सिखाने का अनुग्रह करे। वीणाचार्य ने उत्तर दिया- - यह अभिमानी है, मेरी अवज्ञा करता है और फिर दरिद्र होने के

---

१. १६ १–९३, पृ० १९१–९९ (गन्धर्वदत्तालाभे चम्पाप्रवेश नामक सर्ग)।

कारण एक कौडी तक देने को इसके पास नहीं है। विद्या या तो गुरु की शुश्रूषा से सीखी जाती है या फिर धन खर्च करने से। इन दोनो में से इसके पास एक भी नहीं। दत्तवाहक ने आचार्य से निवेदन किया कि यक्षीकामुक को कोई दरिद्र नहीं कह सकता। वह स्वयं यक्षीकामुक का दास है, और चाहिए तो सुवर्णशत दिए जा सकते है।

तत्पश्चात् सरस्वती की अर्चना कर दुर्व्यवस्थित तंत्रीयुक्तवीणा उसे दी गयी। उसने उसे उलटी तरफ से गोद में रक्खी। यह देखकर आचार्य ने दत्तक की ओर देखकर कहा कि यह आदमी यह भी नहीं जानता कि वीणा कैसी पकडनी चाहिए. फिर इस मंदबुद्धि को कैसे शिक्षा दी जा सकती है। दूसरा वाद्य उसे दिया गया बजाते हुए उसकी चार-पाँच तन्त्रियाँ टूट गई। आचार्य ने दत्तक से कहा कि वीणा सीखकर यह क्या करेगा।

लेकिन तंत्री के छिन्न हो जाने पर भी यक्षीकामुक कोमल स्वर से वीणा बजाने लगा। दत्तक आदि को आश्चर्य हुआ। आचार्य भय, क्रोध, लज्जा और विस्मय के कारण निष्प्रभ होकर देखते रह गये। आचार्य दक्षिणा लेकर वहाँ से चले गये।

एक दिन रात्रि के समय सोते हुए यक्षीकामुक की नजर वीणादत्तक की खूंटी पर लटकी हुई वीणा पर गई। यक्षीकामुक उसे बजाने लगा। उसका मधुर स्वर सुनकर लोग आश्चर्यचकित हो गये और कहने लगे कि जान पडता है कि वीणादत्तक के घर में स्वयं सरस्वती वीणा बजाने के लिए अवतरित हुई है।

प्रात काल नमस्कार कर दत्तक ने यक्षीकामुक को सूचना दी कि नागरक अपने-अपने यानो पर उपस्थित है, उनके साथ उसे भी उत्सव में चलना चाहिए। यक्षी-कामुक आगे-आगे तथा उसके पीछे दत्तक और नागरको ने पैदल ही प्रस्थान किया।

उन्होने गृहपति सानुदास के गृह में प्रवेश किया। पहले कक्ष में महाप-ट्टोर्ण से वेष्टित दत्तक आदि ६४ नागरको के लिए ६४ आसन बिछे हुए थे। यक्षीकामुक के लिए आसन नही था। दत्तक ने अपना आसन उसे दे दिया। दत्तक को अन्य आसन दिया गया। गणिकाओ का आगमन हुआ। स्त्रियाँ परस्पर वार्तालाप कर रही थीं कि सानुदास ने अपनी कन्या के लिए वीणावादन मे विजयी होने की शर्त रखकर बडा अनर्थ कर दिया है, क्योकि यदि रूप की होड लगती तो निश्चय ही यक्षीकामुक उसे प्राप्त कर लेता। सबने सभा में प्रवेश किया। श्रेष्ठी द्वारा नागरको का स्वागत किया गया। कचुकी ने नागरको को गंधर्वदत्ता

को निर्देश देने का अनुरोध किया। किसी से कोई उत्तर न पाकर जब वह वापिस जाने लगा तो यक्षीकामुक ने उसे बुलाकर कहा कि श्रेष्ठीकन्या सभा में उपस्थित हो। दत्तक का म्लान मुख खिल उठा। यक्षीकामुक की ओर देखकर उसने प्रसन्नता व्यक्त की।

यवनिका को हटाकर, कचुकियो से आवृत्त गंधर्वदत्ता (वर्णन) ने सभागृह में प्रवेश किया। कचुकी ने दक्षिण हाथ उठाकर श्रेष्ठीवचन की घोषणा की कि जो कोई वीणा वजा सकता हो, वह आगे आये। वीणादत्तक से अनुरोध किया गया लेकिन उसने सिर हिलाकर अनिच्छा प्रकट की। किसी अन्य नागरक ने वीणावादन किया जिसे सुनकर 'साधु-साधु' की आवाज सुनाई दी। लेकिन जब गंधर्वदत्ता ने सभाजनो के समक्ष सुमधुर गान किया तो सब रग फीका पड गया।

विष्णुगीतिका—पूर्वकाल में वामन रूप धारण कर वलि को छलते समय विष्णु भगवान् ने इस लोक को तीन पदो से आक्रान्त कर लिया था। गंधर्व जनो से सेवित विश्वावसु नामक गंधर्व ने आकाश में विहार करते समय उसकी प्रदक्षिणा की। उसने स्वयं गरुडध्वज विष्णु की स्तुति करते हुए नारायणस्तुति नामक अद्भुत गीत गाया। इस गंधर्व से नारद ने, नारद से, वृत्रासुर इन्द्र ने, इन्द्र से अर्जुन ने, अर्जुन से विराहसुता उत्तरा ने, उत्तरा से परीक्षित ने, और परीक्षित से जनमेजय ने इसे सीखा। जनमेजय से यक्षीकामुक के पिता ने और अपने पिता से यक्षीकामुक ने इस गांधारग्राम की शिक्षा प्राप्त की।

यक्षीकामुक ने गोष्ठी मे प्रवेश किया। गन्धर्वदत्ता का आगमन। कचुकी द्वारा लायी हुई वीणा को देखकर यक्षीकामुक ने कहा—इसके उदरभाग में लूतातन्तु मौजूद है इससे यह जड हो गयी है। दूसरी वीणा लायी गयी, लेकिन वह केशदूषित तंत्री से युक्त थी। तत्पश्चात् सुगन्धित कुसुमो से अर्चित कच्छपाकार फलक वाली वीणा लेकर सानुदास स्वयं उपस्थित हुआ। यक्षीकामुक की प्रदक्षिणा कर उसे वीणा दी गयी। एक अन्य वीणा गधर्वदत्ता को दी। दोनो ने वीणावादन किया। यक्षीकामुक ने मन्द-मन्द एक दिव्य गीत बजाया। गन्धर्वदत्ता के कोमल गीत को श्रवण कर सभाजन मानो मूर्च्छित हो गये। चेतना प्राप्त करने के पश्चात् कंचुकी ने उनसे प्रश्न किया—आप लोग निष्पक्ष होकर निर्णय सुनायें कि जो गन्धर्वदत्ता ने गाया है, वही यक्षीकामुक ने बजाया है या नहीं? इसपर ऊपर हाथ उठाकर, उच्च स्वर से सभासदो ने घोषणा की कि वीणावादक कन्या को प्राप्त करने का अधिकारी है।

सभाविसर्जित हो गयी। सानुदास वीणादत्तक के साथ यक्षीकामुक को घर के भीतर लिवा ले गया। यक्षीकामुक को सबोधन करके उसने कहा—हे यक्षीकामुक! हम सब आपके दास है। आपने कठिन विपत्ति से हमारा उद्धार किया है। फिर वह कहने लगा—आज का दिन शुभ दिन है, गन्धर्वदत्ता का पाणिग्रहण करने का अनुग्रह करें। यक्षीकामुक ने उत्तर दिया—मै पवित्र ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, असवर्ण कन्या से कैसे विवाह कर सकता हूँ ?

सानुदास—यह कन्या सवर्णा है, सवर्णा ही नहीं, उत्कृष्ट भी हो सकती है। आप विश्वस्त होकर पाणिग्रहण करे। मनु महाराजने कहा है—अपने से निम्न वर्ण की भार्या को स्वीकार करता हुआ ब्राह्मण दोष का भागी नहीं होता।

पाणिग्रहण सस्कार सम्पन्न हुआ।[1]

६ पुष्करमधु का पान

(अ) **वसुदेवहिंडी:** चारुदत्त की माँ के भाई सर्वार्थ की कन्या मित्रवती का चारुदत्त के साथ पाणिग्रहण।[2]

चारुदत्त का अपने मित्रो के साथ उद्यान-गमन। प्यास लगने के कारण एक वृक्ष के नीचे विश्राम। चारुदत्त का मित्र हरिशिख पास के पोखर में उतरा। कोई आश्चर्यकारी वस्तु देखने के लिए उसने चारुदत्त को बुलाया। उसने पोखर में लगे हुए सुंदर कमलो के अपूर्व रस की ओर चारुदत्त का ध्यान आकर्षित किया। गोमुख ने बताया कि देवो द्वारा उपभोग्य वह पुष्करमधु है। उसे कमलिनी के पत्तो मे ग्रहण कर लिया गया।

प्रश्न हुआ कि मनुष्यलोक में दुर्लभ वह पुष्करमधु किसे दिया जाये ? क्या राजा को दिया जाये ? राजा प्रसन्न होकर शायद आजीविका का प्रबंध कर सके। लेकिन राजा के दर्शन दुर्लभ होते है और वह जल्दी प्रसन्न नहीं होता। तत्पश्चात् अमात्य और नगररक्षक का नाम सुझाया गया। अंत में समस्त कार्यों के साधक चारुदत्त को प्रदान करने का निश्चय किया गया। चारुदत्त ने कहा कि क्या वे नहीं जानते कि वह मधु, मांस और मद्य का सेवन न करने वाले कुल मे उत्पन्न हुआ है ? गोमुख ने उत्तर दिया—मित्र! हम जानते है, लेकिन यह मद्य नहीं, देवो के योग्य अमृत है। पुष्करमधु का पान करने से चारुस्वामी की तृप्ति

१. वही, गन्धर्वदत्ताविवाह, १७ वा सर्ग, पृ० २००–२१७
२ वसुदेवहिंडी पृ० १४०

हुई। मित्रो ने चारुदत्त को विश्राम करने के लिए कहा और वे पुष्पो का चयन करने चल दिये।

चारुदत्त को मधुरस का नशा चढने लगा। अशोक वृक्ष के नीचे उसे एक सुन्दर युवती दिखायी दी। वह कोई अप्सरा थी और देवाधिपति इन्द्र ने चारुदत्त की सेवा में उपस्थित रहने के लिए उसे भेजा था। अप्सरा ने बताया कि देवता लोग सबको दर्शन नहीं देते, लेकिन वे सबको देख सकते है। अतः चारुदत्त के मित्र अप्सरा को नहीं देख सकते और अप्सरा के प्रभाव से चारुदत्त को भी देखने में असमर्थ है।

मद के कारण चारुदत्त के पैर लडखडाने लगे। अप्सरा ने अपने दाहिने हाथ से चारुदत्त की भुजाएँ और उसका सिर थाम लिया। चारुदत्त लडखडाता हुआ उसके कण्ठ का अवलंबन लेकर चला। देव-अप्सरा के स्पर्श से उसका शरीर रोमांचित हो उठा। अप्सरा अपने विमान में बैठाकर उसे अपने भवन में ले गयी। अपनी उम्र वाली तरुणियो से वह परिवेष्टित थी। विषयसुख भोगने के लिए उसने चारुदत्त को आमंत्रित किया। रतिपरायण चारुदत्त निद्रादेवी की गोद में सो गया।

नशा उतरने पर आँख खुलीं तो उसे वसततिलका का भवन दिखायी दिया। वसततिलका ने कहा—मै गणिका पुत्री वसततिलका हूँ, कलाओ की शिक्षा मैने प्राप्त की है। धन का मुझे लोभ नहीं, गुण मुझे प्रिय है। मैने हृदय से तुम्हें वरण किया है। तुम्हारी माता की अनुमति से गोमुख आदि तुम्हारे मित्रो ने उद्यान में पहुँच, किसी युक्ति से तुम्हे मुझे सौंप दिया था। उसके बाद वह वस्त्र बदलकर आई और हाथो की अंजलि-पूर्वक चारुदत्त से विनयपूर्वक कहने लगी—
"मै तुम्हारी सेविका हूँ, मुझे भार्या रूप में स्वीकार करो। ये देखिए, ये मेर क्षौम-वस्त्र जो मेरे कन्यापन को सूचित करते है। मै तुम्हारी जीवनपर्यंत उपकारिणी बनकर रहूँगी।"

चारुदत्त ने वसततिलका को भार्या रूप मे स्वीकार किया। उसके साथ रहकर वह स्वच्छन्द विहार करने लगा। उसकी माँ कुछ-न-कुछ उपहार आदि उनके लिए हमेशा भेजती रहती। इस प्रकार विषयसुख का उपभोग करते हुए १२ वर्ष व्यतीत हो गये।[1]

१. वही पृ० १४२–४३

(आ) **बृहत्कथाश्लोकसंग्रह:** एक उपवन में पहुँच ध्रुवक ने सानुदास के लिए माधवी और आम्र वृक्ष के पल्लवो से उच्च आसन तैयार किया। अपनी प्रियाओ के हाथो से मधुपान करते हुए मित्रगण उपस्थित थे। वसतराग गाया जा रहा था, वेणुतत्री का मधुर शब्द सुनाई दे रहा था, तथा भौंरो का गुंजार और कोकिल की मधुर ध्वनि सुनाई पड रही थी। कर्दम और शैवाल से लिपटा हुआ कोई पुरुष कमलपत्र में पुष्करमधु लिये हुए सरोवर से निकला। एक मित्र ने कहा—अरे मूर्ख! यह पुष्करमधु क्या, तू अनर्थ की जड ले आया है। यदि सब मित्र इसका पान करने लगे तो एक-एक बून्द भी उनके हिस्से में न आये। उन्होने सोचा कि राजाओ के लिए दुर्लभ इस पुष्करमधु को राजा को क्यो न दे दिया जाय। लेकिन राजा से और कोई माँग लेगा, वे रत्न के लोभी जो होते हैं। पाप भावना से प्रोत्साहित हुआ राजा हमारा सर्वस्व हरण कर सकता है, अत. उसे देना ठीक नहीं! इसमें अधिक रस वाला स्वाद है, मद्य यह नहीं है, इसलिए सानुदास ही क्यो न इसका पान करे? तत्पश्चात् मित्रो के अनुरोध पर, सानुदास ने पुष्करमधु का पान कर लिया। यह मधु अत्यन्त स्वादिष्ट था, मानो कोई अपूर्व रस हो, अमृत भी उसके सामने फीका जान पडता था। रस की गध से सानुदास को प्यास लगी। उसके पान करने से उसे चक्कर आने लगा।

इतने में सानुदास को किसी प्रमदा के आक्रन्दन की ध्वनि सुनाई दी। आख्यायिका, कथा, काव्य और नाटको में ऐसी प्रमदा का वर्णन सुनने में नहीं आया था। सानुदास ने उससे दुख का कारण पूछा। प्रमदा ने वताया—आप ही मेरे दुख के कारण है। सानुदास ने उसे ढाढस बधाया। प्रमदा ने कहा कि वह उसके शरीर की कामना करती है। उसका नाम गंगदत्ता था। वह उसे खींचकर अपने भवन में ले गयी। सानुदास को विश्राम करने के लिए कहा गया; उसके पीने के लिए पुष्करमधु मगवाया। सानुदास ने सोचा कि अवश्य ही गंगदत्ता यक्षी होनी चाहिए, अन्यथा मनुष्यलोक में दुर्लभ पुष्करमधु उसके पास कहाँ से आया? सानुदास ने पुष्करमधु की गध से अधिवासित वासमंदिर में प्रवेश किया। एक दूसरे को शरीर का प्रदान। तत्पश्चात् दोनो सुहृद्गोष्ठी में सम्मिलित हुए। गगदत्ता अपने हाथ का सहारा देकर सानुदास को ले गयी। जब अपने मित्रो को सानुदास दिखायी न दिया तो वे लोग आश्चर्य में पड गये। एक ने कहा कि उसे कोई यक्षकन्या सिद्ध हो गयी है, इसलिए वह अदृश्य हो गया है। किसी ने ताली वजाकर हँसते हुए अदृश्य यक्षीभर्ता को नमस्कार किया।

उन्होंने सानुदास को निश्चिंत होकर गंगदत्ता के घर जाने को कहा, और वे स्वयं अपने स्थान को लौट गये।

सानुदास अपने मित्रो द्वारा पुष्करमधु का पान कराकर ठगा गया था, लेकिन कान्ता और आसव के रसास्वाद के आनन्द के कारण वह उनपर नाराज नहीं हुआ। सूर्य के अस्ताचल की ओर गमन करने पर सानुदास ने गंगदत्ता के गृह में प्रवेश किया।[1]

दोनो का आनन्दपूर्वक समय व्यतीत होने लगा। एक दिन दारिका सानुदास को उसके घर लेकर गयी। सानुदास ने अपनी माता से पिताजी के स्वर्ग-वास का समाचार सुना। गम्भीर शोक से पीडित जान राजा ने उसे बुलाया। आभूषण, वस्त्र, और चदन आदि से उसका सत्कार कर परपरागत श्रेष्ठीपद की रक्षा करने के लिए उससे अनुरोध किया। कुछ समय वाद ध्रुवक ने उपस्थित होकर सानुदास से निवेदन किया कि वह शोक-पीडित गंगदत्ता को आश्वासन प्रदान करे। सानुदास ने उत्तर दिया—उसकी वाल्यावस्था गुजर चुकी है, इसलिए अपनी माता और मातामही के मार्ग का सेवन करना ही उसके लिए श्रेयस्कर है। तथा चिरकाल तक सतीधर्म का पालन करते हुए भी आखिर तो वह वेश्या ही है। कुटुम्बियो के लिए गणिकाओ में आसक्ति रखना और उनके शोक से संतप्त होने पर शिष्टाचार प्रदर्शित करना ठीक नहीं। लेकिन ध्रुवक के वहुत कहने-सुनने पर सानुदास उसे आश्वासन देने के लिए उसके घर पहुँचा। सानुदास के वियोग में गंगदत्ता अत्यन्त कृश हो गयी थी। सानुदास को देखकर वह क्रंदन करने लगी। सानुदास ने उसे ढाढस वधाया। दोनो ने एक साथ स्नान किया, जल की अञ्जलि प्रदान की। मदिरा से पूर्ण चषक मगाया गया। गङ्गदत्ता की माता ने दुखनाश करने के लिए तर्पण करने का अनुरोध किया। गणिका की माता के अनुरोध पर सानुदास ने त्रिफला का स्वादयुक्त मदिरा का पान किया। मदिरा के नशे के कारण पितृशोक विस्मृति के गर्भ में पहुँच गया। सानुदास के आदेश पर परिचारिकाओ द्वारा मदिरा उपस्थित की गयी। मदिरा और काम के वशीभूत हो समय व्यतीत होने लगा।

(मित्रो ने एक चाल चली।) एक दिन गणिका की माता ने एक गणिका द्वारा सानुदास को कहलवाया—"तेरी सास कहती है कि तू रूक्ष है इसलिय तेरे

---

१ सानुदासकथानामक १८ वें सर्ग का प्रथम भाग (१-९२), पृ० २१९-२६।

शरीर में अभ्यग लगाने की आवश्यकता है। अभ्यंग के अभाव में गंगदत्ता भी परुष हो गयी है। अतः तुम्हे शरीर में तेल का मर्दन करना चाहिए।" सानुदास के वस्त्र उतारकर उसके शरीर पर कटु तेल का मर्दन किया गया फिर उसे कहा गया कि थोडी देर दारिका का अभ्यग किया जायेगा, इसलिए वह नीचे चला जाये। छठी मंजिल पर उसे रत्न सस्कार करने वाले दिखाई दिये। उन्होने हाथ जोडकर कहा कि सर्वकलाओ मे निष्णात होने के कारण उसके सामने उन्हे लज्जा आती है। उन्होने उसे अलङ्कारकर्म के लिए पाँचवीं मजिल पर जाने की प्रार्थना की। पाँचवीं मंजिल पर से चित्रकारो ने चौथी पर भेज दिया। तत्पश्चात् घटदासियो ने उसके ऊपर गोवर का पानी डाल उसे वाहर निकाल दिया। प्रासाद पर वंदिजनो की ध्वनि सुनाई पडी।[1]

श्रेष्ठीपुत्र की देशविदेशयात्रा

(अ) **वसुदेवहिंडी** : चारुदत्त की देशविदेशयात्रा वसततिलका गणिका के घर से चलकर देशविदेश की यात्रा के पश्चात् अपनी माता और पत्नी से पुनर्मिलन की कथा के लिए देखिए पीछे (पृ० ३१- ३७)।

(आ) **बृहत्कथाश्लोकसंग्रह** सानुदास की देशविदेश यात्रा : सानुदास ने अपने घर की ओर गमन किया। पुरवासी उसे धिक्कार रहे थे। जो भी कोई मित्र उसे सामने देखता, वही घृणा से मुँह मोड लेता। जिस घर के आँगन में वह जाता, वहीं लोग उसके ऊपर गोवर का पानी फेकते। इस प्रकार लोगो से तिरस्कृत हो, वह अपने गृहद्वार पर पहुँचा। घर मे प्रवेश करते हुए सानुदास को द्वारपाल ने रोक दिया। सानुदास ने प्रश्न किया कि क्या माता मित्रवती[2] अव नहीं रही? द्वारपाल ने उत्तर दिया—उसकी अनाथ माता घर वेचकर अपने पौत्र और वधू के साथ अन्यत्र चली गयी है। प्रथम कक्ष में जहाँ वढई काम कर रहा है, वहाँ जाकर पूछो। ज्ञात हुआ कि दरिद्रता के कारण वह अपनी पुत्रवधू के साथ दरिद्रवाटक (दरिद्रो की वस्ती) में जाकर रहने लगी है। वहाँ पहुँचकर सानुदास ने अनेक वालको से घिरे हुए, नीम के नीचे वैठे अपने पुत्र दत्तक को देखा। वह उनका राजा वना हुआ था। सानुदास दत्तक के पीछे-पीछे चलकर जीर्ण-शीर्ण फटी-टूटी चटाइयो को जोडकर वनाई हुई कुटिका के आँगन में पहुँचा। दासी

१ वही, दूसरा भाग, ९३–१३२ पृ० २२७–३०।
२ वसुदेवहिंडी में मित्रवती चारुदत्त की पत्नी का नाम है।

ने उसे पहचानकर मित्रवती को खबर दी। माँ ने, जिस अवस्था में वह बैठी थी उसी अवस्था में बाहर निकलकर सानुदास का आलिंगन किया। ऐसा लगा कि वह गाढ निद्रा मे सोयी हुई है। न वह कपित हुई और न उसने श्वास ही लिया। उसके नेत्रो से अविरल जल की धारा वह रही थी। दरिद्रता की मूर्ति के समान वह जान पडी। सानुदास के स्नान के लिए पडौस से, लाख से बन्द किये हुए छेदवाला और ओठ-टूटा पानी का घडा लाया गया। लेकिन वह घडा फूट गया और सानुदास को पुष्करिणी में जाकर स्नान करना पडा। कांजी और कोदो को वह बडे मुश्किल से गले उतार सका। एक रात एक लाख वर्ष की भाँति बितायी। इस परिस्थिति मे सानुदास को बहुत वैराग्य हुआ। प्रातःकाल होने पर उसने अपनी माँ के सामने प्रतिज्ञा की कि प्रक्षपित द्रव्य का चौगुना धन कमाकर ही वह घर मे पाँव रक्खेगा। उसकी माता ने उसे परदेश जाने से रोकते हुए कहा कि वह किसी-न-किसी तरह उसकी और उसकी स्त्री की आजीविका चलायेगी। लेकिन सानुदास ने एक न सुनी। माता को प्रणाम करके नरक के समान उस दरिद्र-वाटक से निकल कर वह चल दिया। माता कुछ दूर तक उसके साथ आई। उसने ताम्रलिप्ति मे उसके मामा के घर जाने का अनुरोध किया। पितृबधुओ की अपेक्षा मातृबधुओ की ही उसने प्रशसा की।

सानुदास ने पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में फटी पुरानी छतरी और जूते लिये, कधो पर पुराना चर्म और भोजन-पात्र ले जाते हुए यात्री दिखाई पडे। सानुदास के परिचारक बन, उसे रम्य कथाएँ सुनाते हुए वे आगे चढे। सानुदास सिद्धकच्छप ग्राम में पहुँचा। वहाँ सानुदास अपने पिता मित्रवर्मा के भृत्य सिद्धार्थक नाम के वणिक् के घर मे गया। उसने सानुदास को धन देना चाहा। सानुदास ने सार्थ के साथ ताम्रलिप्ति के लिए प्रस्थान किया। खण्ड-चर्म नामक पाशुपत का समागम। अटवी में प्रवेश। गंभीर गुफा वाली नदी। कालरात्रि के समान पुलिदसेना का आक्रमण। सभ्रम के कारण दिग्भ्रांत होकर सानुदास का पलायन। सार्थ से भ्रष्ट होकर गहन वन में प्रवेश। ताम्रलिप्ति के लिए गमन। वहाँ पहुँचकर अपने मामा गगदत्त के घर की तलाश। एक वणिक् ने कहा कि गगदत्त के घर को कौन नहीं जानता? जो पूर्णमासी के चन्द्रमण्डल को नहीं जानता, वह गगदत्त के घर को भी नहीं जानता। वह वणिक् स्वय सानुदास को उसके घर ले गया। सानुदास का स्वागत। मामा ने भाणजे से कहा कि उसके अपने पास जो अतुल धन की राशि है, वह मित्रवर्मा की

धनराशि से ही अर्जित की गयी है, अतः जितना धन कमाकर लाने की उसने प्रतिज्ञा की है, उससे चौगुना धन लेकर वह अपनी माँ के पास लौटकर जा सकता है। सानुदास ने उत्तर में कहा—मामाजी! अर्थोपार्जन के लिए मैंने जो दृढ़ प्रतिज्ञा की है, उसमें आप विघ्न उपस्थित न करे। तत्पश्चात् समुद्र यात्रा के लिए गमन करने वाले किसी सांयात्रिक के साथ, प्रशस्त तिथि और नक्षत्र में, देव-द्विज और गुरु की पूजापूर्वक, उसने अपनी यात्रा प्रारंभ की।[1]

जहाज का टूटना। समुद्र तट पर पहुँच एक अंगना को देखा। जहाज फट जाने के कारण वह भी उस तट पर आ लगी थी। राजगृह के निवासी सागर सार्थवाह और यवन देशोत्पन्न यावनी नाम की उसकी भार्या की वह पुत्री थी। उसका नाम था सागरदिन्ना। चपानिवासी मित्रवर्मा के सकल कलाविद् सानुदास नामक पुत्र के गुणो की प्रशंसा सुनकर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करने का सागर ने सकल्प किया था। दोनो ने परस्पर अपना परिचय दिया। समुद्र अपनी गंभीर ध्वनि से तूर्य का वादन कर रहा था, शिलीमुख श्रुतिमधुर गान गा रहे थे, और उन्मत्त मयूर नृत्य कर रहे थे। ऐसे सुहावने समय में नायिका के स्वेदयुक्त आगे बढते हुए दक्षिण कर को नायक ने थाम, उसे आलिंगनपाश में बांध लिया।[2]

दोनो प्रीतिपूर्वक रहने लगे। उन्होने वृक्ष पर ध्वजा फहरा दी, रात्रि में अग्नि प्रज्वलित की, जिससे कोई नाविक उन दोनो को वहाँ से ले जाकर स्वदेश पहुँचा दे। यानपात्र मे प्रस्थान। पूर्व की भाँति यानपात्र विपन्नावस्था को प्राप्त। समुद्रदिन्ना का जल के प्रवाह में वह जाना। सानुदास एक ग्राम में पहुँचा। जिस किसी से वह कुछ पूछता, उसे उत्तर मिलता—"तुम्हारी बात समझ में नहीं आती।[3] किसी दुभाषिये की सहायता से वह अपने एक रिश्तेदार के घर गया। पता लगा कि वह पांड्यदेश में पहुँच गया है। प्रात:काल किसी सत्रमडप (धर्मशाला) में गया, जहाँ विदेशियों का क्षौरकर्म हो रहा था, कहीं मालिश की जा रही थी। पांड्य-मथुराके जौहरी-बाजार में पहुँचा। किसी आभूषण का दाम कूतने के कारण उसे कुछ द्रव्य की प्राप्ति हुई। सानुदास की ख्याति सुनकर राजा ने उसे अपना रत्न-परीक्षक नियुक्त कर लिया। तत्पश्चात् थोड़ी पूंजी से अधिक धन कमाने के

१ वही, भाग ३, १३३–२५२ पृ० २३४-४२

२ वही, भाग ४, २५३-३६, पृ० २४२-४७।

३- मूल पाठ है 'घन्निनु चोल्लिति'-तमिल भाषा में।

लिए उसने कपास का व्यपार किया। उसकी सात ढेरियाँ लगाईं, किन्तु दुर्भाग्य से मूषक दीपक की जलती हुई बत्ती लेकर भागा और सारी कपास जलकर खाक हो गयी।

पांड्यमथुरा से उत्तर दिशा की ओर चला। वटवृक्ष के नीचे विश्राम किया। गौडभाषा में बातचीत करने वालो से मुलाकात हुई। सानुदास शिविका में सवार हो ताम्रलिप्ति पहुँच अपने मामा से मिला।[1]

घर लौट जाने के बाद मामा ने उपदेश दिया। आचेर नामक वणिक् की अनेक वणिको के साथ सुवर्णभूमि जाने की तैयारी। सानुदास भी साथ चल दिया। सुवर्णभूमि पहुँच जहाज ने लगर डाला। प्रात काल सार्थवाह का आदेश पा, कमर में भोजन का सामान बाध और गले में तेल के कुप्पे लटका कोमल-स्थूल और शोष-दोष आदि से रहित वेत्रलताका सहारा लेकर यात्रियो ने पर्वत पर चढना आरंभ किया। पर्वत की चोटी पर पहुँच कर रात्रि व्यतीत की। वहाँ एक नदी दिखायी दी जहाँ विविध आकार के पाषाण पडे हुए थे। आचेर ने इन पाषाणो को स्पर्श करने की मनाही की। दूसरे तट पर बासो का झुर-मुट खडा था। उस पार हवा के चलने से बांस[2] इस पार झुक जाते थे। इनपर आरूढ़ होकर यात्री नदी के उस पार उतर गये। इस विभीषण पथ को वेणुपथ कहा गया है। यहाँ से दो योजन चलकर एक पतला रास्ता आया जिसके दोनो ओर अधकार से पूर्ण एक भीम खड्ड दिखाई दिया। आचेर ने गीली और सूखी लकडियाँ, पत्ते और तृण आदि एकत्र कर धुआँ करने का आदेश दिया। धुएँ को देख जीन और चीतो के चमडो के बने बख्तर-लदे बकरो की बिक्री के लिए किरात वहाँ आये। इन बकरो को यात्रियो ने कुसुभ, नीले और शाकलिका वस्त्र, खाण्ड, चावल, सिंदूर, नमक और तेल के बदले खरीद लिया। हाथ में लम्बे बांस ले, बकरो पर सवार होकर वे विकट मार्ग से आगे बढे। रास्ता इतना सकरा था कि यात्रियों का पीछे लौटना दुष्कर था, इसलिए सब लोग पंक्तिबद्ध होकर आगे ही चलते चले गये। इस पथ का नाम अजपथ है जो बहुत भयकर है। यात्री आगे बढ ही रहे थे कि इतने में बडे-बडे धनुष लिए म्लेच्छो की सेना दिखायी दी। क्रय-विक्रय करके वे लोग वापिस लौट गये। बकरो की पक्ति आगे बढी। पंक्ति मे आचेर का छठा और सानुदास का सातवा स्थान था।

१ वही, भाग '१, ३०७-४२२, पृ० २४७-५८
२ यहाँ बास के लिए मस्कर शब्द का प्रयोग है।

इस समय आचेर ने व्यापारियों को अपने-अपने वकरे मार डालने का आदेश दिया। सानुदास ने कहा कि ऐसे सुवर्ण को धिक्कार है जो प्राणिवध से प्राप्त किया जाये (इस चर्चा के लिए देखिए, पीछे, पृ० ३५-३६)। सानुदास ने अपने वकरे का वध न कर, दूसरे के वकरे को ताडित किया। दुर्गम मार्ग पर चलने के कारण कुछ ही साथी शेष रह गये थे। व्यापारियो का दल विष्णुपदी गगा पर पहुँचा। सबको भूख लग आई थी। नायक ने आदेश दिया कि वकरो को मारकर उनका मांस भक्षण किया जाय और फिर उनकी खाल को उलट, उसे सीं कर ओढ लिया जाये। उसे इस तरह ओढा जाये कि खून से तर हुआ अन्दर का भाग ऊपर दिखायी पडने लगे। तत्पश्चात् यहाँ हेमभूमि[1] से आने वाले पक्षी उन्हे मासपिण्ड समझ आकाश-मार्ग से रत्नद्वीप[2] को लेकर चल

१ वसुदेवहिंडी में रत्नद्वीप।

२ जव चारुदत्त के साथी वकरों को मारने के लिए उतारू हो गये तो चारुदत्त ने रुद्रदत्त से कहा—यदि मुझे ऐसा मालूम होता कि इस व्यापार में यह सव करना होता है तो मै तुम लोगों के साथ कभी न आता। इस वकरे ने तो जगल पार करने में कितनी सहायता की है!

रुद्रदत्त ने उत्तर दिया—तुम अकेले क्या कर सकते हो?

चारुदत्त—मै अपनी देह का त्याग कर दूँगा।

तत्पश्चात् चारुदत्त के मरणभय से अपने साथियों के साथ वह उस वकरे को मारने लगा। चारुदत्त उसे न रोक सका। चारुदत्त ने वकरे को धर्म का उपदेश दिया और णमोकार मन्त्र पढा। रुद्रदत्त और उसके साथियों ने वकरे को मार दिया।

वृहत्कथाश्लोकसग्रह (१८. ४६९–४८२, पृ० २६३–४) में इस प्रसग पर सानुदास कहता है—ऐसे सुवर्ण को धिक्कार है जिसके लिए प्राणिवध करना पडे। यह वकरा मुझे ही क्यों न मार दे!

यह सुनकर रोष और विषाद के कारण निष्प्रभ हुआ आचेर गुनगुनाते हुए (मूल में 'अम्बूकृत' शब्द है जिसका अर्थ होता है होठ वन्द कर गुनगुनाना) वोला—अरे वैल! तू समय और असमय को नहीं समझता। कहाँ कृपाण का प्रयोग करना चाहिए और कहाँ कृपणों पर कृपा करना उचित है—यह तू नहीं जानता। अरे सिद्धात के पडित! तेरी करुणा स्पष्ट है कि एक जरासी वात के लिए तू सोलह आदमियों का वध करना चाहता है? तुझे पता है कि इस वकरे के मार देने पर चौदह प्राणियों को जीवन मिलेगा और न मारने पर इसके साथ तुम और हम सव रसातल को पहुँच जायेगे! क्षुद्र प्राणी की रक्षा के लिए दुस्त्याज्य अपनी आत्मा का त्याग कभी नहीं करना चाहिए। अपनी आत्मा की तो दारा और धन से सदा रक्षा ही करनी चाहिए। अपने कथन के समर्थन में उसने भगवद्गीता का श्लोक पढा, और जैसे कृष्ण ने अर्जुन को क्रूर कर्म करने के लिए प्रेरित किया, वैसे ही सानुदास से भी यह क्रूर कर्म कराया। तथा देखिये ४९३–९७, पृ० २६५)

दिये। यह मार्ग समुद्रमार्ग को अपेक्षा भी भीषण था। मार्ग में मांसपिंड को अपनी चोचो से पकडकर ले जाने वाले इन गीधो में युद्ध होने लगा। अपनी चोचे मार-मारकर उन्होने मासपिंड की खाल को चलनी[2] बना दिया। इस झगड़े में जिस मासपिंड में सानुदास बद था वह गीध की चोच से छूटकर एक तालाब मे गिर पडा। सानुदास ने अपने शरीर को कमलपत्रो से घर्षित किया। तट पर

१ वेत्रपथ, वेणुपथ और अजपथ का उल्लेख बृहत्कथाश्लोकसग्रह (१८ ४३२-५१८) में कुछ विस्तार के साथ उपलब्ध है। महानिद्देस (१ ७, ५५, पृ० १३०) में जण्णुपथ, अजपथ, मेण्डपथ, सङ्कुपथ, छत्तपथ, वसपथ, सकुणपथ, मूसिकपथ, दरिपथ और वेतपथ (वेत्ताचार) का उल्लेख है। सद्धम्मपज्जोतिकाटीका (पालि टैक्स्ट सोसायटी) में इन पथों की व्याख्या दी गयी है।

वसुदेवहिंडी के चारुदत्त की यात्रा प्रियगुपट्टन से आरभ होती है। बृहत्कथा श्लोकसग्रह का सानुदास सुवर्णभूमि पहुचकर वेत्रपथ के सहारे पर्वत पर आरोहण करता है। वसुदेवहिंडी मे यात्रा का मार्ग मध्य एशिया और बृहत्कथाश्लोकसग्रह में मलय-एशिया जान पड़ता है। सानुदास की कहानी के कुछ अशो से—जैसे शैलोदा नदी पार करना, बकरो और भेडो का विनिमय आदि—जान पड़ता है कि सानुदास का मार्ग भी मध्य एशिया का ही मार्ग रहा होगा। किन्तु गुप्तकाल में सुवर्णद्वीप का महत्त्व बढ़ जाने से कहानी का घटना स्थल मध्य एशिया के स्थान पर सुवर्णभूमि कर दिया गया। देखिए, सार्थवाह, पृ० १३९

२ अन्यत्र (५०९ श्लोक में भारुण्ड का उल्लेख है जैसा कि वसुदेवहिंडी में है।

३ उत्तराध्ययन की नेमिचन्द्रीय वृत्ति (१८, पृ० २५१ अ-२५२) मे पचशैल द्वीप से आने वाले भारुड पक्षियों का उल्लेख है। पचशैल प्रस्थान करने वाले यात्री, समुद्र तट पर स्थित वट वृक्ष की शाखा को पकड़ कर वृक्ष पर पहुँच जाते। वहाँ तीन पैर वाले सोये हुए पक्षि युगल के बीच के पेर को पकड़, उसमें अपने आपको एक कपड़े से बाध लेते। गरुड़ पक्षी को विष्णु का वाहन कहा गया है। इसका आधा भाग मनुष्य का है और आधा पक्षी का। महाभारत (१ १६) मे इसकी कथा दी है।

Pseudo Callisthenes पुस्तक १ ४१ में कच्चे मास का भक्षण करने वाले बृहत्काय पक्षियों का वर्णन है। सिकन्दर ने उसपर सवारी कर आकाश की यात्रा की और फिर वापिस लौट आया। बुद्धघोष की कथाओं में इसे हत्थिलिंग कहा है, इसमें पाँच हाथियों जितनी ताकत होती है। धम्मपद अट्ठकथा के अनुसार रानी सामवती के गर्भवती होने पर राजा ने उसे पहनने के लिए लाल चोगा दिया। हत्थिलिंग रानी को मासखण्ड समझकर उसे आकाश मे उड़ा ले गया। कथासरित्सागर (२ १ ४६-४८) भी देखिए। मडागास्कर, न्यूजीलैंड आदि प्रदेशों में इन बृहत्काय पक्षियों की हड्डियों और अण्डो के जीवावशेष पाये गये हैं, जो इन पक्षियों के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं। देखिए एन० एम० पेंजर, द ओशन आफ स्टोरी, जिल्द १, पृ० १०३-५, तथा १४१ फुटनोट।

पहुँचकर कुछ देर विश्राम किया, फिर तपोवन में प्रवेश किया। वहाँ पिशांग जटाधारी एक मुनि के दर्शन किये।[1]

चंपानगरी केवल पाँच कोस रह गयी थी। वहाँ पहुँचकर सानुदास ने अपने उन्हीं धूर्त मित्रो से घिरे हुए ध्रुवक को देखा। सानुदास मित्रो से गले मिला। जिन्होने उस पर गोवर का पानी फेककर उसे तिरस्कृत किया था, उनका दरिद्रता से उद्धार किया। ध्रुवक ने सलाह दी कि माँ को दरिद्रवाटक मे से लाकर अपने निज के घर मे रक्खा जाये। जैसे कुवेर अलकानगरी में प्रवेश करता है, वैसे ही सानुदास ने चपा में प्रवेश किया। राजा के दर्शन किये। परस्पर दर्शन स्पर्शन के वाद राजा ने आभूषण आदि प्रदान कर सानुदास का सत्कार किया। वह अपनी माँ से मिलने गया। माँ ने अर्घ प्रदान किया।[2]

सानुदास ने सिर से अपनी माँ के चरणो का स्पर्श कर वंदन किया। अपने वेटे को हाथ से पकडकर वह घर के अदर ले गयी। वहाँ पहली पत्नी को वैठे हुए देखा। सानुदास ने गगदत्ता, समुद्रदिन्ना, सिद्धार्थक वणिक्, और आचेर आदि के वृत्तान्त सुनाये, तथा मामा गगदत्त द्वारा सत्कार किये जाने, समुद्र यात्रा करने और यात्रा करते समय जहाज के फटने आदि की कथा सुनाई। सानुदास परिवार के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा।[3]

इस प्रकार हम देखते है कि वसुदेवहिंडी और बृहत्कथाश्लोकसग्रह में केवल कथाओ, कथा-प्रसगो, चरित्रो, चरित्रगत विवरणो, अध्यायो के नामो और वातावरण का ही साम्य नहीं, भाषा और शब्दावलि का भी साम्य देखने में आता है, यद्यपि एक रचना गद्य मे है और दूसरी पद्य में। बृहत्कथाश्लोकसग्रह में कितने ही शब्द ऐसे है जो प्राकृत भाषा से ज्यो-के-त्यो ले लिये गये है। ऐसे भी अनेक शब्दो का प्रयोग यहाँ हुआ है जो अप्रसिद्ध है और सस्कृत साहित्य में प्रायः अन्यत्र नहीं मिलते।

वसुदेवहिंडी और बृहत्कथाश्लोकसग्रह की समान विशेषताओ का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि दोनों ग्रथकर्ताओ के सामने कोई ऐसी कथा सवधी कृति रही होगी जिसको आधार मानकर उन्होने अपनी कृतियो की रचना की। गुणाढ्य की वृहत्कथा के अनुपलब्ध होने से यह अत्यन्त निश्चयपूर्वक कहना कठिन है

१ छठा भाग ४२३–५१८, पृ० २१८–६८।
२ ७ वा भाग, ५९२–६१३, पृ० २७४–७६
३. ८ वा भाग, ६१४–७०२, पृ० २७६–८४

कि इन कृतियो का आधार यही बृहत्कथा थी। फिर भी इस सबंध में प्रोफेसर एफ० लाकोत और डाक्टर एल० आल्सडोर्फ जिन निष्कर्षों पर पहुँचे है, उनसे पता लगता है कि वसुदेवहिडी बृहत्कथा का रूपान्तर होना चाहिये। अवश्य ही वसुदेवहिडी की अपेक्षा बृहत्कथाश्लोकसग्रह काव्य सौष्ठव की शैली में लिखा हुआ अधिक सरस काव्यग्रंथ है जिसमें काव्य छटा के साथ-साथ हास-परिहास और व्यंग्य का पुट देखने में आता है। घटना चक्र यहाँ अधिक विस्तृत, व्यवस्थित और पूर्ण दिखाई देता है। काम प्रसगो का वर्ण अधिक उद्दामता से किया हुआ जान पडता है। वसुदेवहिंडी में कितने ही प्रसग बहुत सक्षिप्त है और कहीं तो अस्पष्ट रह जाते है। ग्रन्थ के सपादन मे उपयोगी किसी शुद्ध प्रति का उपलब्ध न होना भी इसका कारण हो सकता है। जिन प्रतियो का सपादन में उपयोग हुआ है वे अनेक स्थलो पर त्रुटित है। फिर, धर्मप्रधान कथा-ग्रन्थ होने से धार्मिकता की रक्षा करना भी आवश्यक हो जाता है।

४.

जैन कथा-साहित्य : कहानियों का अनुपम भंडार

जैनकथाओं में वैविध्य

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि प्राकृत जैन कथा साहित्य लौकिक कथा-कहानियो का अक्षय भडार है। कितनी ही रोचक और मनोरंजक लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, नीतिकथाएँ, दंतकथाएँ (लीजेड्स), परीकथाएँ, प्राणिकथाएँ, कल्पितकथाएँ, दृष्टान्तकथाएँ, लघुकथाएँ, आख्यान और वार्त्ताएँ, आदि यहाँ उपलब्ध है जो भारतीय सस्कृति की अक्षय निधि है। डा० विटरनित्स के शब्दो मे, इस साहित्य में प्राचीन भारतीय कथा साहित्य के अनेक उज्ज्वल रत्न विद्यमान है। सुप्रसिद्ध डाक्टर हर्टल ने जैन कथाकारो की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए लिखा है कि इन विद्वानो ने हमें कितनी ऐसी अनुपम भारतीय कथाओ का परिचय कराया है जो हमे अन्य किसी स्रोत से उपलब्ध न हो पातीं।

जैन विद्वानो को कहानी कहने का शौक था। वह इसलिए कि जनसाधारण में अपने धर्म का प्रचार करने की उनमें लगन थी। विशुद्ध धार्मिक सिद्धान्तो का उपदेश लोगो को रुचिकर होता नहीं, इसलिए वे उसमें किसी मनोरजक वार्त्ता, आख्यान अथवा दृष्टात का समावेश कर उसे प्रभावकारी बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे।[1] हम कोई भी जैनो का धार्मिक ग्रथ उठाकर देखे, कोई-न-कोई कथा अवश्य मिलेगी—दान की, पूजा की, भक्ति की, परोपकार की, सत्य की, अहिंसा अथवा सांसारिक विषय-भोगो में तृष्णा कम करने की।

अनुपलब्ध कथा-साहित्य

णायाधम्मकहाओ (ज्ञातृधर्मकथा) जैन कथा-साहित्य का सर्वप्रथम ग्रन्थ है जिसमें १९ अध्ययनो में ज्ञातृपुत्र महावीर की धर्मकथाओ का सग्रह है। प्राचीन परम्परा के अनुसार इस ग्रन्थ में साढे तीन करोड कथाएँ और उतनी ही उपकथाओ

१. मलधारी राजशेखरसूरि के विनोदात्मक कथासग्रह (१) में कमल श्रेष्ठी की कहानी आती है। धर्माचरण से हीन होने के कारण उसके पिता ने उसे शिक्षा प्राप्त करने के लिए जैन गुरुओं के पास भेजा। प्रथम गुरु के निकट पहुँच, उपदेश देते समय ऊपर-नीचे जानेवाली उनकी गले की घंटी को वह गिनता रहा। दूसरे गुरु का उपदेश श्रवण करते समय, बिल में से निकलकर बाहर जाने वाली चींटियों की गिनती करता रहा। अन्त में तीसरे गुरु ने कामशास्त्र के रहस्य का प्ररूपण कर उसे धर्म की ओर उन्मुख किया। धर्मकथा के जो आक्षेपणी, विक्षेपणी, सवेदनी और निर्वेदनी नामके चार प्रकार कहे गये हैं उनका तात्पर्य यही है कि पहले तो श्रोता को अनुकूल लगने वाली कथायें सुनाकर उसे आकृष्ट किया जाता है, फिर प्रतिकूल लगने वाली कथाएँ सुनाकर अनुकूल कथाओं की ओर से उसका मन हटाया जाता है, फिर वह धार्मिक विचारों को ग्रहण करने लगता है, और अन्त मे सासारिक विषयभोगों से निवृत्त हो वैराग्य धारण करता है।

के होने का उल्लेख मिलता है। कदाचित् इस सख्या में कुछ अत्युक्ति हो, लेकिन इससे इतना तो पता लगता है कि इस ग्रन्थ में महावीर की कही हुई अनेक प्राचीन कथाऍ विद्यमान थीं, जिनमे से बहुत-सी संभवतः आज उपलब्ध नहीं है।

कितनी ही कथाऍ ऐसी हैं जो पूर्व परंपरा से चली आती है और जिन्हे 'वृद्धसप्रदाय',[1] 'पूर्वप्रवध', 'सम्प्रदायगम्य', 'अनुश्रुतिगम्य' आदि रूप से उल्लिखित किया गया है। वसुदेवहिण्डीकार संघदासगणि वाचक ने अपनी रचना को गुरुपरम्परागत ही स्वीकार किया है। कितनी ही रचनाऍ नष्ट हो गयी है और संभवत. उनके उपलब्ध होने की अव आशा भी नहीं है। भगवान् महावीर की समकालीन कही जाने वाली साध्वी तरंगवती के प्रेमाख्यान का वर्णन करने वाली पादलिप्त की तरंगवईकहा, तथा मलयवती, मगधसेना, मलयसुंदरी, आदि कितने ही प्रेमाख्यान उपलब्ध नहीं है। प्राकृत जैन कथा-साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि विभिन्न कथा-ग्रथो मे वर्णित एक ही कथा के पात्रो के नामो तथा घटनाओ आदि में विभिन्नता पायी जाती है। इससे कथा-साहित्य के विपुल स्रोत के विद्यमान होने का अनुमान किया जा सकता है।

आगम साहित्य और उत्तरकालीन कथाग्रंथों की शैली

आगमो और आगमवाह्य कथाग्रंथो की वर्णन शैली में पर्याप्त भेद दिखायी देता है। आगम ग्रंथो की कथावस्तु का, विना किसी साहित्यिक सौष्ठव के, एक ही जैसी सक्षिप्त शैली मे[2] वर्णन किया गया है। कभी तो विना टीका-टिप्पणी के इन कथाओ का बोधगम्य होना कठिन हो जाता है। यूरोपीय विद्वानो द्वारा जैन आगमग्रथो को 'शुष्क और नीरस' प्रतिपादन किये जाने का यही कारण हो सकता है।

इस प्रसग मे वसुदेवहिडी की वर्णनशैली विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करती है। आगमगतकथा-साहित्य के विपरीत यहाँ नगर, राजा तथा विशेषकर राजकन्या, गणिका आदि नायिकाओ के समासाँत पदावलि युक्त नख-शिख की शैली वाले श्रृङ्गारप्रधान वर्णन मिलते है। वसुदेवहिंडी के मध्यम खण्ड के रचयिता धर्मसेन गणि ने लौकिक श्रृङ्गार कथाओ के अत्यधिक प्रशसित हो जाने के कारण अपनी

१ उदाहरण के लिए, राजगृह के अर्जुनक माली और मोग्गरपाणि यक्ष की कथा, जो अतकृद्दशाग सूत्र में आती है, उसे शान्त्याचार्यकृत उत्तराध्ययन टीका में 'वृद्धसप्रदाय' के नाम से उल्लिखित किया है।

२. आल्सडोर्फ ने इसे 'तार की शैली' (टेलीग्राफिक स्टाइल) कहा है।

कृति प्रस्तुत की। प्राकृत जेन कथा-साहित्य को समझने के लिये जैन कथाओ के विकास का एक विहंगावलोकन कर लेना आवश्यक है।

प्राकृत जैन कथाओं का विकास

आगमबाह्य कथा-साहित्य मे वसुदेवहिडी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, भाषा और विषय आदि की दृष्टि से भी यह प्राचीन है। इस कृति में उल्लिखित कथाओ का उत्तरकालीन प्राकृत कथा साहित्य पर गहरा प्रभाव है। अतएव इस महत्त्वपूर्ण कृति की कतिपय कथाओ की चर्चा कर देना उपयोगी होगा।

१ अगड़दत्त की कथा

अगडदत्त का उपाख्यान पहले आ चुका है। वसुदेवहिडी की यह कथा उत्तराध्ययन की वादिवेताल शातिसूरि (मृत्यु १०४० ई०) कृत शिष्यहिता पाइय-टीका और नेमिचन्द्रसूरि (पूर्वनाम देवेन्द्रगणि) कृत सुखबोधा टीका (१०७३ ई० में समाप्त) मे भी आती है। वसुदेवहिंडी (पृ० ३५–४९) के अनुसार, अगडदत्त उज्जैनी के राजा जितशत्रु के सारथि अमोघरथ और उसकी भार्या यशोमती का पुत्र था। अपने पिता का देहान्त हो जाने पर वह अपने पिता के परम मित्र कौशाम्बी के दृढ़प्रहारी नामक आचार्य के पास शस्त्रविद्या ग्रहण करने जाता है। वहाँ पहुँचकर गृहपति यक्षादत्त की पुत्री सामदत्ता से उसका प्रेम हो जाता है। परिव्राजक का वेष बनाकर रहने वाले चोर का पता लगाकर वह उसका वध कर देता है। भूमिगृह में जाकर उसकी भगिनी से मिलता है। वह उससे भ्रातृवध का बदला लेने का प्रयत्न करती है। अगडदत्त उसे पकडकर राजकुल में ले जाता है। सामदत्ता को लेकर वह स्वदेश लौटता है। अटवी मे धनंजय नाम के चोर से उसका सामना होता है। उसका वध कर वह उज्जैनी वापिस लौटता है। अगडदत्त सामदत्ता के साथ उद्यान यात्रा के लिए जाता है। सामदत्ता को सर्प डस लेता है। विद्याधर युगल के स्पर्श से वह चेतना प्राप्त करती है। देवकुल में पहुँचकर सामदत्ता अगडदत्त के वध का प्रयत्न करती है। स्त्री निन्दा और ससार-वैराग्य के रूप में कहानी का अत होता है। सामदत्ता के नखशिख का वर्णन शृङ्गारयुक्त समासांत शैली में किया गया है। अगडदत्त स्वय अपने चरित्र का वर्णन प्रथम पुरुष मे करता है।

शान्तिसूरि कृत उत्तराध्ययन की वृहद्वृत्ति (४, पृ० २१३–१६) में भी अगडदत्त की कथा आती है। 'वृद्धवाद' का उल्लेख कर कथा को परम्परागत

घोषित किया गया है। वसुदेवहिंडी की कथा का यह संक्षिप्तीकरण है। सामदत्ता का कथानक यहाँ नहीं है। अगडत्त चोर की भगिनी को पकडकर राजकुल में ले जाता है—यहीं पर कथा का अन्त हो जाता है। कथा अन्य पुरुष में कही गयी है।

नेमिचन्द्रसूरि की उत्तराध्ययनवृत्ति (४, ८३अ–९३) में प्रतिवुद्धजीवी के दृष्टांत रूप में अगडदत्त की कथा आती है। यहाँ भी 'वृद्धवाद' का उल्लेख है। कथा ३२९ गाथाओ मे है। अगडदत्त शंखपुर नगर के सुंदर राजा की सुलसा भार्या का पुत्र था। वह धर्म और दया से रहित, मद्य, मांस और मधु का सेवी था। पुरवासियो ने राजकुमार के दुराचरण की राजा से शिकायत की जिससे राजा ने उसे देश छोडकर चले जाने का आदेश दिया। अगड़दत्त ने वाराणसी पहुँचकर पवनचंड नामक आचार्य से शस्त्रविद्या की शिक्षा प्राप्त की। उद्यान के पास बंधुदत्त श्रेष्ठी की विवाहिता कन्या मदनमंजरी उसकी ओर आकृष्ट हुई। कुमार ने मदनमजरी को वचन दिया कि जिस दिन वह स्वदेश के लिए प्रस्थान करेगा, उसे भी साथ ले चलेगा। अगडदत्त परिव्राजक बनकर रहने वाले भुजंगम चोर का पता लगाता है और उसका वधकर, वट वृक्ष के नीचे स्थित भूमिगृह में रहने वाली उसकी भगिनी वीरमती से मिलता है। वीरमती राजकुल में ले जायी जाती है और राजा भूमिगृह के समस्त धन को जब्त कर नागरिको में बाँट देता है। अगडदत्त के पौरुष से प्रसन्न हो, वह उसके साथ अपनी राजकुमारी कमलसेना का विवाह कर देता है। कुमार मदन-मजरी को साथ ले, रथ में सवार हो, शखपुर के लिए प्रस्थान करता है। एक भयानक अटवी में दुर्योधन चोर के साथ होने वाले संग्राम में चोर मारा जाता है। मरते समय चोर जयश्री नाम की अपनी भार्या का पता कुमार को बताता है। वनगज, व्याघ्र और सर्प पर विजय प्राप्त कर अगडदत्त शंखपुर पहुँचता है। कुमार मदनमजरी के साथ वसतक्रीडा के लिए उद्यान मे जाता है। मदनमंजरी को सर्प डस लेता है। अभिमंत्रित जल से विद्याधरयुगल उसे स्वस्थ करता है। देवकुल में मदनमंजरी अगडदत्त की हत्या का प्रयत्न करती है। चारण मुनि का उपदेश सुनकर अगडदत्त प्रतिबोध प्राप्त करता है।

स्पष्ट है कि अगड़दत्त कथानक के तीनो रूपातरो में शांतिसूरि का कथानक अत्यन्त सक्षिप्त है, जो कि वसुदेवहिंडी पर आधारित है। नेमिचद्रसूरि का कथानक

वसुदेवहिंडी से कितनी ही बातो में भिन्न है, लेकिन पद्यात्मक होने से वसुदेवहिंडी जितना यह प्राचीन नहीं जान पडता। नेमिचन्द्रसूरि की उत्तराध्ययन की वृत्ति की अपेक्षा वसुदेवहिंडी के कथानक की भाषा मौलिक होने के कारण अधिक सरल और स्वाभाविक प्रतीत होती है। दोनो कथानको में पात्रो आदि के नाम एवं घटनाओ में जो विभिन्नता पायी जाती है, इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि पूर्व-काल में अगडदत्तचरित नामक कोई स्वतत्र रचना रही होगी, जिसके आधार से वसुदेवहिंडीकार ने अपना कथानक रचा। शांतिसूरि ने 'विस्तार-भय के कारण' इसे सक्षिप्त रूप में स्वीकार कर लिया। नेमिचन्द्रसूरि का स्रोत सभवतः वसुदेवहिंडी के स्रोत से भिन्न रहा हो। अपने कथानको की रचना उन्होने "पूर्व प्रबन्धो का अवलोकन करके" की है।[1]

२ कोक्कास बढ़ई की कहानी

वसुदेवहिंडो और बुद्धस्वामी के बृहत्कथाश्लोकसग्रह दोनो में यह कथानक वर्णित है। इस कथानक की तुलना की जा चुकी है। बृहत्कथाश्लोकसग्रह में कोक्कास की जगह पुक्कसक नाम आता है। दोनो रूपान्तरो में कोक्कास यवन देशवासियो से आकाशयत्र विद्या की शिक्षा ग्रहण करता है। कोक्कास की कन्या रत्नावली और उसके कुशल शिल्पी दामाद विश्विल का उल्लेख वसुदेवहिंडी में नहीं है। बृहत्कथाश्लोकसग्रह मे विश्विल आकाशयत्र का निर्माण करता है। यत्र तैयार हो जाने पर वह राजा से निवेदन करता है कि वह यत्र समस्त नागरिको का भार वहन करने में सक्षम है। विश्विल राजा आदि को गरुड़ाकार यंत्र मे बैठाकर, सारी पृथ्वी की सैर कराकर वापिस ले आता है। वसुदेवहिंडी के शिल्पी कोक्कास का राजा से कहना था कि उसके यत्र में केवल दो व्यक्ति ही बैठ सकते है, तीसरे व्यक्ति का भार वह वहन नहीं कर सकता। लेकिन महारानी ने यत्र मे सवार हो, आकाश-भ्रमण की ज़िद की। परिणाम यह हुआ कि यत्र पृथ्वी पर आ गिरा। कोक्कास ने दो घोटक-यंत्रो का निर्माण किया, राजकुमार घोटकयत्र को लेकर आकाश मे उड गये। लेकिन यत्र को लौटाने की कील उनके पास नहीं थी, इसलिए वे लौटकर वापिस न आ सके। परिणामस्वरूप कोक्कास के वध की आज्ञा दे दी गयी।

---

१ डाक्टर आलसडोर्फ ने अगडदत्त कथानक के तीनों रुपान्तरों का विश्लेषण करते हुए, अगडदत्त (कुएँ द्वारा प्रदान किया हुआ), भुजङ्गम (सर्प) आदि कथानक के व्यक्ति वाचक नामो के ऊपर से इसे हजारो वर्ष प्राचीन कथानकों की श्रेणी में रक्खा है। देखिए, ए न्यू वर्जन आफ अगड़दत्तस्टोरी, न्यू इडियन ऐंटीक्वेरी, जिल्द १, १९३८-३९।

उक्त दोनो रूपान्तरो का कोई सामान्य स्रोत होना चाहिए और यह स्रोत गुणाढ्य की वृहत्कथा हो सकता है।

सभव है कि अगडदत्त कथानक की भाँति प्रस्तुत कथानक की भी एक से अधिक परम्पराएँ रही हो जिनका उपयोग वसुदेवहिंडीकार और वृहत्कथाश्लोक-सग्रहकार ने अपनी-अपनी रचनाओ में किया हो ।

इस कथानक के अन्य जैन रूपान्तर भी उपलब्ध है। आवश्यकनिर्युक्ति (९२४) मे शिल्पसिद्धि के उदाहरण मे कोक्कास का नामोल्लेख है। जिनदास-गणि महत्तर ने अपनी आवश्यकचूर्णी (पृ० ५४१) मे कोक्कास की कथा विस्तार से दी है। हारिभद्रीय आवश्यकवृत्ति, (पृ० ४०९अ-४१०) में भी यही कथा है। वसुदेवहिडी का कोक्कास ताम्रलिप्ति का निवासी था, लेकिन यहाँ उसे शूर्पारक का निवासी वताया है जो उज्जैनी मे आकर रहने लगा था। यवनदेश में जाकर शिल्पविद्या सीखने की बात का यहाँ उल्लेख नही है। कोक्कास द्वारा निर्मित गरुडयत्र में राजा अपनी महारानी के साथ वैठकर आकाश की सैर किया करता। जो राजा उसकी आज्ञा मे चलने से इन्कार करते, वह उन्हे आकाश-मार्ग से मार डालने की धमकी देता। राजा की अन्य रानियाँ, महारानी से ईर्ष्या करने लगीं। एक वार जव राजा अपनी महारानी के साथ यत्र में सवार होकर जा रहा था तो उन्होने यंत्र की कील छिपा दी जिससे यत्र पीछे न लौट सका और वह पृथ्वी पर गिर पडा। विमान कलिग देश की भूमि पर गिरा। कलिगराज ने राजा और रानी को गिरफ्तार कर लिया। उज्जैनी के राजकुमार ने कलिग पर चढाई कर, अपने माता-पिता को मुक्त किया। शकुनयंत्र द्वारा समाचार भेजने का भी यहाँ उल्लेख है।

हरिषेणाचार्यकृत वृहत्कथाकोश (५५, १७४, पृ० ८३) में कोकाश को एक दिव्य वर्धकी वताया है जो स्त्रीरूप से युक्त शतयत्रो का निर्माण करने में कुशल था। मनुष्य के मनमोहक स्त्रीरूप यंत्र का निर्माण कर उसने कितने ही दिव्य चित्रकारो को नीचा दिखा दिया था।

कोक्कास की कथा की भी एक से अधिक परम्परा रही होगी, तथा काला-न्तर मे यवन देश का उल्लेख अनावश्यक समझकर विस्मृत कर दिया गया होगा।

३ विष्णुकुमार की कथा

यह कथा-प्रसग भी वसुदेवहिंडी और वृहत्कथाश्लोकसग्रह दोनो मे पाया जाता है। यह कथानक पहले आ चुका है। जैन कथा के अनुसार, विष्णुकुमार

ने जैन श्रमणों के प्रद्वेष्टा नमुचि को दण्ड देने के लिए उससे तीन पैर (विक्रम) भूमि की याचना की। विष्णुकुमार के शरीर को बढता हुआ देख भय से सत्रस्त हुआ नमुचि उनके चरणो में गिर पडा। ब्राह्मण परंपरा में इससे मिलती-जुलती कथा विष्णु भगवान् की आती है जिन्होने वामन अवतार धारण कर बलि नाम के दैत्य को दंडित किया। बलि देवताओ को बहुत कष्ट देता था। कष्टो से त्राण पाने के लिए देवताओ ने विष्णु भगवान् का आह्वान किया। भगवान् ने वामन का रूप धारण कर उससे तीन पग भूमि मांगी। पहला पग उन्होंने पृथ्वी पर, दूसरा आकाश मे और अन्य कोई स्थान न मिलने पर तीसरा पग बलि के सिर पर रख, उसे पाताल लोक मे पहुँचा दिया। इस कथा का उल्लेख बृहत्कथा-श्लोकसग्रह में पाया जाता है।

ब्राह्मणो की इस पौराणिक कथा का उल्लेख गुणाढ्य की बृहत्कथा में रहा होगा। आगे चलकर जैन परम्परा में विष्णु भगवान् के स्थान पर विष्णुकुमार मुनि और देवताओ को कष्ट देने वाले बलि के स्थान पर जैन श्रमणो के प्रद्वेष्टा पुरोहित नमुचि की कल्पना कर, कथा को जैनधर्म के ढांचे में ढाल दिया गया।

नेमिचन्द्रसूरि की उत्तराध्ययन-लघुवृत्ति (पृ० २४५अ-२४९अ) में यह कथा कुछ परिवर्तन के साथ आती है। यहाँ विष्णुकुमार को राजा पद्मरथ और रानी लक्ष्मीमति के स्थान पर ऋषभस्वामी के वंशोत्पन्न राजा पद्मोत्तर और महादेवी जाला का पुत्र बताया है। नमुचि को यहाँ उज्जैनी के राजा श्रीधर्म का मंत्री कहा है जिसने जैन सूरि सुव्रत से पराजित हो, हस्तिनापुर पहुँच राजमंत्री पद प्राप्त कर लिया। विष्णुकुमार मुनि को नमुचि ने तीन पग रखने के लिए भूमि दे दी लेकिन साथ ही यह भी कहा कि यदि तीन पग से बाहर की जमीन पर कहीं पैर रक्खा तो वह उसके सीर के बाल नोच डालेगा। विष्णुकुमार का शरीर क्रोधाग्नि से बढने लगा। इस कोप को शान्त करने के लिए इन्द्र ने देवांगनाएँ भेजीं जिन्होने अपनी गीतिका से मुनि का क्रोध शान्त किया।[1] इस समय से विष्णुकुमार मुनि त्रिविक्रम नाम से प्रख्यात हो गये।

वसुदेवहिंडी की कथा की अपेक्षा नेमिचन्द्रसूरि की कथा कुछ विस्तार-पूर्वक कही गयी है। हरिषेणाचार्यकृत बृहत्कथाकोश में भी विष्णुकुमार का कथानक आता है। बहुत-सी बातो में उत्तराध्ययनवृत्ति से इसका साम्य है। राजा श्रीधर के

---

१ सपरसतावओ धम्मवणविहावसू ।
दुग्गइगमणहेऊ कोवो ता उवसम करेसु भयव ॥

वलि, बृहस्पति, प्रह्लाद और नमुचि नामक चार मंत्री है। मंत्रियों ने जैन श्रमण श्रुतसागर के वध का प्रयत्न किया। राजा ने चारो को देश से वहिष्कृत कर दिया। हस्तिनापुर पहुँचकर उन्होने राजा महापद्म का मंत्रित्व प्राप्त कर लिया। स्वदेश पर आक्रमण करने वाले राजा सिंहवल को पराजित करने के कारण महापद्म ने वलि को वर प्रदान किया। वली ने सात दिन पर्यन्त राज्य करने का वर माँगा। नगर में तुरत ही यज्ञशालाएँ स्थापित कर दी गई और वेरोकटोक महिष, अजा आदि पशुओ का वध किया जाने लगा। जैन श्रमण प्रत्याख्यान का अवलंबन ग्रहण कर कायोत्सर्ग में स्थित हो गये। विष्णुकुमार सघ की रक्षा के लिए मिथिला से हस्तिनापुर पहुँचे। वामन का रूप धारण कर सभा में स्थित वलि के समक्ष वे वेदध्वनि का उच्चारण करने लगे। उन्होने तीन पग भूमि की याचना की। एक पैर उन्होने मेरु पर्वत पर, दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर रक्खा और जब तीसरा पैर रखने का स्थान न मिला तो उसे घुमाकर कहने लगे कि वताओ इसे कहाँ रखा जाये ? भय से सत्रस्त हुए किन्नरो और विद्याधरो ने उस चरण की पूजा की। शासन देवताओ ने वलि को वंधन में वाध लिया और उसे गधे पर चढाकर नगर में घुमाया। किन्नरों और विद्याधरो ने विष्णु मुनि से अपने चरण को सिकोड लेने की प्रार्थना की। विद्याधरो को वीणाएँ प्रदान की गयीं।

वसुदेवहिंडी के मूल कथानक मे कितना परिवर्तन कर दिया गया। वलि दैत्य के स्थान पर वलि नामक मत्री और वामन अवतार की कल्पना कर जैन कथाकारो ने ब्राह्मण परम्परा को अक्षरश: मान्य कर लिया।

४ चारुदत्त की कथा

चारुदत्त की कथा की तुलना की जा चुकी है। वसुदेवहिंडी का चारुदत्त श्रेष्ठी वृहत्कथाश्लोकसंग्रह का सानुदास वणिक् है। चारु नामक मुनि के सवंध से चारुदत्त और सानु नामक दिगवर मुनि के सवंध से सानुदास नाम रक्खा गया। चारुदत्त और सानुदास दोनो के मित्रो की नामावली में कोई अतर नहीं है। दोनो पुलिनतट पर पत्रच्छेद्य मे समय व्यतीत करते है। दोनो कथानको में पुलिनतट पर वने हुए पदचिह्नो को देखकर विद्याधर और उसकी प्रिया का पता लगाते है। दोनो में पत्रो से आकीर्ण लतागृह मे पहुँचते है। लोहे की कीलो से विंधे हुए विद्याधर को वधन से मुक्त करते है। दोनो जगह विद्याधर का नाम अमितगति है और वह अपना समस्त वृत्तान्त सुनाता है। वसुदेवहिंडी में उसकी प्रिया का

नाम सुकुमालिका और बृहत्कथाश्लोकसग्रह में कुसुमालिका है। एक में धूमसिंह और दूसरे में अगारक उसका अपहरण करके ले जाता है।

आगे चलकर पुष्कर मधुपान, गणिका के घर रहना, वहाँ से निष्कासित किये जाना, धनार्जन कर घर लौटकर आने की प्रतिज्ञा, वेत्रपथ, शकुपथ, अजपथ पारकर देश-विदेश की यात्रा, भारुण्ड पक्षियो द्वारा रत्नद्वीप में ले जाया जाना, तथा वीणावादन की शिक्षा, गधर्वदत्ता के साथ विवाह, और विष्णु गीतिका आदि कथा-प्रसंगो मे वसुदेवहिंडी और बृहत्कथाश्लोकसग्रह मे इतनी अधिक साम्यता है कि कितने ही स्थलों पर अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए एक दूसरे का अवलंबन लिया जा सकता है। दोनो की भाषा भिन्न होने पर भी समान भाषा की अभिव्यक्ति और समान शब्दो का प्रयोग देखने में आता है। चारुदत्त (बृहत्कथाश्लोकसग्रह के सानुदास) के कथानक को देखकर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इस कथानक का स्रोत कोई गुणाढ्य की बृहत्कथा जैसी सुप्रसिद्ध रचना रही होगी।

हरिषेण के बृहत्कथाकोश (९३) में चारुदत्त का कथानक सामान्य हेरफेर के साथ वर्णित है। पुलिनतट पर पदचिह्नो की घटना का यहाँ अत्यन्त सक्षिप्त उल्लेख है। अमितगति के मित्र का नाम गोरमुड है, गौरीपुड नहीं। कदली वृक्ष में विद्याधर को कीलित करने का उल्लेख है, कदम्ब वृक्ष में नहीं। चारुदत्त वसंतसेना गणिका के घर से निष्कासित होकर वस्त्र से मुँह ढंककर अपने घर जाता है। व्यापार के लिए खरीदी हुई कपास वन की अग्नि से भस्म होती है, चूहे के द्वारा ले जाई गई दीये की बत्ती से नहीं। समुद्रयात्रा के समय छह बार जहाज के टूटने का उल्लेख है। इषुवेगा की जगह कांडवेगा नदी का और टंकण देश की जगह टकण पर्वत का नाम आता है। केवल चारुदत्त और रुद्रदत्त ही बकरो पर सवार होकर यात्रा करते है। कथा के अत मे चारुदत्त जैनी दीक्षा ग्रहण कर लेता है। सुलसा और याज्ञवल्क्य की कथा भी इस कथानक के साथ जोड दी गयी है। जिससे पता लगता है कि सघदास गणि वाचक कृत वसुदेवहिंडी ग्रन्थकार के सामने था।

प्राचीन कथानको मे समयानुसार किस गति से सशोधन-परिवर्तन होता चलता है, यह कथा-साहित्य के विकास के अध्ययन के लिए आवश्यक है। जिनसेन के हरिवश पुराण (७८३ ई० मे समाप्त) मे भी चारुदत्त की कथा आती है।

५ प्रसन्नचन्द्र और वल्कलचीरी की कथा

वसुदेवहिडी (पृ० १६—२०) की राजा प्रसन्नचन्द्र और ऋषिकुमार वल्कल-चीरी सबधी कथा को वसुदेवहिंडी के उल्लेखपूर्वक जिनदासगणि महत्तर ने आवश्यकचूर्णी (पृ० ४५६—६०) प्रायः अक्षरशः उद्धृत किया है। आवश्यकनिर्युक्ति में भी इसका उल्लेख है। वसुदेवहिडी के कर्ता सघदासगणि को यह कथा गुरुपरम्परा से प्राप्त हुई होगी। उल्लेखनीय है कि ऋपिभाषित मे नारद, वल्कलचीरी, भारद्वाज, याज्ञवल्क्य आदि ऋपियो को अजिनसिद्ध (जिनवाह्य-सिद्ध) माना गया है।[1] वाल्मीकि रामायण के आदिकाण्ड मे ऋष्यश्रृङ्ग की कथा से इस की तुलना की जा सकती है। ऋष्यश्रृङ्ग का अपने पिता के द्वारा वन में पालन-पोपण हुआ था। प्रौढावस्था को प्राप्त होने तक उसने अन्य किसी मनुष्य के दर्शन नहीं किये थे। अग के राजा लोमपाद ने ब्राह्मणो की सलाह से अनेक युवतियो की सहायता द्वारा उसे अपने पास मगवाकर अपनी कन्या का विवाह उससे कर दिया। बौद्धो की उदान-अट्ठकथा और धम्मपद-अट्ठकथा (२, पृ० २०९ आदि) में भी यह कथा कुछ रूपान्तर के साथ उपलब्ध है।

इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन निश्चय ही प्राकृत जैन कथा साहित्य के विकास में उपयोगी हो सकता है।

६ ललितांग की कथा

सार्थवाह पुत्र ललितांग की कथा का उल्लेख किया जा चुका है। वसुदेवहिंडी (पृ० ९—१०) में ललितांग के दृष्टात द्वारा गर्भावास के दुखो की ओर लक्ष्य किया है। हरिभद्रसूरि ने अपनी समराइच्च-कहा में ललितांग, अशोक और कामांकुर को उज्जैनी के राजकुमार समरादित्य का मित्र बताया है जो एक साथ बैठकर कामशास्त्र की चर्चा में समय व्यतीत करते है। हेमचन्द्र के परिशिष्ट पर्व (२ १९ २१५—७५) में भी यह कथा आती है। जो बहुत कुछ वसुदेवहिंडी की कथा पर आधारित है। कथा का उपसहार दोनो में एक जैसा है। आगे चलकर सोमप्रभसूरि के कुमारपालप्रतिबोध में शीलवती-कथानक के अन्तर्गत ललिताग, अशोक, रतिकेलि और कामाकुर को नंदिपुर के राजा का मित्र कहा है। राजा शीलवती के पति की अनुपस्थिति मे अपने मित्रों को शीलवती के शील की परीक्षा के लिए भेजता है।

[1] तथा देखिए सूत्रकृताग ३, ४, २, ३, ४, पृ० ९४ अ—९५, चतु शरणटीका ६४

७ मधुबिन्दु दृष्टांत

मधुबिंदु दृष्टांत का उल्लेख किया जा चुका है। वसुदेवहिंडी में सांसारिक विषयभोगो की क्षणभगुरता सिद्ध करने के लिए यह दृष्टांत दिया है। तत्पश्चात् हरिभद्रसूरि की समराइच्चकहा, अमितगति की धर्म-परीक्षा और हेमचन्द्राचार्य की स्थविरावलि में इस दृष्टांत का उपयोग किया गया है। महाभारत और बौद्धो के अवदान साहित्य में यह उपलब्ध है। इस प्रकार के कथानको की गणना 'श्रमण काव्य' के अन्तर्गत की गयी है। विश्वकथासाहित्य मे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इन सब दृष्टियो को ध्यान में रखकर प्राकृत जैन कथा साहित्य का अध्ययन अवश्य ही उपयोगी सिद्ध होगा।

सौभाग्य से प्राकृत साहित्य के अध्ययन की ओर विद्वानो की रुचि बढती जा रही है, लेकिन अध्ययन की सामग्री जैसी चाहिए, वैसी हम अभी तक नहीं तैयार कर सके है। प्राकृत कथाओ के एक विश्वकोष (एन्साइक्लोपीडिया) की आवश्यकता है जिसमे प्राकृत कथाओ का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सके। प्राकृत के एक सर्वांगीण कोश की नितान्त आवश्यकता है, अभी तक ४२ वर्ष पुराने पाइयसद्दमहण्णवो से ही हम काम चलाते आ रहे है। प्राकृत कथा-ग्रन्थो के आलोचनात्मक वैज्ञानिक ढंग से सुसपादित सस्करणो की आवश्यकता है जिससे कथा साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सके।

प्राकृत कथा-साहित्य का अध्ययन अनेक दृष्टियो से उपयोगी है। सर्वप्रथम इसमे लोकजीवन का जैसा यथार्थवादी लौकिक चित्रण मिलता है, वैसा वैदिक संस्कृत साहित्य अथवा बौद्ध पालि साहित्य में नहीं मिलता। वैदिक साहित्य की कहानियाँ प्रायः पौराणिक है जिनका प्राइवेट तौर पर ही पठन-पाठन होता रहा है, अतएव लोकजीवन के निकट वे नहीं आ सकीं। वैदिक कथाओ के नमूने महाभारत, कथासरित्सागर, दशकुमारचरित, तंत्राख्यायिका, हितोपदेश आदि रचनाओ में देखे जा सकते है। बौद्ध कथा साहित्य ने अवश्य इस दिशा में प्रगति की। लोकजीवन सबधी कथा-कहानियो ने यायावर बौद्ध भिक्षुओ के हाथ में पडकर लोकतांत्रिक रूप धारण किया। फिर भी, जैन कथा-कहानियो जैसी व्यापकता इन कहानियो में न आ सकी। इसका कारण बताते हुए डाक्टर हर्टल ने लिखा है कि जैन कथाकार बौद्ध कथाकारो की भाँति न तो बुद्ध के अतीत जीवन की कहानी को प्रमुखता देते थे और न बोधिसत्व के रूप में उनके भविष्य जीवन की कहानी को, बौद्ध कथाओ की

भाँति सीधा उपदेश भी उनकी कथाओ में नहीं रहता था। वस्तुतः धर्मोपदेश जैन कथा-कहानियो का अंग रहा है जसा कि कहा जा चुका है, लेकिन प्राय: कहानी के अत में ही ऐसा होता है, जबकि केवली अपनी धर्मदेशना सुनाते है और नायक-नायिका श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर लेते है। इसके अतिरिक्त, धर्म, अर्थ और काम नामक पुरुषार्थों की पोषक तथा धर्मकथा के अन्तर्गत नीतिकथा में गर्भित की जाने वाली धूर्तों, मूर्खों, विटो और कुट्टिनियो की कथाए भी यहाँ पाई जाती है। वनिज-व्यापार के लिए समुद्र यात्रा पर जाने वाले सार्थवाहो की कहानियाँ विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करती है। प्राकृत जैन कथा-साहित्य की इन विशेषताओ का पालि साहित्य में प्राय: अभाव दिखायी देता है।

कथानक रूढियाँ और लोकजीवन

कथानक-रूढियो (मोटिफ) का जितना उपयोग प्राकृत साहित्य में हुआ है, उतना सस्कृत साहित्य में नहीं हुआ। प्राकृत साहित्य में विविध आनुषगिक प्रसगो की योजना किसी-न-किसी 'मोटिफ' के लिए की गयी है। कारण कि ये कथाएँ लोक-प्रचलित कथाओ पर आधारित है और लोक-कथाओ में कथानक रूढियाँ भरपूर मात्रा में पाई जाती है, जो इन कथाओ की समृद्धि का कारण है। लोककथाओ में पुरानी कथानक रूढियाँ अप्रचलित होती जाती है और नयी रूढियाँ जुडती जातीहै। इस दृष्टि से प्राकृत जैन कथा साहित्य का अध्ययन लोककथा के अध्येताओ के लिए उपयोगी है। इससे कथाओ के क्रमिक विकास तथा कथाओ के अन्तर्राष्ट्रीय संबधो पर प्रकाश पडता है और इस बात का पता लगाया जा सकता है कि कौनसी कहानी ने किस काल में भारत छोडकर विदेशयात्रा की और कौनसी कहानी विदेश से चलकर भारतीय कहानियो का अभिन्न अग बन गई। मानवतावाद के सिद्धात का इससे यथोचित समर्थन होता है।

भाषाविज्ञान की दृष्टि से महत्त्व

सांस्कृतिक महत्त्व के अतिरिक्त, प्राकृत जैन-कथा साहित्य का भाषा वैज्ञानिक महत्त्व भी कम नहीं। प्राकृत के पश्चात् अपभ्रश, हिन्दी, गुजराती, और राजस्थानी भाषाओ मे जैन विद्वानो ने कथा-साहित्य की रचना जारी रक्खी। परिणामस्वरूप इन भाषाओ की शब्दावलि, शब्द-रचना, मुहावरे, व्याकरण, छन्द आदि पर प्राकृत का प्रभाव पडना स्वाभाविक था। इस दृष्टि से खासकर जूनी गुजराती और राजस्थानी भाषाओ का अध्ययन बहुत उपयोगी है।

इस संबंध में कलिकालसर्वज्ञ कहे जाने वाले तथा गुजरात में जैन संस्कृति के परम प्रतिष्ठाता आचार्य हेमचन्द्रकृत, भारत-यूरोपीय आर्य भाषाओ के साहित्य की अमूल्य निधि देशीनाममाला का उल्लेख आवश्यक है। देशी शब्दो का बडा से-बडा यह सकलन प्राकृत, अपभ्रंश, एव उत्तरभारतीय आधुनिक भाषाओ में पाये जाने वाले देशी शब्दो के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हेमचन्द्र के शब्दो में, महाराष्ट्र, विदर्भ, और आभीर आदि देशो मे प्रसिद्ध शब्दो का ही यहाँ सकलन किया गया है, किन्तु ऐसे शब्दो की संख्या अनन्त होने से जीवन-भर भी उनका सकलन सभव नहीं, अतएव अनादिकाल से प्रचलित प्राकृत भाषा के विशेष शब्दो को ही यहाँ लिया गया है।

मनोरंजक साहित्यिक कथानको की अपेक्षा लोककथाओ का विशेष महत्त्व है। इनमे लोकजीवन सवधी सुख-दुखो का प्रतिबिंब देखने को मिलता है। वस्तुत. भारतीय कथा-साहित्य का इतिहास अधिकांश रूप में भारतीय चिन्तन, धर्म और रीति-रिवाज का ही इतिहास है—लाकोत का यह कथन निस्सन्देह सत्य है। भारतीय कथा साहित्य के अध्येता विटरनित्स ने भारतीय कथा-कहानियो को भारतीय मस्तिष्क की सर्वश्रेष्ठ उपज कहा है, इन कथा-कहानियो ने वास्तविक साहित्य के पद को प्राप्त किया है और ये अधिकाश रूप में अन्य सभ्य देशो की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। भारत की भूमि को उन्होने कथा-कहानी और पशु-पक्षियो की कथा-कहानियो के अविष्कार के. लिए विशेष रूप से अनुकूल वताया है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास रखने के कारण, मनुष्यो और पशुओ में भेद होने से भारतीय कथाओ मे पशु-पक्षियो को भी कथा के नायक होने का अवसर प्राप्त हो सका है। इसके सिवाय, भारतीय कल्पनाशक्ति के अतिशय प्राचुर्य को सतुष्ट करने के लिए कथाकारो को अमानवीय लोको की कल्पना करनी पडी। फिर, भारत हमेशा से साधु-सतो और तीर्थस्थानो के यात्रियो का देश रहा है, ऐसी हालत में दूसरो को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए, तथा धर्म और नीति का उपदेश देने के लिए कथा-कहानियो का आश्रय ग्रहण किया गया। परस्पर मनोरजन के लिए भी कथा-कहानियो का जीवन में प्रमुख स्थान रहा, यद्यपि ये कहानियाँ हमेशा धार्मिक नहीं हुआ करती थीं। लौकिक कथाएँ पौराणिक कथाओ एवं पशु-पक्षियो आदि की काल्पनिक कथाओ (फेबल्स) से भिन्न है। पौराणिक कथाओ में ज्ञान की पिपासा

शान्त करने अथवा धार्मिक आवश्यकता की प्रवृत्ति देखी जाती है, जबकि काल्पनिक कथाओ में उपदेशात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता रहती है। यही कारण है कि लौकिक कथा-कहानियो का अस्तित्व लोगो मे तभी से चला आता है जबकि साहित्य में उनका प्रवेश भी नहीं हुआ था। सर्वप्रथम प्राकृत साहित्य में उन्हे स्थान प्राप्त हुआ जबकि काल्पनिक कथाओ का उद्भव साहित्य में हुआ और इन्हे सस्कृत साहित्य में स्थान मिला।'

प्राकृत जैन कथा-साहित्य के अध्येता प्रोफेसर हर्मन जैकोबी (१८८४ में सेक्रेड बुक्स आफ द ईष्ट सीरीज़ मे जैन सूत्रो का प्रथम भाग प्रकाशित), डाक्टर मौरिस विंटरनित्स 'भारतीय साहित्य का इतिहास' के क्रमश· १९०४, १९०८, १९१३ और १९२० में चार भाग प्रकाशित) तथा डा० जे० हर्टल (१९२२ मे 'आन द लिटरेचर आफ श्वेताम्बर जैन्स आफ गुजरात' नामक लघु किन्तु महत्त्वपूर्ण पुस्तिका प्रकाशित) आदि अनेक विदेशी विद्वानो ने प्राकृत कथा-साहित्य के क्षेत्र में अनुपम योगदान दिया है। क्या इनसे प्रेरित होकर हमारे विद्वान् प्राकृत कथा-सागर के बहुमूल्य मुक्ताओ को ढूढ निकालने मे प्रयत्नशील न होगे?

सूची

LALBHAI DALPATBHAI BHARATIYA SANSKRITI VIDYA MANDIR
L. D SERIES

S. NO	*Name of Publication*	*Price Rs*
1.	Sivāditya's Saptapadārthi, with a Commentary by Jinavardhana Sūri Editor Dr. J S Jetly (Publication year 1963)	4/-
2.	Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts Munirāja Shri Punyavijayaji's Collection Pt I Compiler Munirāja Shri Punyavijayaji Editor : Pt Ambalal P Shah (1963)	50/-
3	Vinayacandra's Kāvyaśiksā Editor Dr H G Shastri (1964)	10/-
4.	Haribhadrasūri's Yogaśataka, with auto-commentary, along with his Brahmasidhāntasamuccaya Editor Munirāja Shri Punyavijayaji (1965)	5/-
5	Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts, Munirāja Shri Punyavijayaji's Collection, pt II Compiler Munirāja Shri Punyavijayaji Editor. Pt A P Shah (1965)	40/-
6	Ratnaprabhasūri's Ratnākarāvatārikā, part I. Editor Pt Dalsukh Malvania (1965)	8/-
7	Jayadeva's Gitagovinda, with King Mānānka's Commentry Editor. Dr V M Kulkarni (1965)	8/-
8	Kavi Lāvanyasamaya's Nemirangaratnākarachanda Editor. Dr S Jesalpura (1965)	6/-
9	The Nātyadarpana of Rāmacandra and Gunacandra : A Critical study By Dr K H Trivedi (1966)	30/-
10	Acārya Jinabhadra's Viseṣāvaśyakabhāsya, with Auto commentary, pt I Editor Dalsukh Malvania (1966)	15/-
11	Akalanka's Criticism of Dharmakirti's Philosophy A study By Dr Nagin J Shah (1966)	30/-
12	Jinamānikyagani's Ratnākarāvatārikādyaślokaśatārthi Editor Pt Bechardas J Doshi (1967)	8/-
13	Ācārya Malayagiri's Śabdānuśāsana Editor Pt Bechardas (1967)	30/-
14	Ācārya Jinabhadra's Visesāvasyakabhāsya, with Auto commentary pt II Editor Pt Dalsukh Malvania (1968)	20/-
15	Catalouge of Sanskrit and Prakrit Manuscripts Munirāja Punyavijayaji's Collection Pt III Compiler Munirāja Shri Punyavijayaji Editor Pt A P Shah (1968)	30/-

16 Ratnaprabhasūri's Ratnākarāvatārikā, pt. II Editor Pt Dalsukh Malvania (1968) 10/-
17 Kalpalatāviveka (by an anonymous writer) Editor . Dr Murai Lal Nagar and Pt Harishankar Shastry (1968) 32/-
18 Āc Hemacandra's Nighantuśesa, with a commentary of Śrīvallabhagani Editor Munirāja Shri Punyavijayaji (1968) 30/-
19 The Yogabindu of Ācārya Haribhadrasūri with an English Translation, Notes and Introduction by Dr K K Dixit (1968) 10/-
20 Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts Shri Āc. Devasūri's Collection and Āc Kṣāntisūri's Collection . part IV Compiler Munirāja Shri Punyavijayaji Editor: Pt A P Shah (1968) 40/-
21 Ācārya Jinabhadra's Viśeṣāvaśyakabhāṣya, with Auto-Commentary, pt III Editor . Pt. Dalsukh Malvania and Pt Bechardas Doshi (1968) 21/-
22 The Śāstravārtāsamuccaya of Ācārya Haribhadrasūri with Hindi Translation, Notes and Introduction by Dr K K Dixit (1969) 20/-
23 Pallipāla Dhanapāla's Tilakamañjarīsāra Editor . Prof N M. Kansara (1969) 12/-
24 Ratnaprabhasūri's Ratnākarāvatārikā pt III Editor Pt. Dalsukh Malvania. (1969) 8/-
25. Āc Haribhadra's Neminähacariu : Editors Shri M C Modi and Dr H. C Bhayani (1970) 40/-
26 A Critical Study of Mahāpurāna of Puspadanta (A Critical Study of the Deśya and Rare words from Puspadanta's Mahāpurāna and His other Apabhramsa works). By Dr. Smt. Ratna Shriyan (1970) 30/-
27 Haribhadra's Yogadrstisamuccaya with English translation, Notes Introduction by Dr K. K Dixit (1970) 8/-
28 Dictionary of Prakrit Proper Names, Part I by Dr M L Mehta and Dr K R Chandra (1970) 32/-
29. Pramānavārtikabhasya Kārikārdhapādasūci Compiled by Pt Rupendrakumar (1970) 8/-
30 Prakrit Jaina Kathā Sāhitya by Dr J C Jain (1971) 10/-
31 Jaina Ontology By Dr K K Dixit (1971) 30/-

Following are in the press
(1) Nemināhacariu Part II
(2) Nyāyamañjarīgranthibhanga
(3) Madanarekhā Ākhyāyikā
(4) Adhyātmabindu
(5) Dictionary of Prakrit Proper Names Part II
(6) Sanatkumāracariu

Terms Regarding Sale

(in force from 1st April 1971)

1 Book-sellers shall ordinarily receive a discount of 25% on all the publications of L. D Series

2 The Railway frieght and cost of packing shall not be charged from those placing at a time an order amounting to Rs 1,000 or more

3 Those whose purchase for full one year (1st April to 31st March) amount to Rs 5,000 or more shall at the end of the year get an additional discount of 5% while those whose purchases for that period amount to Rs 10,000/- or more shall get an additional discount of 10% over and above the discount mentioned in rule 1 above This amount will not be paid in cash but will be adjusted against the bill or bills of the next year

4 The payment should be made within a month after the presentation of the bill

विक्री के नियम

(१ अप्रैल १९७१ से)

१ पुस्तक-विक्रेताओं को ला द. ग्रन्थमाला (L D Series) के प्रकाशनों पर साधारणत २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा ।

२ १,००० रु० या इससे अधिक के एककालिक आर्डर पर रेलभाडा तथा पैकिंग नहीं लिया जायगा ।

३ वर्ष भर (१ अप्रैल से ३१ मार्च) मे ५,००० रु० या इससे अधिक की पुस्तके खरीदने पर नियम १ में उल्लिखित कमीशन के अतिरिक्त ५ प्रतिशत अधिक और १०,००० रु० या इससे अधिक की पुस्तके खरीदने पर १० प्रतिशत अधिक कमीशन वर्ष के अन्त में दिया जायगा। इस कमीशन की रकम नगद नहीं दी जायगी किन्तु आगामी वर्ष के बिल या बिलों में से काट दी जायगी ।

४ बिल भेजने के बाद एक मास की अवधि में पेमेन्ट हो जाना चाहिए ।